अस्सी कहानियाँ

विनोदशंकर व्यास

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

अस्सी कहानियाँ

(व्यासजी की समस्त कहानियाँ)

विनोदशंकर व्यास

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक : महताब राय, नागरी मुद्रण, काशी
प्रथम संस्करण, ११०० प्रतियाँ, संवत् २०१७ वि०
मूल्य ६)

गुरुवर

प्रसाद्

की

स्मृति

में

प्रस्तावना

सृष्टि के आरंभ से मनुष्य स्वप्न देखता आ रहा है। वह कल्पना और स्वप्न चित्रों के आधार पर कुछ रेखाएँ अंकित करता है। अपने उद्योग और परिश्रम से वह उसे पूरा करने का प्रयत्न करता है। वह अपनी लगन में दृढ़ रहता है। सफलता में प्रसन्नता और असफलता में दुख का प्रादुर्भाव हुआ है। इस हर्ष और शोक में उसके हृदय की वीणा बज उठती है और वह कुछ गुनगुनाने लगता है। इस तरह संगीत की उत्पत्ति हुई। संगीत की ध्वनि के साथ भाव शब्दों का रूप धारण कर प्रकट हुआ।

संसार में मनुष्य उत्पत्ति के साथ ही वाणी के साथ पद्य की प्रधानता हुई। पद्य कंठस्थ करने में अधिक सहायक हुये, इसलिए संसार की सभी जातियों ने सर्वप्रथम पद्य को ही अपनाया। वैदिक साहित्य में ऋचायें आरंभ में थीं। पाश्चात्य देशों के इतिहास में होमर और उसके पहले के महापुरुषों ने भी पद्य को ही प्रचलित किया।

इस पद्य के साथ ध्वनि का मेल शरीर और आत्मा की भाँति था। ध्वनि प्रेरणा देती और शब्द भाव व्यक्त करते। इस तरह गीत काव्य बड़े प्रभावशाली प्रमाणित हुये हैं और आरंभ से लेकर आज तक उनकी परंपरा सुरक्षित है।

भावनात्मक छोटी कहानियाँ उसी गीत काव्य की एक शाखा है। इसका गद्य छंदोबद्ध न होकर अलग एक धारा में बहता है। उसमें संगीत का ताल और लय भले ही न हो; किंतु उसकी ध्वनि बड़े वेग से बहती रहती है।

गायक की स्वर लहरियों की भाँति इसके प्रभाव भी बहुत ही प्रबल होते हैं। लेखक ठीक गायक की भाँति अनुभव करता है। उसकी आत्मा अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण देख कर प्रसन्नता और निराशा के प्रति दुख प्रकट करती है। यह सुख दुख सदैव उद्गार के रूप में उसके मस्तिष्क में छाये रहते हैं। प्रकृति के विलक्षण दृश्यों में तन्मय होकर वह अपने को भूल जाता है। उसकी आवश्यकता और अभाव अपनी अस्पष्ट आकृति बनाकर उसके

सम्मुख खड़े हो जाते हैं। विदग्ध हृदय के आघात-प्रतिघात ही एक टीस उत्पन्न करते हैं। वही टीस इन भावनात्मक कहानियों की जननी है। लेखक अपनी भावना, रुदन, क्रंदन और प्रसन्नता द्वारा उन स्वप्न चित्रों को अंकित करता है।

पाठक ऐसी भावनात्मक कहानियाँ पढ़ते समय उसके पात्र पात्रियों के चरित्र और घटनाओं के संबंध में और कुछ जानना चाहते हैं। उसका विस्तृत वर्णन चाहते हैं, किंतु वह भूल जाते हैं कि ऐसी कहानियाँ केवल स्वप्न चित्रों की भाँति होती हैं। विशेष रंगामेजी उनके सौंदर्य को विकृत कर देती है।

भावनात्मक कहानियाँ कोई सीख कर नहीं लिख सकता है। यह दैवी शक्ति अपने आप लेखक में उत्पन्न होती है। उसकी रचना में चमत्कार और प्रेरणा जो झलकती है, वही उसकी अपनी मौलिकता होती है।

चेखाव अपनी एक कहानी के अंत में पूछता है—क्या यह गुस्सा मनुष्य से है। दरिद्रता से है अथवा वसंत की रात से है ?

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है। इसके आगे लेखक एक शब्द भी लिखना पसंद नहीं करता। यही कहानी की विशेषता है।

महाकवि रविंद्रनाथ की अधिकांश कहानियाँ इसी कोटि की हैं। हिंदी में प्रसादजी तो इस कला के आचार्य थे। उनकी कहानियों का अंत बड़ा मार्मिक हुआ है।

भावनात्मक कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनके आरंभ और अंत में ही होती है।

हिंदी में जो कुछ है उसकी आदर करने की ही जब प्रवृत्ति नहीं है तो आगे कुछ हो कर ही क्या होगा ? यही भावना सदैव कलाकार के चारों ओर मँडराया करती है।

मेरा प्रथम कहानी संग्रह नवपल्लव, फिर तूलिका, भूली बात इसके बाद धूपदीप, इन सभी संग्रहों की कहानियाँ संमिलित कर 'विनोदशंकर व्यास की ४१ कहानियाँ' का संग्रह प्रकाशित हुआ था। इसका पहला संस्करण एक्कीस सौ प्रतियों का हुआ था। इसके पश्चात् उसकी कहानी और

मणिदीप छपी। अंत में सभी कहानियों को एकत्र करने पर पचास कहानियाँ हुईं जिसका लीडर प्रेस से दो संस्करण समाप्त हुआ। इस तरह उन कहानियों का काफी प्रचार हुआ था।

'पचास कहानियाँ' के बाद मेरा एक कहानी संग्रह नक्षत्रलोक निकला। उसके पश्चात् १९५६ तक मैंने १२ कहानियाँ और लिखीं मेरी इन नवीन कहानियों की अलग कोई पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई।

अंत में अपनी सभी कहानियों के साथ अपनी १२ नवीन कहानियाँ संमिलित कर अस्सी कहानियाँ सब मिला कर हुईं। अब तक लिखी मेरी सभी कहानियों का यह संग्रह पूर्ण हुआ है।

काशी नागरी प्रचारणी सभा से प्रथम बार कथा साहित्य की मेरी 'अस्सी कहानियाँ' प्रकाशित हो रही है। इसका श्रेय डाक्टर जगन्नाथ शर्मा, चि० सुधाकर पांडेय एवं श्री मुरारीलाल केडिया को है। समय पर मुद्रित करने की सफलता श्री महताबराय को है।

मेरे ५८ वें जन्म दिवस के अवसर पर इसे प्रकाशित देख कर मुझे भी संतोष है।

बी० ११/३३ डेयुरियाबीर,
भेलूपुर, वाराणसी।

—विनोदशंकर व्यास

मेरी कहानियाँ

कुछ साहित्यकारों का आग्रह था कि मैंने कब कौन सी कहानी लिखी और वह कहाँ प्रकाशित हुई ? इसका भी विवरण होना चाहिये। अतएव एक बार मैंने इस संबंध में कुछ लिखने का प्रयास किया था। उस समय कुल २२ कहानियों के संबंध में मैंने लिखा था, जिनमें मेरी आरंभिक सभी कहानियाँ आ गई हैं। अब यदि अस्सी कहानियों के दूसरे संस्करण तक जीवित रहा तो अपनी समस्त कहानियों के संबंध में विवरण प्रस्तुत करूँगा। आगे भगवान की जैसी इच्छा। नवपल्लव मेरा प्रथम कहानी संग्रह सं० १९८५ (गंगा दसहरा) में प्रकाशित हुआ था। प्रकाशक—हिंदी पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय (विहार) मूल्य १।)

१ कहानियाँ—मुद्रक ज्ञानमंडल यंत्रालय, काशी।

१—पूर्णिमा
२—प्रत्यावर्त्तन
३—पतित
४—सुख
५—रूखा स्नेह
६—मान का प्रश्न
७—कहानी लेखक
८—भाग्य का खेल
९—हृदय की कसक

हृदय की कसक

यह मेरी पहली कहानी है। प्रसाद जी ने कहानी लिखने के लिए उत्साहित किया था। यह कहानी लेकर मैं उनके यहाँ गया। मैंने कहा—इसको ठीक कर दीजिये। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि उस समय पैरा तक बनाना मैं नहीं जानता था। व्याकरण तो स्कूल के कोर्स में जितना पढ़ा था बस उतना ही। भाषा के संबंध में शुद्ध और अशुद्ध का निर्णय नहीं कर पाता था।

प्रसाद जी ने बड़ी दिलचस्पी से इस कहानी का संशोधन किया था। कहानी में दूसरी बार जब शांता से भेंट करने की लालसा लेकर विजय जाता है तब देवी पूजा की घटना प्रसाद जी का ही सुधार है।

अलहड़ युवावस्था में केवल प्रेयसी को देखने की कामना ही प्रमुख होती है। यह मेरा निजी अनुभव था। कहानी का घटना क्रम जैसे शांता जब स्वयं चलने के लिए प्रस्तुत होती है तब विजय कहता है—यह शरीर और रूप एकदिन मिट्टी में मिल जायगा; किंतु मेरी आत्मा सदा तुम्हारे साथ रहेगी।' इस तरह की कुछ बातें आप बीती थीं।

समाज के कलंक का भय और आदर्श की चहार दीवारों के भीतर बचपन पला था। प्रेम के संबंध में अनुभव से अधिक कल्पना थी। वासना और प्रेम की गूढ़ रेखाओं को परखने की न अवस्था ही थी और न अध्ययन था। सीधी सादी भाषा में केवल हृदय के उद्गार थे। मेरी प्रणय पिपासा मृगतृष्णा के काल्पनिक जल से न बुझेगी। मुझे पीने दो रूप रस से इस सूखे हृदय को सींच दो। शांता! इस जीवन का सुख स्वप्न देखने से न मिलेगा। वह मेरा सपना था, जिसे तुम भी अब देखने लगी हो।

कहानी का प्लाट बहुत साधारण है। यह 'इंदु' जब पुनः प्रकाशित हुआ था, (और जिसके केवल चार अंक ही निकले) उसी में छपी थी।

पतित

उन दिनों बनारस से 'भारत जीवन' साप्ताहिक निकलता था। मैं बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री के साथ अवैतनिक रूप से पत्रकार कला सीख रहा था। यह कहानी भारत जीवन में प्रकाशित हुई थी। उस समय वेश्याओं के बाजार से मेरा परिचय हो चुका था। समाज से बहिष्कृत स्त्रियाँ कैसे हाट में आती हैं यह सब देखता सुनता था। केवल कहानी लिखने के लिए ही यह कहानी लिखी गई है। किसी अंक में कहानी नहीं थी और मुझे ही उसे भरना था। आज इसे पढ़ कर मैं स्वयं समझ रहा हूँ कि मेरी कहानियों से यह एकदम भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस वातावरण का कुछ प्रभाव पड़ा था, जिससे सहसा रागिनी को दिवाकर का दर्शन हुआ।

पूर्णिमा

मेरी आरंभिक कहानियों में होने के कारण मुझे प्रिय तो अवश्य है। उस समय इसे मैं इसे अपनी बड़ी सफल कहानी समझता था। 'माधुरी' में

यह सचित्र प्रकाशित हुई थी, लोगों ने भी इसे खूब पसंद किया था, किंतु कला और प्लाट की दृष्टि से अब इसमें मुझे कोई विशेषता नहीं दिखलाई पड़ती। एक साधारण घटना है। विधवा की दुर्दशा जो उस युग में प्रायः दिखाई पड़ती थी। आज के युग में यह अस्वाभाविक मालूम होगा कि घाट पर भेंट होने पर एक स्त्री के साथ उसके घर जाय और अंत में उसके पति के मृत्यु संस्कार में संमिलित हो। इसमें यदि कोई आकर्षण है तो वह गंगा तट और पूर्णिमा की रात है! जो स्वयं मेरे अनुभव के शब्द चित्र हैं।

रूखा स्नेह

प्लाट की दृष्टि से यह कहानी ठीक उतरी है।

स्कूल के दिनों में मैं एक ऐसी लड़की को जानता था जिसका स्वभाव प्रायः मालती जैसा था। प्रोफेसर अभयकुमार का चरित्र प्रसादजी की सूझ थी। कहानी को रोचक करने में प्रतिद्वंद्वता आवश्यक थी। 'इंदु' के बाद में जो चार अंक निकले थे उन्हीं में से एक में यह भी प्रकाशित हुई थी।

सुख

माधुरी में जब मेरी कहानी प्रकाशित हुई, उसके बाद ही बख्शीजी का पत्र आया जिसमें 'सरस्वती' के लिए कहानी भेजने का आमंत्रण था। मैंने इसी कहानी को उनके पास भेजी। कहानी कुछ बड़ी थी। उन्होंने काटछाँट कर छोटी बनाई और 'सरस्वती' में इसे प्रकाशित किया। वैभव और विलासिता के साम्राज्य में मैं भ्रमण कर रहा था। कुछ अपने मन में दार्शनिक विचार का भी सूत्रपात हो रहा था। इस कहानी में उसका आभास मिलता है।

प्रत्यावर्तन

उन दिनों मेरे पड़ोस में बड़ी चहल पहल थी। रसिकों का मंडल जम जाता था। कामता प्रसाद जैसे एक ठेकेदार मेरे महाल में रहते थे जो हिंदू विश्वविद्यालय में इमारत बनवाने का ठेका लेते थे। वह काफी पैदा करते थे अतएव खाने पीने और गाने बजाने में प्रतिदिन खूब पैसे उड़ते थे। मंगला की तरह एक भाभी भी थीं। इस कहानी में अपनी ही अनुभूति है।

एक बार दो कहानियाँ लिखकर प्रसादजी को दिखलाने गया। उन्होंने दोनों को मिलाकर एक कर दी। शीर्षक भी बदल कर प्रत्यावर्तन कर दिया।

इस कहानी को पढ़कर विगत जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। उस समय मतवाला मंडल से अलग होकर स्वर्गीय मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने 'सरोज' नामक एक मासिक पत्र कलकत्ते से निकाला था उसी में यह कहानी प्रकाशित हुई थी।

कहानी लेखक

जीवन की दुसह यंत्रणा ही कहानी लेखक की प्रतिभा को प्रेरणा देती है, यही इस कहानी का एक मात्र प्लाट है। उन दिनों श्री रामनाथ लाल 'सुमन' 'त्याग भूमि' के संपादकीय विभाग में कार्य करते थे उनका पत्र आया कहानी के लिए। मैं प्रेम कहानियाँ लिखता था। त्याग भूमि में वैसी कहानियाँ प्रकाशित नहीं हो सकती थीं अतएव उसी तरह की कहानी लिखी जो उसमें सहर्ष प्रकाशित हुई।

भाग्य का खेल

यह कहानी एक आदर्श को उपस्थित करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कहानी लिखने के लिए यह कहानी लिखी गई थी।

प्रेम की चिता

इस कहानी में पत्र जलानेवाली घटना मेरी अपनी है। एक दिन कुछ प्रेम पत्र और एक फोटो लेकर मैं प्रसाद जी के यहाँ गया था। वह अपने शिव मंदिर की वाटिका में बैठे थे। सब विवरण देने के बाद मैंने उन पेजों में सलाई लगा दी और अंत में वह फोटो भी जलकर राख हो गई। मुझे स्मरण है वह घृणा और प्रतिहिंसा का भीषण रूप था। कहानी कला की कसौटी पर भले ही इसका कोई महत्व न हो लेकिन मेरे जीवन की यह एक प्रमुख घटना है। हिंदू पंच के होलिकांक के लिए स्वर्गीय पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा का पत्र आया था। इसीलिए होली की घटना जोड़ जाड़कर यह कहानी अनुकूल बनाई गई थी।

मान का प्रश्न

उन दिनों कभी कभी मैं देहात भी चला जाता था। बहुत छोटा सा एक गाँव था, उसकी मालगुजारी तक वसूल न हो पाती थी। उसकी व्यवस्था के लिए महीनों ठहरना पड़ता था। गाँव के लोगों का चरित्र अध्ययन करने

का अवसर मिला था। उन दिनों मैं भांग छानता था। चंद्रधर की तरह एक फक्कड़ पात्र प्रायः मेरे यहाँ आता और घंटों उससे बातें होतीं। उस समय का समाज आज से बहुत पिछड़ा था। आज के युग में सुभद्रा जैसी नारी मान के प्रश्न पर विरले ही अपनी आत्महत्या करे किंतु उस काल में प्रायः ऐसा होना संभव था। यह कहानी मैंने बड़े परिश्रम से तैयार की थी कारण स्वर्गीय प्रेमचंद जी ने कहानी माँगी थी। वह माधुरी के संपादक होकर लखनऊ में थे।

मैंने यह कहानी माधुरी के लिए भेजी। बहुत समय बाद उनका पत्र आया जिसमें लिखा था कि 'यह कहानी आपकी लेखनी के उपयुक्त नहीं बन पड़ी है।'

मेरे जीवन में यही एक ऐसी कहानी थी जो मांग कर भी किसी पत्रिका से अस्वीकृत हुई थी। इसका मेरे हृदय पर बड़ा आघात लगा। तब से कई युग बीत गये। आज जब अपनी सभी कहानियों को एकत्र कर रहा हूँ ऐसे अवसर पर एक कार्ड का स्मरण हो आया जो ५-२-६० को मुझे मिला था—

मान्यनीय व्यास जी,

सस्नेह नमस्कार !

आपका कहानी संग्रह '५० कहानियाँ' मैंने बड़े चाव से पढ़ा, उक्त कहानी संग्रह की एक कहानी का मैं गुजराती अनुवाद करना चाहता हूँ, कहानी का शिर्षक है 'मान का प्रश्न' यह कहानी मेरी राय से हिंदी साहित्य की श्रेष्ठ कहानी है।

मैं आज तक पचासों हिंदी कहानियों का अनुवाद कर चुका हूँ। मैं अभी 'नवविधान' मासिक के हिंदी साहित्य की श्रेष्ठ कहानियाँ (हिंदी साहित्य नी श्रेष्ठ वार्ताओं) विभाग का संपादन कर रहा हूँ, यही श्रेणी में आपकी कहानी प्रगट करना चाहता हूँ, यकीन है कि आप अनुवाद के लिये अवश्य इजाजत देंगे।

रामचंद्र देसाई

करुणा

यह कहानी सचित्र 'माधुरी' में प्रकाशित हुई थी। इसकी सफलता का प्रमाण यही था कि इसके प्रकाशन के बाद अनेक पत्र पत्रिकाओं से कहानी

के लिए पत्र आने लगे। प्रसाद जी ने भी इसे बहुत पसंद किया था। भावना प्रधान कहानियाँ लिखने की यह मेरी पहली सीढ़ी थी। नवपल्लव की कहानियों के बाद अब कहानी के एक विशाल मार्ग की ओर मैंने पदार्पण किया था। उस समय माधुरी हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी। उसमें इस कहानी को आरंभिक स्थान मिलने के कारण बड़ा प्रचार हुआ था।

बंशीवाला

अपनी युवावस्था में मैं वंशी बजाता था। ऊपर छत पर बैठ कर घंटों बंशी बजाता रहता था। इस कहानी में अपनी ही मन स्थिति का वर्णन है। बचपन से ही संगीत के प्रति मेरा बहुत आकर्षण था। युवावस्था ने उस दर्द का अनुभव किया था। कहानी का अधिकांश वर्णन अपनी स्थिति को प्रकट करती है। उन दिनों मित्रमंडल और लेखकों के संमुख बड़े उत्साह से इस कहानी को पढ़ कर मैं सुनाया करता था।

प्रमदा

यह कहानी भी बचपन की स्मृति है। अब इसे पढ़ कर हँसी आती है, लेकिन किसी समय इसे लिख कर गर्व करता था और सबको सुनाता था। प्लाट कुछ नहीं है केवल शब्दों का जाल है—भावना है—बस।

रधिया

यह कहानी सुंदर बन पड़ी है। मतवाला के किसी विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि छोटी कहानियों को सफलतापूर्वक लिख लेने का यह मेरा प्रथम प्रयास था। इसमें कहानी के सभी तत्त्व हैं। एक शब्द भी हटाया बढ़ाया नहीं जा सकता। गंगातट पर पड़े भिखारी भिखारिन ही इस कहानी की कल्पना के सूत्र हैं।

चित्रकार

हृदय की निराशा ने ज्ञान का रूप धारण किया था। प्रेम का वास्तविक रूप पहचानने की मेरी अवस्था हो गई थी। मेरे अपने दार्शनिक विचार और अनुभव की छाप 'तूलिका' में संग्रहीत प्रायः सभी कहानियों में दृष्टिपात होती है। अनेक कहानियों में एक ही स्वर, एक ही राग सुनाई पड़ता है। जो पहले ग्लानि और चिंता थी, वही अब शांति के रूप में हृदय में वास करती है। सचमुच मेरे मन में कुछ बात भी ऐसी ही थी।

मोह

प्रेम कहानियों से हट कर एक विस्तृत मार्ग की ओर मैं बढ़ा था। रधिया के बाद यह दूसरी कहानी मोह भी तैयार हुई। उन दिनों हरिहरक्षेत्र का मेला देखने गया था। कहानी में वही घटनास्थल बन गया। दूसरे के बच्चे पर अपना क्या अधिकार? कुछ ऐसा अनुभव भी हुआ था।

पगली

यह कहानी 'सुधा' में सचित्र छपी थी। कहानी बहुत छोटी है। देश में मानवता का जो पतन हो रहा है उसका आँखों देखा यह वर्णन है। इस तरह की अनेक घटनाएँ मैं देख चुका हूँ इसमें कल्पना बहुत साधारण सी है।

लीला

यह कहानी भी अपने जीवन की एक घटना पर अंकित की गई है। सीधेपन का व्यंग्य बड़ा मार्मिक है। मेरे चरित्र की रेखाओं को स्पष्ट करता है। कहानी में लेखक की आत्मा की छाप कहाँ तक पड़ती है, यह इसी तरह की कहानियों द्वारा प्रकट होता है।

शय्या पर

जीवन के प्रति मानव तृष्णा का बड़ा सजग चित्रण है। कुछ शब्दों में संपूर्ण वातावरण उपस्थित हो जाता है।

प्रतीक्षा

कहानी पढ़ कर स्मरण हो आया, उन दिनों बीमारी की अवस्था में 'निराला'जी मेरे साथ ही रहते थे। इस कहानी में कवि की जो आत्मा है वह उन्हीं को लक्ष्य कर चित्रित की गई थी। उस समय संसार ने उनके गीतों के महत्त्व को नहीं समझा था—आज जब सरिता की धारा में वेग नहीं है तब महाकवि के रूप में वह प्रतिष्ठित हैं।

विलंब

इसे कहानी न कह कर गद्य गीत समझना ही ठीक होगा।

अकिंचन

वैभव के खँडहर में खड़ा होकर अपने चारों ओर देखने पर इस तरह के बहुतेरे चरित्र और दृश्य मेरे आकर्षण के केंद्र बन गए थे।

विषय सूची

अंधकार

पड़ोस में प्रायः सभी उसके स्वभाव से अप्रसन्न रहा करते थे। उसके आसपास के मकानवाले तो उसके रहन-सहन से घबरा उठे थे। कोई उसे चुड़ैल कहकर मन-ही-मन पचास गालियाँ देता, कोई उसके चरित्र पर टीका टिप्पणी जड़ देता। जिस दिन सबेरे कोई उसका मुँह देख लेता, उस दिन उसे यही चिंता लग जाती कि भगवान, आज दिन कैसा कटेगा! उसके प्रति न-जाने क्यों लोगों की ऐसी धारणा थी।

वह विधवा थी; मगर सदैव सौभाग्यवती है; क्योंकि उसने अपने हाथों की चूड़ियाँ नहीं तोड़ी थीं। उसके दो मंजिले मकान के सामने एक बूढ़े मुंशीजी रहते हैं। उन्हें उसका किस्सा कंठस्थ है। वह बड़े जिंदादिल हैं। उन्होंने उसका नाम 'द्रोपदी' रक्खा है। वह उसकी जवानी की कहानी बड़े शौक से कहा करते—

इसके पति का नाम था—मुरलीमनोहर! वह बेचारा बड़ा सीधा और बहुत ही मिलनसार आदमी था। जब देखता, तभी सलाम करता। किसी से मेल-जोल नहीं रखता था, अपने काम से काम! खूबसूरत जवान था, गोरा बदन, लंबा कद! उसकी आँखें सदैव झुकी रहती थीं। उसकी कपड़े की दुकान थी, दिन-भर मेहनत करता, चार पैसे पैदा करता था। अच्छे कुल में पैदा हुआ था, अपनी मर्यादा बनाए रखता था; मगर उसका भाग्य फूटा था जो ऐसी कुलक्षणा स्त्री मिली! इसकी चाल उसे पसंद न थी।

ईश्वर ने सब कुछ दिया था; मगर वह सुखी न था। इसको वह किसी बात की तकलीफ न होने देता; लेकिन इसका मिजाज हमेशा आसमान पर चढ़ा रहता। ऐसी विचित्र यह स्त्री है!

द्रौपदी-महारानी को लड़के की बड़ी साध थी! बड़ा जंत्र-मंत्र हुआ, मन्नतें मानी गईं। इन सबका नतीजा कुछ न हुआ!

इसके बहुत रोने-गाने पर मुरली मनोहर ने एक लड़का गोद लिया। उसका नाम 'जीवन' रक्खा गया।

अंत में एक दिन की बीमारी में मुरलीमनोहर चल बसा। उसके मरते ही इसने अपना पंख फैलाया। जब तक वह जीता था, तब तक बराबर

इसको पर्दे में रखता था। ओह! उसके उठ जाने पर तो इसने अपना मुँह खोल दिया। अब इसे किसी की लज्जा नहीं। अपने घर में दो-चार किरायेदार बसाये है। सबसे लड़ती-झगड़ती है। तड़ातड़ जवाब देती है।

इतना कहकर मुँशीजी कहते—ईश्वर ऐसी स्त्री किसी को न दे!

* * *

आँ···आँ···आँ

बोल, फिर ऐसा करेगा?

धमाधम! 'जीवन' की पूजा हो रही थी।

अरे जान निकली···आः।

मैं पूछती हूँ, फिर जवाब देगा? बोल!

नहीं, हाथ जोड़ता हूँ, बस।

पास के मकान में एक स्त्री को कुछ तरस आया, उसने पुकारकर कहा—ओ जीवन की माँ, अरे जाने दो लड़का है। अब न मारो।

तड़पकर जीवन की माँ ने उत्तर दिया—चुप रहो, तुमसे क्या मतलब? पढ़ेगा-लिखेगा नहीं, बात का जवाब देगा! मैं तो इसके लिये बरबाद हो गई, पढ़ाई का खर्च और मास्टरों का वेतन देते-देते नाकों दम हो गया, और कुछ पढ़ता ही नहीं।

सहानुभूति प्रकट करनेवाली स्त्री चुप हो गई। उसने मन में कहा—मुझसे क्या संबंध, बैठे-बिठाए झगड़ा कौन मोल ले?

१२ वर्ष का बालक जीवन दिन-भर परिश्रम करता। इतनी छोटी-सी अवस्था में वह स्कूल की सातवीं कक्षा में पढ़ता था। अध्यापक उससे बड़े प्रसन्न रहते। उसे होनहार समझकर सब उससे स्नेह रखते, मगर श्रीमती जी उसकी पढ़ाई से सदैव असंतुष्ट रहतीं। जीवन के गरीब माँ-बाप को पाँच सौ रुपये देकर उन्होंने उसे खरीदा था, उसे गोद लिया था, अपना लड़का बनाया था। अपनी सब सम्पत्ति उसके नाम लिखकर, उसे पढ़ा-लिखाकर, अंत में एक दिन उसे ऊँची अफसरी को कुर्सी पर बैठे हुए देखना ही उनकी एकमात्र अभिलाषा थी। उस अभिलाषा में उनका यश, मान और कीर्ति, सभी कुछ था।

प्रतिदिन जीवन की पढ़ाई के संबंध में वह उससे पूछती—आज क्या पढ़ा ? वह अपने सामने बैठाकर उसे पढ़ते हुए देखती। उसकी आत्मा खिल उठती।

एक साधारण अपराध के लिए वह कठोर-से-कठोर दंड उसे देती थी। जीवन में किसी तरह की त्रुटि वह नहीं देखना चाहती थी। वह उसे घर के बाहर न निकलने देती, लड़कों के साथ खेलना भी मना था !

जब कभी वह अपने संबंधियों के यहाँ जाती, तो उसके वार्तालाप का विषय जीवन की पढ़ाई ही रहती। वह प्रायः लोगों से उसकी निंदा करती; कहती—लड़का बड़ा दुष्ट है। मेरे कहने में नहीं रहता, आगे चलकर न जाने कैसा निकलेगा !

किंतु उसकी ऐसी-ऐसी बातों के सुननेवाले केवल मन-ही-मन मुस्कुरा देते थे।

मनोविज्ञान के आचार्यों को भी उसके दिल की बातें समझने में एक बार भ्रम हो सकता है। कभी वह जीवव को खूब पीटती और कभी उसके चुप हो जाने के बाद स्वयं फूटकर रोने लगती, उसे गले से लगा लेती, चूम लेती, हँस देती। ऐसी थी विचित्र वह स्त्री !

वह झगड़ालू प्रकृति की थी। कभी-कभी दूसरों का गुस्सा वह जीवन पर उतारती थी। किसी से उसकी न बनती। कोई उससे जलता और कोई घृणा करता। ऐसी स्थिति में केवल जीवन ही उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब था।

सावन की अँधेरी रात थी। काले बादलों ने आकाश को बड़ा ही भयानक बना डाला था। वायु के झोंके से वृक्षों की खड़खड़ाहट का कैसा डरावना स्वर मालूम पड़ता था ! ऐसे समय किसीका चीत्कार सुनाई पड़ा—

हाय, मैं तो लुट गई—आ······ह

इधर-उधर कुछ लोग अपनी खिड़कियों पर दिखाई दिये, वे आश्चर्य से सुनने लगे।

अरे मेरा जी···व···न, अरे मेरा लाल ! तू कहा गया रे ? ओह ! मैं नहीं जानती थी कि मेरा जीवन मुझे धोखा देकर चला जायगा। हाय रे, अब मैं क्या करूँ ?

उसके भाग्य की कुंजी खो गई थी। बहुत देर रोने-पीटने के बाद, घर से शव निकाला गया। वह लस्त-पस्त, झूमती-चिल्लाती उसके साथ चली। दो स्त्रियाँ उसे संहाले हुए थीं। उस निचाट रात में उसने देखा—जीवन के सूने मार्ग पर चारों ओर अन्धकार छा गया है।

लेकिन, बूढ़े मुंशीजी को यह कोलाहल बड़ा नीरस प्रतीत हुआ। उनकी नींद खुल गई थी। लैम्प जलाकर वह अपनी बैठक में न-जाने किससे कह रहे थे—जब तक जीता था, गालियाँ मिलती थीं, मार पड़ती थी, कभी सुखी न था। अब चल बसा तो उसका गुण-गान हो रहा है, उसके लिए छाती पिट रही है! वाह री दुनिया, धन्य है तू!

———

अंधे का लोटा

वह बूढ़ा अंधा बहुत देर से थाने पर बैठा था। दरोगा को इतना अव-काश नहीं था कि वह उसकी बातें सुने। नगर में दुर्घटनाओं की बाढ़ सी आई थी। स्वतंत्रता के पश्चात् सचमुच लोग पूर्ण स्वच्छंदता का उपयोग करने लग गये थे। हत्या, आत्महत्या और डकैती आदि तो जैसे साधारण सी बात हो गई थी। दरोगा जी बेचारे खीझ उठते थे।

अंधे ने अधीर होकर कहा—मेरी चोरी हो गई मैं लुट गया।

दरोगा ने रुष्ट होकर कहा—तुम्हारी चोरी हो गई तो हम क्या करें।

आप चोर पकड़ें और मेरा सामान मुझे वापस मिले।—अंधे ने बड़े साहस से कहा।

दरोगाजी अभी थोड़ी देर पहले अपनी लिखा पढ़ी समाप्त कर चार लाशें लारी पर पोस्टमार्टम के लिए भेज चुके थे। एक पुरुष ने उपवास और दारि-द्रता के कारण अपनी पत्नी, पुत्र और कन्या की हत्या कर स्वयं विष खा लिया था। थाने में इस दुर्घटना का आतंक छाया हुआ था। दरोगा ने मुंशी की ओर देखते हुए कहा—इसकी डायरी लिखा कर चलता कीजिये।

मुंशी ने कहा—नाम बताओ

पंचानंद

नियमानुसार सब प्रश्नों का उत्तर लिख कर मुंशी ने पूछा—चोरी में क्या क्या गया।

मेरा सब कुछ चला गया यही एक लोटा बच गया है।

एक-एक चीज का नाम लिखाओ।

एक लकड़ी के बक्स में कुछ पुराना कपड़ा था, नौ रुपये का पैसा और एक सोने की अँगूठी। पंचानंद ने बड़े कातर स्वर में कहा।

अँगूठी कितने की थी?

दो तीन सौ से कम की नहीं थी।

उस पर कोई नग जड़ा था।

नहीं

तब इतनी कीमती कैसे थी ? क्या चार पाँच भर सोने की थी ?

इससे कम थोड़े ही रही होगी ?—पंचानंद ने अँगूठी का महत्व बढ़ाते हुए कहा ।

इस पर थाने के सब लोग हँस पड़े । जो वृद्धा पंचानंद का हाथ पकड़ कर थाने तक लाई थी वह इस हँसी का रहस्य नहीं समझ सकी ।

मुंशी ने फिर पूछा— किसने चोरी की ? तुमको किसके ऊपर संदेह है ।

मैं अंधा आदमी किसको पहचान सकता हूँ ।

बूढ़ा पंचानंद एक हाथ में लोटा लिए और दूसरे से वृद्धा का हाथ पकड़े थाने से बाहर हुआ ।

महीनों बीत गये, किंतु पंचानंद की चोरी के संबंध में कोई जाँच नहीं हुई । अपढ़ पंचानंद को यह कैसे ज्ञात हो सकता था कि अंग्रेजों ने जो कानून बनाया था उसमें कागजात, गवाह और शिनाख्त के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता और अब इनकी कुर्सी पर बैठने वाले उसी कानून का अनुसरण कर रहे हैं ।

पंचानंद जवानी के दिनों में कलकत्ते की एक अंग्रेजी कंपनी में नौकरी करता था । वह साहब की मेज कुर्सी साफ करता, चाय ले आता, और कभी साहब को प्रसन्न करने के लिए उसके जूते की गर्द भी अपने गमछे से साफ कर देता था । वह सुखी था । उसकी पत्नी को अपने पति की कमाई पर गर्व था । समय का फेर पत्नी उसका साथ छोड़ कर अन्य लोक चली गई । पंचानंद को बेरी बेरी ने सदैव के लिए अंधकार लोक का पथिक बनाया । अब वह निसहाय था ।

क्षेत्रे भोजन, मठे निद्रा की भाषा टीका से पंचानंद परिचित था । काशी धाम में चल कर मुक्ति और पेट पूजा दोनों की ही व्यवस्था है । यही समझ कर पंचानंद बिला टिकट के कलकत्ते से काशी पहुँच गया था । उस समय अंग्रेजी राज्य था ।

भगवान शंकर की नगरी में कोई भूखा नहीं रहता । लँगड़े, लूले, अंधे, अपाहिज सब घाट, मंदिर के सामने और गलियों में डेरा जमाये रहते, लेकिन देने वाला सब को देता । पंचानंद भी मंदिर के सामने एक कपड़ा फैला

कर बैठा रहता और उठते समय उसे खाने भर को मिल जाता था। उन्हीं दिनों उसने नौ रुपये के पैसे एकत्र किये थे। देखते-देखते कैसा परिवर्तन हुआ। अंग्रेज साहब के जाते ही भुखमरी फैल उठी। दाना दाना के लिए लोग तरस उठे। पंचानंद अंग्रेज बहादुर का प्रशंसक है।

दानी दाताओं का संकट काल आ पहुँचा। बड़े बड़े सेठों का क्षेत्र बंद हो गया। भगवान की पूजा आरती में कटौती और खींचातानी होने लगी। राजा का राज्य छिन गया। जमींदारी का अंत हो गया। फिर भला पंचानंद जैसे भिखारी की क्या बात। वह भूखे पेट भी संतुष्ट रहता। भगवान के नाम का सहारा था।

उस दिन पंचानंद जब सड़क पर आया तो उसका मार्ग पार करना कठिन हो गया, मोटर, रिक्शा और मनुष्यों से सड़क भरी थी, वह एक गली के सामने कपड़ा फैला कर बैठ गया, भीड़ में जय जयकार हो रही थी, नगर की जनता कोई पर्व मना रही थी।

पंचानंद ने भी रघुपति राघव राजा राम का स्वर गुंजरित किया, कुछ पैसे मिले, इसके बाद किसी ने आकर पूछा—सूरदास भूख लगी है ?

हाँ, बाबा इसी पेट के लिए यहाँ बैठा हूँ,—पंचानंद ने आहत की भाँति उत्तर दिया।

चलो तुम्हें मिठाई दिला दूँ—उसने उत्साहपूर्वक कहा।

पंचानंद को कोई शंका या संदेह नहीं हुआ क्योंकि कभी कभी विशेष पर्व पर कुछ ऐसे दयालु दानी दरिद्र नारायण का आशीर्वाद लूटने के लिए लालायित रहते हैं।

उसने पूछा कहाँ बाबा ?

उस व्यक्ति ने कहा—मेरे साथ चलो मिठाई वाले की दूकान पर।

उसने पंचानंद का हाथ पकड़े हुए मिठाई वाले की दूकान के सामने पहुँच कर पूछा—क्या, क्या खाओगे।

जो मिल जाय बाबा।

उस महापुरुष ने मिठाई वाले से पाव भर मिठाई और आध सेर कचौड़ियाँ लेकर पंचानंद से पूछा—इतने में पेट भर जायगा न।

हाँ, मालिक अच्छी तरह—कहते हुए पंचानंद ने सामान अपने हाथों में लिया।

उस दूकान के पास ही पंचानंद को बैठा कर उसने उसका लोटा पानी लाने के लिए माँगा।

दाता की उदारता पर फूलता हुआ पंचानंद लोटा उसे सौंप कर निश्चिंत होकर खाने लगा, मिठाई वाले ने भी समझा कि दाता पानी लेकर आवेगा तब दाम चुकता करेगा।

लेकिन वह फिर लौट कर न आया। पंचानंद के जीवन का एक मात्र सहारा वह लोटा भी गया और बेचारा हलवाई के झमेले में भी पड़ा...पंचा-नंद की क्षुधा शांत हुई, किंतु वह प्यासा ही लौटा।

अकिंचन

माँ, भूख लगी है—बालक ने कातर वाणी में कहा।

माता निरीह दृष्टि से बालक की तरफ देखती हुई बोली—बेटा कुछ देर ठहरो! देखो, बाबा आज क्या लाते हैं?

बालक मचल मचल कर रोने लगा।

माता ने उसे फुसलाते हुए उँगली के इशारे से कहा—वह देखो, बाबा आ रहे हैं।

थोड़ी देर बाद एक चर्मावशिष्ट कंकाल ने घर में प्रवेश किया। उसकी धँसी हुई आँखों से निराशा बरस रही थी। वह बच्चे को गोद में लेकर चुपचाप बैठ गया।

स्त्री ने धीमे स्वर में पूछा—कहिए, आज क्या प्रबंध हुआ?

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। एक 'आह' खींचकर वह आकाश की ओर देखने लगा। उस समय अँधेरा हो चला था। नीले आकाश की गोद में कई तारे हँस रहे थे।

उसने मन-ही-मन कहा—हे भगवन्, यह जीवन नौका किस प्रकार पार लगेगी?

स्त्री ने विकल होकर कहा—आज घर में बच्चे के लिये भी कुछ नहीं है।

पुरुष की आँखें उमड़ आईं। उसने रुद्ध कंठ से कहा—आह, कहीं से एक पैसा ऋण भी नहीं मिला!

उसी समय बालक ने उसकी ठुड्डी हिलाते हुए कहा—बाबा, आज खाने को क्या लाए?

इस बार वह अपने को रोक न सका। आँखों की उमड़ी हुई नदियाँ बड़े वेग से बह चलीं। पुरुष की ओर देखकर स्त्री अधीर हो गई। उसकी आशा का बाँध टूट गया। सिसकती हुई बोली—संसार क्या दुखियों के लिये नहीं है!

बड़ी देर तक दोनों अपने उजड़े हुए हृदय को थामकर चुपचाप बैठे रहे। दानवी चिंता उनके साथ भीषण परिहास कर रही थी।

स्त्री ने बालक की ओर बड़े छोह से देखा—वह गोद में सो गया था। उसके सुकुमार कपोलों पर आँसू की लकीरें खिंची हुई थीं।

२

देखते देखते उस छोटी सी कुटिया में सुनहली किरणों ने प्रवेश किया। भूमि पर स्त्री, पुरुष और बालक सोए हुए थे। सहसा स्त्री की निद्रा टूटी। उसके मुख पर किरणें चमक रही थीं। उसने आप-ही-आप कहा—किरणों की तपन जलाकर मुझे राख क्यों नहीं कर देती?

उसी समय बालक की भी आँखें खुलीं। वह उठकर बैठ गया।

बाबा, उठो। बली देल हुई—बालक ने कहा।

पुरुष ने भी आँखें खोल दीं। वह उठकर बैठना चाहता था, पर कमजोरी के कारण गिर पड़ा। उसकी आँखों के सामने अंधकार छा गया।

स्त्री ने कातर होकर कहा—कई दिन उपवास करते बीत चुके, पेट में ज्वालामुखी धधक रही है; हे प्रभु! अब भी कुछ शांति दो।

पुरुष सँभलकर फिर उठा। उसने करुण कंठ से स्त्री को सांत्वना देते हुए कहा—आज मैं अंतिम बार अपने भाग्य को आजमाऊँगा।—यह कहते हुए वह कुटिया के बाहर धीरे धीरे चला गया।

स्त्री बालक को छाती से चिपटाकर भूमि पर लेट गई। अबोध बालक उसके सूखे स्तनों को मुँह में लगाए हुए दूध के लिये बिलखने लगा।

*   *   *

संध्या हो चली थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कुछ किरणें अब भी बिखरी हुई थीं।

सहसा पुरुष ने लड़खड़ाते हुए कुटी में प्रवेश किया। सामने आकर वह गिर पड़ा। स्त्री ने देखा—पति को मूर्च्छा आ गई है। उसने शीतल जल से मस्तक को तर किया। पुरुष होश में आ गया। उसने कहा—आज मार्ग में इसी तरह तीन बार मूर्च्छा आ गई थी। एक एक पग मुश्किल से चलकर यहाँ तक पहुँचा हूँ। हा! आज भी कुछ नहीं मिला। मार्ग में एक आम के वृक्ष के नीचे दो आम पड़े थे, उन्हें बालक के लिये उठा लाया हूँ।—कहकर उसने दो आम सामने रख दिए।

स्त्री ने एक लंबी आह खींचकर सिर नीचा कर लिया।

*　　　*　　　*

धीरे धीरे रजनी ने संसार को अंधकार के अंचल में छिपा लिया। उस कुटी में भगवती निद्रा बड़े स्नेह से एक पुरुष, एक स्त्री और एक बालक की आँखों को चूमने लगीं!

(३)

सदा की भाँति प्रभात की सुनहली किरणों ने फिर उस कुटी में प्रवेश किया। वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए विहग अपने मृदु कलरव से प्रभात का जीवन संगीत गा रहे थे। सन् सन् करता हुआ पवन जागरण का संदेश दे रहा था।

बालक जागकर उठ बैठा। उसने बड़े आश्चर्य से देखा—भोर हो गया है, पर अभी तक माता और बाबा की नींद नहीं खुली।

उसने कहा—माँ, उठो! सबेला हो गया।

किंतु माँ न उठी।

उसने अपने नन्हें नन्हें हाथों से बाबा को उठाते हुए कहा—बाबा, उठो। किंतु कोई उत्तर न मिला।

आह, कोई नहीं उठता!—कहते कहते उसकी आँखें छलछला पड़ीं। वह उन्हें बार बार जगाने की चेष्टा करते हुए उनके उठने की प्रतीक्षा करने लगा!

किंतु, उस अबोध बेचारे की प्रतीक्षा कभी सफल होगी?

———

अकेला

जीवन की पिछली पहर में यकायक जब स्वप्न से चौंक कर नींद उचट जाती है तब देखता हूँ खुले आकाश में अगणित तारों के समूह के साथ चंद्रमा कितनी उज्ज्वलता और शीतलता उड़ेलता है; किंतु हृदय के भीषण अंधकार में ज्वालामुखी धधकती रहती है उसमें कहीं शांति और शीतलता की छाया प्राप्त होती है ?

शेष रात करवटें बदल कर कट जाती हैं। प्रभात का पवन जागरण का संदेश लेकर आता है। मंदिर के घंटे बज उठते। मस्जिद में अजान का स्वर तीव्र हो उठता है। वृक्षों पर पक्षियों का कलरव गुंजरित हो उठता है। सूर्य की किरणें कितना भीषण रूप धारण कर मानव को झुलस देना चाहती हैं। सर्वत्र अशांति, चीत्कार, रुदन और हाहाकार की पृष्ठभूमि पर हँसते खेलते हुए मानव की आकृति बदल जाती है। द्वंद्व का नाम ही जीवन है। फिर हताश होकर चुपचाप वह क्या सोचने लगता है ? जीवन की अगणित समस्याओं से पराजित होकर मानव भाग्य की रेखाओं को क्यों अपनाने लगता है।

अपने परायों से अलग होकर मैं शांति की खोज में एकांत जीवन व्यतीत करता हूँ। सब से अलग एकाकी जीवन विशेष प्रिय हो गया है। पशु, पक्षी, जीव जंतु और कीट पतंगों की गतिविधि और रुचि मेरे अध्ययन का विषय बन गई हैं। प्रकृति ही मुझे हँसाती, रुलाती और बहलाती है सब अपने होते हुए भी मेरा कोई अपना नहीं है। मैं अकेला हूँ।

ऐसे व्यक्ति को देख कर जिसका कोई अपना नहीं है, स्वाभाविक सहानुभूति होती है और मैं बड़ी उत्सुकता से उसकी जीवन कहानी से परिचित हो जाता हूँ।

महँगू भी एक ऐसा ही व्यक्ति है। बरामदे में खड़े होते ही तत्काल मेरी दृष्टि उस पर पड़ जाती है। मैं बड़े ध्यान से उसे देखता हूँ। उसकी ऐसी स्थिति देख कर मेरा हृदय विचलित हो उठता है यह कर्मों का फल है अथवा विधाता का अभिशाप है ? कुछ समझ नहीं आता।

कोयले सा काला महंगू मकान के दरवाजे के सामने पटरी पर बैठा था। उसकी आँखें और पेट धंसा हुआ था। उसका संपूर्ण शरीर केवल ठठरी जैसा दीखता था। उसके तन पर वस्त्र के नाम पर केवल एक लंगोट था। उसके चारों ओर मक्खियाँ फैली हुई थीं। बैठे बैठे सहसा वह लुड़क पड़ता था। उठने की शक्ति नहीं, असहाय अवस्था में वह पड़ा रहता जब किसी की दृष्टि पड़ती तरस आती तो हाथ टेका कर वह उसे बैठा देता।

महंगू के जीवन की जानकारी प्राप्त कर लेने पर मुझे यही आश्चर्य होता कि धन पास होते हुए भी वह कष्ट क्यों उठा रहा है? अपने जीवन की गाढ़ी कमाई को जिस दिन के लिये संचित कर रखा था उसका उपयोग क्यों नहीं करता?

(२)

कई महीने बीत गये।

इधर कई दिनों से महंगू की स्थिति में परिवर्तन देख रहा था। अब वह एक टाट के बोरे पर बैठता था। सबेरे रोज तेल की मालिश होती थी। उसकी घुटी खोपड़ी चमकने लगी थी। उसके प्रति सावधानी और सेवा की भावना में एक रहस्य था।

सुना था कि महंगू के मकान का दाम लग रहा है। दलाल सब चक्कर काट रहे हैं। लेकिन गोवर्धन छ हजार से कम पर राजी नहीं होता।

गोवर्धन महंगू का आश्रयदाता है। जब महंगू का कोई अवलंब शेष नहीं रहा तब सजातीय होने के कारण गोवर्धन उसे अपने घर ले आया। महंगू का विश्वास गोवर्धन के प्रति जम गया था। गोर्वधन चमत्कारी पुरुष है वह बात करने में अति निपुण है और भूत प्रेत का तो पक्का ओझा है।

महंगू के ऊपर जब लकवा का आक्रमण हुआ था उस समय प्रेत प्रभाव बता कर गोर्वधन ने महंगू का विशेष सुधार किया था। इसके अतिरिक्त जब महँगू के दमाद ने उसकी सभी चल संपत्ति पर अधिकार कर अंत में धोखा दिया तब गोर्वधन नें जातीय पंचायत कर बहुत प्रयत्न किया, किंतु महँगू के हाथ कुछ नहीं लगा।

महँगू का कोई वारिस नहीं था। एक लड़की थी वह भी चल बसी थी। दमाद ने दूसरा विवाह किया था, महँगू का उस पर अधिकार नहीं था।

गोवर्धन को छोड़कर किसी के ऊपर उसे भरोसा भी नहीं था। यही कारण था कि महँगू पर गोवर्धन का वशीकरण चल गया।

उस दिन महँगू को एक सफेद कुरता और धोती पहने देख कर मुझे बड़ा कौतुहल हुआ। उसका विशेषरूप से आदर हो रहा था। गोवर्धन की पत्नी सोना ने एक कटोरे में हलुआ लाकर महँगू के सामने रख दिया था। दो चार आगंतुकों का स्वागत भी हो रहा था। चश्मा लगाये हुए एक वकील साहब चौकी पर बैठे थे जो ऊँचे स्वर में महँगू को समझा रहे थे। कम सुनने के कारण महँगू केवल सिर हिला देता था।

कुछ देर बाद वकील उठे, गोवर्धन को अपने समीप बुलाकर कान में कुछ कह कर वह रिक्शा पर बैठ कर चलता हुए।

चलते समय उन्होंने कहा था कि गोबर्गन देर मत करना, सीधे कचहरी आना।

जैसे किसी के यहाँ काम काज अथवा विवाह आदि में चहल पहल और हलचल का वातावरण हो जाता है वही स्थिति गोवर्धन के यहाँ भी उपस्थित हो गई थी। महँगू का सत्कार बारात में दुलहे की भाँति हो रहा था, लेकिन उसे क्या पता था कि बलिदान के पहले जो कृत्य होता है वह बलि को भ्रम में डालने के लिये पर्याप्त होता है।

(२)

मानव जीवन में स्वार्थ की भावनाओं का विकसित रूप एटम और हाइड्रोजन बम बन कर हुआ। इस क्षण भंगुर जीवन के अस्तित्व को भली-भाँति समझते हुए भी मनुष्य एक दूसरे को नष्ट करने में तन्मय होकर लगा है।

परिवार, पड़ोस, देश विदेश में सर्वत्र विनाश का एक ही राग सुनाई पड़ता है। एक ही मनोवृत्ति चारों दिशाओं में व्याप्त है।

गोवर्धन जब तीव्र स्वर में महँगू के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने लगता है तब भीड़ इकट्ठा हो जाती है लोग पूछते हैं—क्या बात है ?

तब क्रोध में लाल होकर गोवर्धन कहता है—दिन भर साफ करते करते नाकों दम हो गया है। मल मूत्र की दुर्गंध से रहना कठिन हो गया है। और जब भीड़ में से कोई कहता कि सब कुछ उसका लेकर अब असहाय अवस्था में उसे ठुकरा रहे हो, तब गोवर्धन उस पर भी बरस पड़ता।

देखते देखते साल भर के भीतर ही महँगू पूर्ण अशक्त हो गया था। एक मूक प्रतिमा की भाँति वह एक कोने में स्थापित हो गया था। एक तरफ गोवर्धन की बकरी बँधी रहती और दूसरी ओर गठरी बना महँगू पड़ा रहता।

महँगू जाति का कुम्हार था, मिट्टी के बर्तन और देवी देवताओं की प्रतिमा बनाना ही उसकी जीविका का साधन था। सूर्य चाँद और नक्षत्रों की नियमित गति की भाँति उसका भी कार्यक्रम रहता था, वह परिश्रम से कभी परास्त नहीं हुआ लेकिन एक एक करके परिवार के सभी लोगों को मिट्टी के कच्चे बर्तनों की भाँति अलाव लगाकर वह फूँक चुका तब हताश होकर वह घंटों आकाश की ओर ही देखता रह जाता था।

महँगू को रोगों के आक्रमण ने शिथिल बना दिया। चलता हुआ चाक जब एक दिन रुक गया तब वह फिर चला नहीं। उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी। एक अकेले पेट के लिये कोई उत्साह शेष नहीं रहा। जीवन भर बटोरा हुआ पैसा दो रोटियों के लिये पर्याप्त था।

अचानक चलते हुए आदमी के हाथ से मिठाई का दोना चील झपट्टा मार कर जैसे ले जाती है वही हाल महँगू का भी हुआ। दमाद से धोखा खाने पर महँगू मकान का बयनामा नहीं करना चाहता था। उसका कहना था कि वह लिख जायगा कि उसके मरने के बाद गोवर्धन मकान का मालिक होगा। लेकिन गोवर्धन अमेरिकन डलीज से कम डिप्लोमेट नहीं था। वह जानता था कि महँगू के बाद उसका दमाद झमेला करेगा और व्यर्थ में कचहरी की दौड़ लगानी पड़ेगी। इन सब बातों से उसने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि बाध्य होकर महँगू को मकान पाँच हजार पाँच सौ पर बेचना ही पड़ा था।

मकान बिके एक महीना भी नहीं बीता था कि गोवर्धन के दुर्व्यवहारों का तमाचा महँगू के ऊपर ऐसा पड़ने लगा कि उसकी रही सही बुद्धि भी शून्य हो गई।

सोना छिपा कर महँगू को यदि कुछ खिला देती तो पता लगने पर गोवर्धन मार पीट करने लगता था। नारी का हृदय घर में ही आँखों के सामने भूखे रख कर प्राण लेने के पक्ष में नहीं था। यदि फाँसी का डर न होता तो गोवर्धन महँगू को विष देकर ही समाप्त कर देता। लेकिन इस तरह फाँका करा कर मार डालने में कोई कानूनी बंधन नहीं था।

और इसी तरह कसाई के द्वार पर बंधे हुए पशु की भाँति रात भर उसका करुण क्रंदन सुन कर मानवता उसकी रक्षा का भार लेने के लिये प्रस्तुत नहीं थी।

सोना ने अद्भुत नाटक रचा। तीन घंटे तक भीषण रुदन के पश्चात एक बूँद आँसू भी नहीं गिरा होगा। आसपास में बैठी स्त्रियाँ समझा रही थीं लेकिन उसकी गति निरंतर बढ़ती ही जाती थी। सूत्रधार गोवर्धन भी बीच में बोल उठता अब रोने से क्या होगा भगवान ने उसकी बना दिया।

प्रतिदिन परिस्थितियाँ कुछ गुनगुना कर चली जाती हैं। महँगू के जीवन कहानी का अंत मुझे बार बार विचारों की पगदंडियों पर भटका रहा था। आदर्शों की ऊँची अट्टालिका पर बैठ कर मानवता कितना मधुर अलाप लेती रहती है, किंतु वास्तविक जीवन कितना खोखला सा बन गया है सब कुछ देख सुन कर भी बोलने का उसमें साहस नहीं रहा। लोहे की टाँकी के हजारों वार खाकर पाषाण की प्रतिमा मौन बनी रहती है।

महँगू के तेरहवाँ के दिन उसके जाति भाइयों में कितना उत्साह दिखाई पड़ता था। सभी लोग व्यस्त थे। एक एक दाने के लिये तरस कर मरनेवाले महँगू की चर्चा किसी से छिपी नहीं रही, फिर भी मोतीचूर का लड्डू माँगने में किसी को संकोच नहीं होता था। गोवर्धन ने बड़े हौसिले से बिरादरी की माँग पूरी की थी।

खिले हुए गुलाब को सूँघ कर उसकी सुगंध का संपूर्ण रस निचोड़ कर जब मुट्ठी में मसल कर हम उसकी पंखुडियों को भूमि पर बिखेर देते हैं तब कितना आनंद मिलता है।

यह मसल देने की कामना पीसकर खाक में मिला देने की भावना और यह सर्वनाश के महायज्ञ में आतंक और एटमों की समिधा में केवल एक चिनगारी विश्व के लिये पर्याप्त होगी।

मैं यही सोच रहा था। सड़क पर कोलाहल हुआ भीड़ इकट्ठी हो गई थी। झगड़ा बढ़ रहा था।

गोवर्धन कह रहा था कि मकान बेचने की यह मुफ्त में दलाली कैसी ?' और दलाल कह रहा था कि मकान तुम्हारे बाप का था!

अपराध

काशी

५–१०–२७

प्रिय भाई केशव,

तुम्हारा पत्र दो मास से नहीं आया। मुझे दुःख है। कभी दो-चार लाइन तो लिख दिया करो! मैं जानता हूँ, तुम्हें अवकाश नहीं मिलता। तुम दिन-रात अपनी धुन में मस्त रहते हो, तुम्हारी सफलता का समाचार मुझे समाचारपत्रों से ज्ञात हो जाता है।

विश्वास है; पत्र न लिखने पर भी तुम मुझे भूल नहीं सकते। अब तुम दूसरे क्षेत्र में हो और मैं दूसरे! या यों कहना चाहिये कि तुम स्वतंत्र हो, और मैं परतंत्र।

तुम समाज से खुले मैदान लड़ रहे हो, यह तुम्हारा ही साहस है। मेरा तो गृहस्थी के बंधन में पड़कर उत्साह ही जाता रहा। बैठा विचार किया करता हूँ—कट्टर हिंदूसमाज में फूला-फला हूँ, उसकी बुराई जानते हुए भी कुछ नहीं कर सकता। एक दिन जूता पहनकर पानी पी लिया था, तो चार दिनों तक माँ बोली नहीं थीं। तुम्हीं कहो, घर में कलह करूँ या समाज से झगड़ा?

आजकल घर में स्त्रियाँ मुझसे अप्रसन्न हैं। मेरा अपराध यह है कि इधर मैंने 'मङ्गला' नाम की एक दासी को नियुक्त किया है। उसका किस्सा इस तरह है—एक दिन संध्या-समय मैं बरामदे में बैठा हुआ एक पुस्तक पढ रहा था। गंगा ने आकर कहा—सरकार, एक औरत नौकरी के लिए आई है, उससे किसी ने कह दिया है कि कोठी में एक दासी की जरूरत है।

मैंने कहा—तंग न कर, इस समय पढ़ रहा हूँ।

उसकी ओर ध्यान न देकर मैं पढ़ने लगा। पुस्तक की तरफ से ध्यान हटा; मैंने देखा, वह चुपचाप खड़ा है। मैंने समझा, इसमें कुछ रहस्य है। मैंने कहा—तू क्यों खड़ा है गंगा?

उसने डरते हुए कहा—सरकार, वह बड़ी गरीब मालूम होती है, दो दिनों की भूखी है।

मैंने कहा—अच्छा, उसे यहाँ ले आ।

वह बड़ी प्रसन्नता से आगे बढ़ा। लौटकर आया, उसके पीछे वह स्त्री खड़ी हो गई। उसके मैले वस्त्र पुराने और कई जगह फटे हुए थे।

मैंने ध्यान से उसे देखा, उसका सौंदर्य दरिद्रता से प्रणय-भिक्षा माँग रहा था। उसकी डबडबाई आँखें जैसे कुछ बातें कर रही हों। मैं समझ गया, इस स्त्री का करुण रूप ही गंगा की सहानुभूति का कारण हुआ है।

मैंने कहा—गंगा, यह नौकरी चाहती है, इसकी जमानत कौन करेगा?

गंगा उस स्त्री की तरफ देखने लगा। स्त्री ने धीमे स्वर में कहा—मुझे इस शहर में कोई नहीं जानता। मैं अभागिनी हूँ, भूखी हूँ।

मैंने कहा—इस तरह मैं कैसे रख सकता हूँ, जिम्मेदारी का काम है।

मेरा उत्तर पाकर वह कुछ न बोली और जाने लगी। उसकी आशा का सूर्य अस्त होने जा रहा था।

मुझे कौतूहल हुआ। मैंने कहा—गंगा, उसे यहाँ ले आ वह फिर आकर मौन खड़ी हो गई।

गंगा कहने लगा—सरकार, यह चोर नहीं मालूम पड़ती; भाग्य की सताई हुई है।

मैंने कहा—अच्छा, मैं इसे नौकरी देता हूँ। जनाने मकान में भेज दे।

उसकी निरीहता पर मुझे तरस आया और बिना किसी जमानत के मैंने उसे नियुक्त कर लिया।

बोलो केशव? ठीक किया या नहीं?

तुम्हारा—
'प्रभात'

(२)

काशी
१२—१०—२७

भाई केशव!

तुम्हारा पत्र मुझे कल मिला था। सब समाचार विदित हुए। तुमने लिखा है कि समाज में अभी ऐसी ऐसी पतिता और निस्सहाय दरिद्र अबलाएँ हैं, जिनकी सहायता और उत्थान के नाम लेने से हिंदू समाज काटने दौड़ता है।

तुम्हारी इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे प्रतीत हुआ, जैसे प्रत्यक्ष में तुम अपने स्वाभाविक जोशीले शब्दों में कह रहे हो—निर्लज्ज समाज की बातों पर ध्यान देने से साफ दिखाई देता है कि पुरुष जाति ने अपने सुख और अधिकार सुरक्षित रखने के लिए ही समाज के नियम बनाए हैं। कोई पुरुष शराब पीता है, माँस खाता है, वेश्याओं की जूतियाँ साफ करता है और फिर घर में चुपचाप आकर रामानंदी तिलक लगाकर बैठ जाता है। कोई उसपर ध्यान नहीं देता, और समाज देखकर भी उसका कुछ नहीं कर सकता। और, यदि किसी स्त्री से साधारण अपराध हो गया, तो तत्काल वह समाज से निकाल दी जायगी। मैं पूछता हूँ—वह क्या करेगी ? क्या पेट के लिए वेश्या होना अस्वाभाविक है ?

तुम्हारे वह स्वर अभी तक गूँज रहे हैं। मैं भूला नहीं हूँ। तुम्हारी बातों पर मैं खूब विचार करता हूँ।

तुम स्त्रियों को शिक्षित बनाना चाहते हो—राजनीतिक परिस्थिति को समझाने के लिए, देश की दशा पर आँसू बहाने के लिए, और अपनी संतान को साहसी और उद्योगी बनाने के लिए, न कि सुंदर और साहित्यिक भाषा में प्रेम पत्र लिखने के लिए !

खैर, इन विषयों पर तुम्हीं विचार करो, मैं तो अपनी आत्मा से लड़ रहा हूँ। देखूँ, सफल होता हूँ या नहीं। विद्रोह का प्रारंभ है।

हाँ, तुम्हें मैंने 'मंगला' के संबंध में कुछ लिखा था। उसकी नई खबर सुनो—घर में स्त्रियाँ कहती हैं कि जब से मंगला आई है, तब से कई सामान चोरी हो गए हैं। उसी पर सबका संदेह है। वह कभी कभी अकेली बैठकर रोती हुई पाई जाती है, इसपर भी लोग अप्रसन्न रहते हैं।

गंगा भी कई बार उसकी निंदा कर चुका है। उसका तात्पर्य मैं समझ गया, मंगला को मैंने नौकरों के बीच अन्य दासियों की भाँति कभी हँसते बोलते नहीं देखा है। हो सकता है, इसीलिए मंगला उसकी आँखों में खटकती हो ?

अभी कल की बात है, मंगला मेरे बच्चे को खिला रही थी। मैंने बच्चे को बुलाते हुए मंगला से कहा—उसे यहाँ ले आ।

वह लेकर आई, बच्चा खेलने लगा। मंगला खड़ी थी। मैंने पूछा—मंगला, तुम्हारे बारे में बहुत सी बातें सुनी जाती हैं।

बड़े साहस से उसने कहा—कौन सी बात सरकार ?

मैंने कहा—तू दिन रात रोनी सूरत क्यों बनाए रहती है ? अब तो तुझे कोई कष्ट नहीं है ?

उसकी आँखें भर गईं। वह बच्चे को लेकर जाना चाहती थी। मैंने कहा—क्यों, ठीक है ?

उसने अस्फुट शब्दों में कहा—हँसी कभी आती नहीं, इसीलिए नहीं हँसती। दुःख में रोना ही अच्छा लगता है।

मैंने कहा—तेरे दुःख का कारण ? यहाँ तुझे कष्ट है क्या ?

मुझे कोई कष्ट नहीं है।

तब ?

दूसरे के कष्ट के लिए रोती हूँ।

मैं उसकी तरफ देखने लगा; उसने आँखें नीची कर लीं। उसी समय एक दासी ने पुकारा—मंगला, बच्चे को ले आ। मंगला चली गई मैं फिर कुछ भी न पूछ सका।

केशव, मैं बहुत से स्वभावों का अध्ययन कर चुका हूँ, मुझे किसी के चरित्र का अध्ययन करने में बड़ा आनंद मिलता है; किंतु मैं सच कहता हूँ, मंगला मुझे विचित्र मालूम पड़ती है।

मंगला के संबंध में अभी तक कुछ नहीं समझ सका हूँ। इतना अवश्य जानता हूँ कि वह दुःखी है, और सो भी अपने लिये नहीं।

अब पत्र समाप्त करता हूँ, फिर कभी लिखूँगा।

स्नेही—
'प्रभात'

(३)

काशी
२-११-२७

भैया केशव !

तुमने इस बार दो सप्ताह बाद मेरे पत्र का उत्तर दिया है। तुम बीमार थे, अब अच्छे हो गए, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुम कब तक निराश प्रेमी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करोगे ? पहले तुम कहा करते थे कि मैं सांसारिक विलासमय प्रेम नहीं चाहता।

मैं चाहता हूँ पवित्र गंगाजल की तरह निर्मल और शुद्ध प्रेम ! अब देखता हूँ, तुम्हारी बातें सत्य हो रही हैं, और इसीलिए शायद तुम विवाह नहीं करते। क्यों, क्या अभी तक कोई मिली नहीं ?

मैं तो भाई, प्रेम को नमस्कार करता हूँ। मैंने अपने जीवन में कभी स्वच्छ और पवित्र प्रेम देखा ही नहीं। वास्तव में यह सब कवि की कल्पना है और अभाव के समय रोने का बहाना है। इतना समझते हुए भी मैं कभी-कभी रोता हूँ, इसीलिए रोने का मर्म जानता हूँ। आह ! रोने में भी कभी-कभी बड़ा मज़ा मिलता है—और ऐसे समय रोने में, जब आँसू पोंछनेवाला भी न हो। रहने दो, ऐसी बातें न लिखूँगा, उलटा तुम हँसी उड़ाओगे।

कलुपित वासनाओं से धुँधले आकाश में चाँदनी छिटकी है। मैं प्रेम-राज्य से निर्वासित हूँ ! मैंने आँख भर प्रेम देखा नहीं है, जी भरकर उसके संगीत को सुना भी नहीं; किंतु उसके स्वर मेरे परिचित हैं। मैं उस दर्द को जानता हूँ, अतएव उन दर्द वालों के प्रति मेरी सहानुभूति अवश्य है।

मंगला के संबंध में कुछ लिखकर मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि यह मुझे एक नवीन अनुभव हुआ है।

उस दिन अमावस्या की काली रात थी। बड़ा सन्नाटा था। मैं नौ बजे ही सो गया था। आधी रात को शोर हुआ, मैं उठकर बैठ गया। आश्चर्य और उत्सुकता से ध्यान लगाकर सुनने लगा, गंगा जोर से कह रहा था—इसको खूब मारो।

मैं कमरे में शय्या से उठा और बाहर आकर देखने लगा—मेरे तीनों नौकरों ने किसी आदमी को पकड़ा है और उसे मार रहे हैं, उनके सामने मंगला खड़ी रो रही है।

मैंने डाँटते हुए कहा—मूर्खों ! तुम लोग क्या कर रहे हो ? इतना शोर क्यों मचाया है ? बात क्या है ? वह कौन है ?

उन सबने उस आदमी को पकड़ कर मेरे सामने खड़ा कर दिया। मंगला को मेरे सामने आने का साहस न हुआ, वह दूर खड़ी थी।

नौकरों में से गंगा एक साँस में कहता गया—हुज़ूर, इसने चोरी की है, इसे थाने में भेजना चाहिए। साला बड़ा होशियार है। यही कई बार कोठी का सामान इसी तरह ले गया है।

मैंने कहा—इसने क्या चुराया है ? कैसे चुराया है ?

गंगा ने मेरे सामने एक कंबल और कुछ कपड़े दिखलाते हुए कहा—इसे ऊपर की खिड़की से मंगला ने फेंका था। मुझे इसकी आहट लग गई थी। मैं उस समय जागता रहा, इसने सलाई बाली थी। ऊपर से धम से कोई चीज नीचे गिरी। मैंने सचेत होकर द्वार खोला, यह भाग रहा था, मैंने इसे पकड़ा है।

मैंने घूमकर देखा, वह थरथर काँप रहा था; हाथ जोड़कर दया-याचना करने लगा।

मैंने आश्चर्य से कहा—क्या मंगला ने फेंका था ?

सब नौकरों ने एक स्वर में कहा—हाँ सरकार, उसी ने फेंका था।

अपराधी की तरह मंगला मेरे सामने आ गई और बड़े साहस से उसने कहा—अपराध मेरा है। मैंने ऊपर से फेंका था, इन्होंने इसे लिया, यह निर्दोष हैं।

लंप के प्रकाश में मैंने देखा— मंगला की आँखों में बिजली चमक रही रही थी। वह दरिद्र पुरुष मंगला की तरफ देख रहा था; वह अत्यंत दुर्बल था, आँखें धँसी थीं, बड़ा डरावना मालूम पड़ता था।

मैंने पूछा—मंगला ने तुझे क्यों दिया ? वह तेरी कौन है ?

वह चुप था। मैंने फिर कहा—बोल ! बताता क्यों नहीं ?

उसने कहा—मैं इसी के लिए जीता हूँ, यह मुझे मरने नहीं देती।

रात्रि के दो बज रहे थे। मैं कुर्सी पर बैठकर विचार करने लगा—इन दोनों का प्रेम है, तभी मंगला ने इसके लिए अपराध किया है। ये लोग दरिद्र हैं; किंतु इनके पास भी हृदय है। ये प्रेम करना जानते हैं। एक लिए दूसरा अपना सर्वनाश करने के लिए प्रस्तुत है। अभाव और दरिद्रता ने ही मंगला को चोरी करने के लिए बाध्य किया है।

मैंने कहा—मंगला, यदि तू सच सच सब हाल बता दे तो मैं तुझे छोड़ दूँगा, तूने इसके लिए क्यों चोरी की ?

उसने सलज्ज करुण स्वर में कहा—हम और यह भाग कर अपने देश से चले आए हैं। यह मेरे पति हैं। बहुत दिनों तक नौकरी करते रहे; किंतु

यह नौकरी भी न कर सके, मेरे पास दिन रात बैठे रहने में ही यह अपना सब कुछ खो बैठे। इनसे नौकरी होती नहीं और अब कहीं मिलती भी नहीं। इसलिए मैं ही नौकरी करती हूँ। मेरा पेट तो यहाँ भर जाता है, पर इनके लिए चोरी करनी पड़ती है।

मैंने कहा—और कुछ ?

उसने कहा—इतना ही मेरा अपराध है।

उसकी बातों का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने कहा—मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

वह आदमी मेरी तरफ आश्चर्य से देखते हुए मेरे पैरों पर गिर पड़ा!

मैंने फिर कहा—अब तुम लोग क्या करोगे ? कहाँ जाओगे ?

मेरे नौकर आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगे। उसने कहा—संसार में कहीं स्थान नहीं है, कहाँ जाऊँगा ?

मंगला को विश्वास था कि अपराध क्षमा करते हुए भी अब मैं उसे अपने यहाँ स्थान नहीं दूँगा।

मैंने कहा—तुम घबराओ नहीं, मंगला को मैं निकालूँगा नहीं। तुम भी यदि नौकरी करना चाहो, तो मेरे यहाँ रह सकते हो।

वह कुछ बोल न सका, फूट-फूटकर रोने लगा।

उस दिन से दोनों मेरे यहाँ बड़े आनंद से रहते हैं, और सब लोगों को इससे बड़ा असंतोष है। उनको खटका लगा रहता है; पर मैं निश्चिंत हूँ कि अब वे चोरी नहीं करेंगे।

तुम्हारी क्या संमति है ? क्या मैंने भूल की ?

तुम्हारा—

'प्रभात'

———

अभागों का घर

जीवन के सुहावने दिन समय की निष्ठुरता में अपने अस्तित्व को नष्ट कर चुके थे। वर्षों से मन में शांति न थी। शरीर अस्वस्थ रहता था। प्रतिदिन की निराश उदासीनता ने मेरी दिनचर्य्या को हाहाकारमय बना डाला था। जीने में कोई सुख नहीं, फिर भी जीना होगा, रो रोकर जीना होगा, मरने के लिए जीना होगा—ऐसा इस विश्व का नियम है !

मैं अस्पताल के एक कमरे में आरामकुर्सी पर लेटा था। बिजली के प्रकाश में कमरा आलोकित था। रुग्णावस्था में दार्शनिक विचार बहुधा मस्तिष्क के चारो ओर मँडराया करते हैं। मैं इसी तरह की बातों में तल्लीन था। बहुत देर तक सोचता रहा। अंत में इस निर्णय पर पहुँचा कि यह सब व्यर्थ है। जीवन में दो ही सत्य हैं—प्रसन्न रहना और मर जाना।

इसी समय एक कविता की कुछ पंक्तियाँ मैं गाने लगा—

तुम कनक किरन के अंतराल में
लुक-छिप-कर रहते हो क्यों ?

द्वार पर खड़ी मिस क्रेसी ने पूछा—मैं भीतर आ सकती हूँ ?

मैंने कहा—जी हाँ, आइये।

क्रेसी अस्पताल की नर्स थी। उसकी श्रेणी की अनेकों नर्सें प्रतिदिन "ड्यूटी" बदलने पर मेरा द्वार खटखटाती थीं। मेरी सेवा का भार अनेकों पर था। लेकिन क्रेसी को मेरी विशेष चिंता थी। उसकी आँखों से यह प्रकट होता था कि वह प्रतिक्षण यह चाहती रहती है कि मैं शीघ्र ही निरोग हो जाऊँ। उसके सरल और गंभीर भाव तीव्र गति से मेल जोल बढ़ा रहे थे।

क्रेसी ने मेरे समीप आकर पूछा—आज तो आप प्रसन्न मालूम पड़ते हैं ?

मैंने उसकी ओर देखते हुए कहा—क्यों ?

उसने कहा—इसलिए कि अभी आप गा रहे थे।

मैंने कहा—क्या गाने से ही प्रसन्नता की सूचना मिलती है ?

उसने गंभीरता से उत्तर दिया—जब मनुष्य के हृदय में प्रसन्नता गुदगुदाने लगती है, तभी वह गाता है। अथवा वेदना जब हृदय में फूल उठती है, तब वह गीत का हार गूँथने लगती है।

मैंने कहा—हूँ!

मैं कई दिनों से उसकी बातों से ही उसको टटोल रहा था। वह भोली और गंभीर थी। दूसरी नर्सों की भाँति बात बात में हँसना, भाव प्रदर्शन करना इत्यादि विशेषताएँ उसमें न थीं। मेरे लिए वह एक पहेली बन गई थी। मैं चुपचाप उसकी ओर देख रहा था।

उसने कहा—आपकी दवा का समय हो गया है।

मैंने कहा—ठीक है, लाओ।

उसने काँच के एक छोटे से गिलास में दवा उड़ेली। इसके बाद उसे लाकर मेरे ओठों से लगाया। मैं आखें बंद किए हुए एक ही साँस में पी गया।

उसने पूछा—दवा कड़वी है—कष्ट होता है?

मैंने कहा—विशेष नहीं।

नित्य का यह नियम था कि आठ बजे मुझे दवा पिलाकर वह चली जाती थी। उस दिन का उसका कार्य समाप्त हो जाता था।

(२)

वर्षा के अंतिम दिन जाड़े के सूर्य की प्रथम किरणों की प्रतीक्षा में अपनी आँखें बिछाये हुए थे। मेरे उज्ज्वल दिवस विश्राम की चादर ओढ़े, थके पड़े थे। मैं कराहता था, हँसता था, गाता था। संसार में कौन किसका है? कौन किसके लिए रोता है? यह सब कोरी कल्पना है। स्वार्थ की रुलाई निराशा के अंधकार में डूब जाती है, हमलोग सब भूलने लगते हैं। स्नेह प्रेम, उत्साह और प्रसन्नता को कुचलता हुआ मनुष्य कहाँ से कहाँ चला जाता है।

आज एक मास से मैं अस्पताल की इसी स्प्रिंगदार शय्या पर पड़ा जीवन मरण के अगणित प्रश्नों का उत्तर प्रत्युत्तर देता रहा हूँ। कल दिन भर बुखार चढ़ा था। केसी ने चार बार "टेंपरेचर" लिया। उसने उदास आँखों से कई बार मेरी तरफ देखा था। मेरी आँखों में ज्वाला थी।

ज्वर शांत हो गया था। अकेले बैठे बैठे मन नहीं लगता। अतएव मैं कभी बरामदे में टहलता हुआ अन्य रोगियों की अवस्था देखता था। आज तो बड़ी ही भयानक दुर्दशा एक रोगी की देखी—ओह! उसका मुँह फूल कर फुटबाल हो गया था। उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी। 'स्टेचर' पर लाकर उसे बाहर की शय्या पर सुलाया गया था। मैं उसे देखकर भयभीत हो गया। फिर भी अपने कमरे के द्वार पर खड़ा देखता रहा।

डाक्टरों का समूह उसकी परीक्षा कर चुका था। आपरेशन हो रहा था। क्लोरोफार्म से वह बेहोश था। एक डाक्टर छुरियों से उसका मांस काट कर निकाल रहा था और क्रेसी उसे सहयोग दे रही थी। खून से उसका हाथ लथपथ हो रहा था। मैं काँप उठा। ठीक उसी समय बड़ी मेम निरीक्षण करने के लिए आ रही थीं।

मैंने उन्हें देख कर कहा—गुडमार्निङ्ग, सिस्टर।

उन्होंने मेरे समीप आते हुए कहा—गुडमार्निङ्ग-हाऊ आर यू?

मैंने बड़ी नम्रता से कहा—अब मैं नीरोग हो रहा हूँ। इस सप्ताह मैं एक पाउण्ड बढ़ा हूँ।

मुझे, "प्रसन्नता है"—मुस्कराकर कहते हुए वह आगे बढ़ीं। मैं अपने कमरे में चला आया।

उस दिन संध्या समय क्रेसी मेरे कमरे में आई। मैं कुर्सी पर बैठा था। उसने लोशन की शीशी, हाथ में लेकर मेरे केशों को तर किया। इसके बाद कंघी से मेरे बालों को सँवारने लगी। वह चुप थी।

मैंने आँखें बंद किये हुए कहा—तुम्हारे कार्यों को देख कर मुझे आश्चर्य होता है! वह कितना भयानक रोगी आया है और तुम कितने साहस से उसकी सेवा करने में तत्पर रही हो। तुम्हारे मुख पर तनिक भी घृणा का भाव प्रकट नहीं होता था। सचमुच तुम बड़ी विचित्र हो।

उसने कहा—यही मेरा जीवन है!

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें गंभीरता का प्रकाश उड़ेल रही थीं।

मैं चुप था।

उसने फिर कुछ देर सोचकर कहा—सेवा ही हमारी जीविका है।

मैंने कहा—तुम धन्य हो, तुम्हारा ही जीवन सार्थक है।

(३)

इसी तरह एक सप्ताह और समाप्त हुआ। मैं अब स्वस्थ हो गया था। क्रेसी के प्रतिदिन के कार्यक्रम मुझे उपन्यास के परिच्छेद की भाँति आकर्षक प्रतीत होते थे। उसकी जीवन-संबंधी घटनाएँ मेरे मस्तिष्क की खूराक बन गई थीं। नौकरों से जब बातें होतीं, तब उसी की चर्चा! रोगियों से भी जब वार्तालाप होता, तब उसी की प्रशंसा !!

एक दिन एक बूढ़े रोगी ने मुझसे कहा—महाशय, इस छोटी मेम ने मेरी जान बचाई है। क्या ऐसी सेवा घर में अपनी माँ-बहन भी कर सकती हैं? भगवान इसका भला करे। मैं जीवन भर इसका गुण गाऊँगा।

उसी समय क्रेसी वहाँ आ गई। उसने बूढ़े रोगी की तरफ देखते हुए बड़े प्यार से कहा—तुम-दिन भर बातें करते हो?

उसने प्रेम से गद्‌गद् होकर कहा—क्या करूँ, माँ, अपना मन बहलाता हूँ।

मैं वहाँ से हट गया। क्रेसी भी अपना काम करने लगी।

वह रोगी क्रेसी को 'माँ' ही पुकारता था। उसके इस संबोधन में कृतज्ञता थी—सरलता थी।

दोपहर का समय था। इस समय क्रेसी को थोड़ी देर के लिए अवकाश मिलता था। मैं लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। वह आई। मैंने पुस्तक रखते हुए कहा—क्या आज्ञा है?

उसने कहा—आप समाचार पत्र पढ़ चुके? मैं ले लूँ?
मैंने कहा—हाँ, प्रसन्नता से।

उसके मुख की गंभीरता सदैव उदासीनता की खाई में छिपी रहती थी। मेरे लिए यह एक कौतूहल था।

आज साहस कर के मैंने कहा—एक बात पूछना चाहता हूँ, यदि इसे अनुचित न समझो।

उसने कहा—हाँ, पूछिये······

मैंने कहा—यहाँ पर जितनी नर्सें हैं क्या जीवन-भर वे अविवाहित ही रहेंगी?

मेरे इस मूर्खतापूर्ण प्रश्न पर उसे आश्चर्य हुआ।

उसने कहा—नहीं तो, इनमें से अनेक उपयुक्त पति प्राप्त हो जाने पर, अपना विवाह कर लेंगी।

मैंने धृष्टता से पूछा—और तुम ?

उसने कहा—मैं जब भी इस प्रश्न पर विचार करती हूँ, मेरा उत्तर यही होता है कि मैं अविवाहित रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करूँगी।

मैंने उत्सुकता से पूछा—ऐसा क्यों ?

उसने कहा—पुरुषों पर मेरा विश्वास नहीं है, फिर भी उनकी सेवा मेरी जीविका है। मैं बचपन से ही अनाथ हूँ। मेरे पिता का, माँ के प्रति, सदैव ही दुर्व्यवहार रहा है। मेरी माँ का कष्टों में ही अंत हुआ था।......कहते कहते वह चुप हो गई।

इतने दिनों के परिचय के बाद उसने जैसे अपने हृदय की बात कही थी।

वह फिर एक शब्द भी न बोली, चुपचाप मेरे कमरे से चली गई।

(४)

तीन वर्ष बीत चुके थे।

उस दिन महीनों भ्रमण करने के बाद परदेश से मैं घर लौट रहा था। मुगलसराय स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। बड़े कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। कुहरा छाया हुआ था। सूर्य की किरणें आकाश में फैल रही थीं। मैं 'चाय' पीने के लिए गाड़ी से उतरा।

सामने ही बगल के प्लेटफार्म पर बांबे मेल खड़ी थी। मुझे वहाँ एक अपनी परिचित आकृति दिखलाई पड़ी। मैं समीप गया। आश्चर्य से मैंने पूछा—मिस क्रेसी ?

उसने मेरी ओर उसी तरह आश्चर्य से देखा। उसके साथ एक युवा पुरुष भी था।

मैं भावोन्मत्त होकर कहने लगा—इतने दिनों के बाद तुम्हें देखकर मन होता है कि तुम्हारी गाड़ी में बैठकर तुम्हारे साथ ही चलूँ।

उसने उस पुरुष की ओर देखते हुए मुझ से कहा—मैंने बहुतों की सेवा से थक कर अब केवल इन्हीं की सेवा का भार लिया है। यह मेरे पति हैं। अब मैं विवाहित हूँ।

वह पुरुष मुस्करा रहा था।

मैं सचेत होकर दोनों की ओर देख रहा था। सहसा मेरे मुख से निकला—भगवान तुम लोगों को प्रसन्न रखें।

ठीक उसी समय इंजन ने सीटी दी। गाड़ी चलने लगी। खिड़की से वे दोनों रूमाल हिला रहे थे। मैं प्लेटफार्म पर खड़ा रूमाल से उनका उत्तर दे रहा था।

अभिनेता

प्रेम की लहरें आलिंगन कर रही थीं ! वह अपनी हँसी में संसार का एक सुनहला परदा देखता था। जोवन का अल्हड़पन सुखी जीवन की आशों का रंग-बिरंगा जाल बना रहा था। हृदय की चुहल परिहास कर रही थी। उस हँसी में साम्राज्य विजय का अभिमान था, और उस रोने में—एक अबोध शिशु की सरल सिसकियाँ खेल रही थीं।

उसे जीवन की बड़ी ममता थी। ऐश्वर्य की कामना वासना के सिंधु में उन भीषण लहरों के साथ छेड़खानियाँ करने के लिए प्रस्तुत थी। उसने, समझा यही समय है। देखा सुंदरी पुष्पों का एक हार गूँथने में व्यस्त है। गर्व की मस्तानी हँसी में वह खिलखिला पड़ा। उसे अपनी सफलता पर आश्चर्य था।

उसने कहा—क्यों, जीवन का यही अमूल्य समय है न ?

सुंदरी अपलक नयनों से देखने लगी।

बोलो ? चुप क्यों हो ?—युवक ने पूछा।

सोचती हूँ, इतना सुख बटोरकर क्या हम लोग इस संसार में सुखी रह सकेंगे ?

इसमें तुम्हें संदेह क्यों हो रहा है ?

संसार की ओर देखकर।

संसार से संबंध क्या ?

जैसा कहो।

मैं तो अपना एक छोटा-सा संसार तुम्हें ही समझता हूँ।

और मैं ! तुम्हें अपने जीवन के अंतर-तम प्रदेश के अंधकार की सीमा के पास प्रकाश की एक उज्ज्वल रेखा समझती हूँ।

छाया ! मेरे जीवन का सुख तुम्हारी चुटकियों के ताल पर उस अज्ञात संगीत का मधुर स्वर सुन रहा था।

संसार बड़ा मनोरम था।

(२)

रात और दिन [illegible] अँगड़ाई में समाप्त हो जाता था। प्रकृति के सुंदर दृश्यों [illegible] चुपचाप कानों में कुछ कहकर आकाश में स्वप्नों के समान अपना अनुपमचित्र दिखलाती थी।

जीवन की अभिनय-शाला का वह प्रथम दृश्य था। निर्भिकता से संसार के सामने उसने आँखें उठाईं।

लोगों ने तीखे स्वर में कहा—भूखों मरोगे, रोओगे।

उसने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया—कोई चिंता नहीं। साहस सहचर बन गया था।

रण क्षेत्र में मशीन गन की तरह संसार की उँगलियाँ उठ गई थीं समाज कौतूहल से चौकन्ना होकर देखने लगा।

(३)

छाया! वह दिन याद है?

कौन सा?

जिस दिन हम और तुम परिचित हुए थे।

क्या ऐसी घटना भूल सकती है?

उस समय प्रसन्नता बिना पुचकारे दौड़ी चली आ रही थी। अब समझता हूँ, सचमुच, वे दिन बड़े सुखद थे, जब तुम्हारे नाम का उन्माद था! गंगा के उस पार, बालू की रेती पर, तुम्हारा नाम लिखकर मिटा देता था, जिसमें उसपर किसी का पद चिह्न न पड़ जाय।

और मैं! अधखुली आँखों से चंद्रमा में तुम्हारा चित्र देखकर अपने को भूल जाया करती थी।

प्रिये! इस जीवन में स्वार्थी संसार से निराश होकर केवल तुम्हारी ही चाह थी। आह! संसार कितना निर्दय है।

संसार क्या है? हम तुम यहाँ क्यों आए। एक रहस्य की बात है।

संसार एक अथाह सागर है, तुम और हम उसकी मदमाती लहरें हैं। उसी में से ये लहरें आती हैं और अंत में एक दिन उसी में उछलती कूदती विलीन हो जायँगी। मैं इससे अधिक नहीं समझता।

और, मैं समझती हूँ, संसार एक रंगमंच है। हम और तुम उसके अभिनेता हैं। अपना खेल दिखलाकर हम लोग पर्दे में छिप जाते हैं।

युवक किसी भाव में लीन होकर आकाश की ओर देखने लगा।

(५)

कई वर्ष बीत गए।

प्रति दिन परिवर्त्तन कुछ गुनगुनाकर चला जाता।

छाया जैसे अपने खेल से स्वयं ऊब गई थी। नित्य एक ही दृश्य, एक ही राग, एक ही स्वर सुनते सुनते हृदय में खटकने लगता है।

उस दिन छाया उदास बैठी थी। उसने अपने पालतू रंगबिरंगे पक्षियों को बंधनमुक्त कर दिया था। वह विचार कर रही थी कि आकाश में भटकनेवाले, प्रकृति की मुस्कान पर नृत्य करनेवाले और स्वतंत्रता की गोद में खेलनेवाले विहगों को बंदी बनाकर रखना कितना अन्याय है। वे पालतू, अपने पंखों से शक्तिहीन, पक्षिगण पेड़ों के झुरमुट में से छाया का यह खेल बड़े ध्यान से देख रहे थे। यह एक नवीन पहेली थी।

युवक कार्य समाप्त कर अपने घर लौटा। देखा, कुछ समझ न सका। उसने बड़े कुतूहल से पूछा—छाया, आज ये पिंजड़े खाली क्यों पड़े हैं? ओह! तुम्हारा मुँह कैसा हो गया है? आँखें भरभरा उठी हैं, बात क्या है?

छाया की आँखों में स्वतंत्रता की प्यास भरी थी। उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा—पराधीनता पिंजड़े में फड़फड़ा रही थी; वर्षाऋतु के ये काले बादल उन्हें कोई संदेश दे रहे थे। मैंने उन्हें छोड़ दिया, प्रेम की अतृप्त बूँदों से प्यास बुझाने के लिये।

यह नया खेल कैसा छाया? तुम्हारे विचारों और कार्यक्रम में परिवर्तन हो रहा है। तुम अकेले बैठी रोया करती हो?

कुछ नहीं! एक नवीन पीड़ा का अनुभव कर रही हूँ।

कैसी?

उसे व्यक्त नहीं कर सकती।

इसकी कोई दवा है?

छाया चुप थी। युवक छाया की ओर एकटक देखने लगा। आँखों ने अपनी सांकेतिक भाषा में कुछ बातें कीं।

युवक को कुछ कहने का साहस न हुआ। विचित्र समस्या थी।

दूसरे दिन फिर युवक जब लौटा, तो उसने देखा—छाया न थी। हृदयपट पर इंद्र-धनुष के समान छाया अपनी मुस्कान छोड़कर लुप्त हो गई थी। युवक ने सोचा, छाया इस जीवन से संतुष्ट न रह सकी।

उस सूने घर में, अंधकार की छाया में, निराशा अपना नृत्य दिखला रही थी। युवक भी घर छोड़कर चला गया। पथविहीन होकर भटकने लगा।

(५)

मन में ग्लानि थी। हृदय में धधकती हुई ज्वाला जल रही थी। संसार की मनोरमता पिछली रात के एक स्वप्न की तरह नष्ट हो गई थी। जिस छाया के अवलंब पर संसार से अपना नाता तोड़ा था, वह भी चली गई। कोई अपना न हुआ। जीवन काटने के लिये अब कोई सुख न था।

अपने को मिटा देने की इच्छा होते हुए भी मनुष्य आसानी से, बिना किसी ईर्ष्या की जलन के, अपने प्राण देने के लिये प्रस्तुत नहीं होता। जीवन का कुतूहल नित्य नवीन खेल देखने के लिये उत्सुकता से अपने पंख फैलाये रहता है, चाहे प्रलय का भीषण तूफान ही क्यों न उठा हो।

मन बहलाने के लिये वह नाटक देखने जाने लगा। एक दिन सहसा छाया की वह बात याद आई कि हम लोग संसार रंगमंच के अभिनेता हैं; हैं, तो फिर बनावटी नाटक में ही क्यों न अभिनय करें।

कुछ दिनों के बाद उसे एक प्रसिद्ध नाटक कंपनी में स्थान मिल गया। उसकी रसीली आँखें, सुनहले केश एक अभिनेता के उपयुक्त थे।

वह कंपनी के साथ अपना कौशल दिखलाता फिरता रहा। उसके अभिनय पर लोग चकित हो जाते। वाह वाह की ध्वनि से रंगमंच गूँज उठता। दिन-पर-दिन उसका संमान बढ़ने लगा। आदर उसके संमुख हाथ फैलाए खड़ा रहता।

वह नाटकों में प्रधान पात्र का पार्ट करता।

* * * *

आर्य-नाटक-मंडली प्राचीन भारतीय नाटकों का अभिनय करने में प्रसिद्ध थी। प्रत्येक नगर में शिक्षित जनता उसका अभिनय देखने के लिये उत्सुक रहती।

उस दिन वसंतसेना का अभिनय था।

वह चारुदत्त का पार्ट कर रहा था। रंगशाला जनता से ठसाठस भरी थी। वह रंगमंच-पर आया, आँखें दौड़ाने लगा। प्रसिद्ध अभिनेता होने के कारण हर्ष की तालियाँ पिट रहीं थीं।

उसने आश्चर्य से देखा, उसे छाया का भ्रम हो रहा था। आज बड़े उत्साह से वह अभिनय करने लगा। जनता मुग्ध होकर देखने लगी। हजारों आँखें उसपर एक साथ गड़ गई थीं।

छाया अपने नवीन प्रेमी के साथ प्रथम पंक्ति के कोच पर बैठी हुई अद्भुत दृश्य देख रही थी।

सूली का दृश्य था।

चारुदत्त वधिकों के बीच में सूली के पास खड़ा था। वधिक प्राचीन प्रथा के अनुसार अपराध की घोषणा कर रहा था—

इस चारुदत्त ने अपने पर विश्वास करने वाली वेश्या—इस नगर की शोभा वसंतसेना—की हत्या की है। न्यायालय ने इसको सूली की आज्ञा दी है। प्रत्येक नागरिक को इस घटना से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए······।

दर्शकों में आगे ही बैठी हुई छाया अपने प्रेमी से कहने लगी—देखो, यह झूठा ही अपवाद है कि वेश्याएँ पुरुषों को धोखा देती हैं। यह प्रणय-शालिनी वसंतसेना एक निर्दय प्रेमी की प्रतिहिंसा का शिकार हुई है। सचमुच पुरुष बड़े निर्दय होते हैं।

छाया की आँखों में वसंतसेना के प्रति सहानुभूति थी। वह चारुदत्त को फाँसी पर लटकते हुए देखना चाहती थी। उसके प्रेमी के हृदय में वेश्या संसर्ग से एक प्रकार का भय उत्पन्न हो रहा था।

छाया ने कहा—क्यों, वेश्याओं पर ही यह झूठा आक्षेप है न?

वह न बोला। रंगमंच पर अभिनय हो रहा था। उस भीषण परिणाम से वह सशंक हो रहा था।

वधिक आया, उसने चारुदत्त को सूली देने के लिये शीघ्रता की। चारुदत्त सूली पर चढ़ने को तैयार था, सूली आधुनिक फाँसी के ढंग की बनी थी।

छाया यह बीभत्स दृश्य न देख सकती थी। अपनी कोमलता दिखाने के लिये वह भय विकृत होकर अपने प्रेमी के गले से लिपट गई।

वधिक ने कहा—चलो चारुदत्त, फाँसी पर चढ़ो।

अभिनेता ने कहा—ठीक है, जब वसंतसेना ही नहीं तो जीकर क्या करूँगा! फाँसी का आलिंगन ही सुखद होगा।

इतने में वसंतसेना दौड़ती हुई आती है। दूसरी ओर से शार्विलक चारुदत्त को छोड़ दो—चिल्लाता हुआ आता है।

उधर रंगमंच में शार्विलक चिल्ला रहा था—चारुदत्त को फाँसी से उतारने के लिये। मूल अभिनय में था भी ऐसा ही; परंतु यह क्या! अभिनेता चारुदत्त ने सचमुच पैरों से तख्ता हटा दिया। वह झूलने लगा!

चिल्लाहट मच गई। रंगमंच के प्रबंधकर्ता दौड़ पड़े, अभिनय विशृंखल हो गया। फाँसी से तत्काल उतारने की कोई क्रिया लोगों की समझ में न आई। सब शेष हो गया। नाटक समाप्त हो चुका था।

संचालक ने रंगमंच पर आकर कहा—

प्रसिद्ध अभिनेता किशोरजी ने आज खेल में ही अपना अंत कर दिया है। वह हमारी कंपनी के रत्न थे। इस घटना से हम लोग हृदय से दुःखित हैं।

छाया किशोर का नाम सुनकर चौंक पड़ी।

पूर्व काल की स्मृतियों ने आहें खींचीं। आँखों से आँसू की दो बूंदें टपक पड़ीं।

आत्मा का इंजिनियर

अमरीका की एक जूते की विख्यात कंपनी ने संसार की सर्वोत्तम कहानी पर बीस हजार डालर की घोषणा की थी। इस कहानी प्रतियोगिता में संसार के सभी देशों के कहानी लेखक अपनी कहानी भेज सकते थे। नियमानुसार मूल कहानी चाहे किसी भाषा में हो अंग्रेजी में उसका अनुवाद भी मूल के साथ भेजना आवश्यक था।

अंग्रेजी अखबारों में यह सूचना पढ़ कर मैं विचार करने लगा कि हिंदी जगत में विख्यात लेखकों को भी बीस, पचीस रुपये से अधिक एक कहानी का नहीं मिलता और अमरीका में एक जूता बनाने वाली कंपनी लगभग एक लाख रुपया एक कहानी पर देगी। क्यों ? उपकार अथवा साहित्य सेवा की भावना से नहीं प्रचार के उद्देश्य से।

भौतिकवादी अमरीका अपनी स्वर्ण से भरी अट्टालिकाओं में मदांध होकर विलास वैभव का गीत गा रहा है। वह अपने अभिमान में भूला हुआ है। एक समय आवेगा जब उसे आत्मा और अध्यात्म की ओर ध्यान देना होगा। अतएव ऐसी कहानी की रचना करनी चाहिए जिसमें जीवन के तत्वों का विश्लेषण हो।

कई दिनों तक बहुत विचार करने पर शीर्षक और चरित्र मेरे संमुख आया। भारत आदर्श चरित्रों की खान है। मनु से लेकर अरविंद तक अगणित महान व्यक्तियों की चरितावलियों से साहित्य भरा हुआ है जिनकी गाथा और कथा से संसार परिचित होकर भारत के प्रति आदर प्रकट करता है।

संसार की समस्त जाति और देश में मानव के रूप में ही अवतार हुए, देवता और महापुरुषों ने जन्म लिया। सर्वशक्तिमान मानव ही सर्वोपरि है। आदर्श चरित्रों की कहानी से मानव जीवन का वृतांत आकर्षक है। मेरे जीवन में एक ऐसे ही मानव का प्रभाव पड़ा है जो भाग्य से राष्ट्रभाषा हिंदी के लेखक हैं—

वह एक प्रतिष्ठित साहित्य सेवी के अतिथि थे। किसी कार्य से आये थे। पहली बार मेरा उनसे वहीं परिचय हुआ था। उनकी लंबी नाक, चौड़ा

ललाट, मधुर वाणी उनका व्यक्तित्व प्रकट करती थी। चश्मे के अंदर आँखों की दो पुतलियाँ गंभीरता का संकेत देती थीं। सिर पर शिखा परंपरा की सूचक थीं।

उस समय तर्क चल रहा था। साहित्यिकों को राजनीति से संबंध रखना चाहिए, अथवा नहीं! अधिकांश लोग पक्ष में थे। देश की स्वतंत्रता में यदि साहित्यकार भाग नहीं लेंगे तो दासता की बेड़ी से लोग मुक्त कैसे होंगे?

वह कुछ बोल नहीं रहे थे। चुपचाप सबकी बातें सुन रहे थे। उनकी दृष्टि से कोई भी यह निर्णय नहीं कर सका कि वह पक्ष में हैं अथवा विपक्ष में। मैं उनकी ओर ध्यान से देख रहा था। उनका विचार जानने के लिए मैं उत्सुक था। पान की तश्तरी उनकी ओर बढ़ाते हुए मैंने कहा—निशाकर जी, लीजिये।

निशाकर जी ने दो बीड़ा उठा लिया। मैंने पूछा सुर्ती?

उन्होंने सिर हिलाकर नहीं की सूचना दी। वह पान इस तरह चबाने लगे जैसे बकरी पत्तों को खाती है।

मैंने उनसे प्रश्न किया आपके क्या विचार हैं?

यह ठीक है कि साहित्यकार के युग और काल की छाप उसकी कृति पर पड़ती है। किसी भी श्रेष्ठ रचना में उस काल के समाज और व्यक्ति का सजीव चित्रण ही उसकी महत्ता का प्रमाण है।—कहते हुए निशाकर जी मेरी ओर देखने लगे।

मैंने कहा—पिछले काल में साहित्यकार जनता का शिक्षक समझा जाता था, किंतु अब उसने प्रचारक का रूप ग्रहण किया है।

अपनी लेखनी में केमरा का लेंस भी लगाना लेखक के लिए आवश्यक है।—एक सज्जन बोल उठे।

इस पर सब लोग हँस पड़े।

लोगों के आग्रह पर प्रतिष्ठित साहित्यिक महोदय कविता सुनाने लगे। हम लोग सभी आदर से उनकी वाणी का आनंद अनुभव करने लगे। इसके बाद जलपान हुआ। अर्धरात्रि में मैं घर लौटा था। दूसरे दिन निशाकर जी को मैं अपने यहाँ आमंत्रित कर आया था। वह आये। उनसे खूब बातें

हुई । घनिष्ठता बढ़ी । तीन दिनों तक उनका सत्संग रहा । नगर का भ्रमण हुआ । नाव पर सैर हुई । प्रमुख स्थानों का दिग्दर्शन हुआ ।

मेरे मन में उनके व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पड़ा । मैं उनसे इस विषय में सहमत था कि साहित्यकार को राजनीति के चक्र में पड़कर प्रचारक नहीं बनना चाहिये क्योंकि समय समय पर राजनीति बदलती रहती है और साहित्य चिरस्थायी है ।

गांधी फिलासफी के संबंध में उनका मत था कि वास्तविक जगत के लिए वह असाध्य है, किंतु देश के संमुख इसके अतिरिक्त और दूसरा कोई साधन नहीं है ।

जाते समय स्टेशन तक मैं उन्हें पहुँचाने गया था और प्लेटफार्म पर इंजन की सीटी के साथ ही हम दोनों गले मिल कर अलग हुए थे ।

१८ वर्ष बाद निशाकर जी से भेंट हुई थी तब से संसार में कितने परिवर्तन हुए ।

बढ़ी हुई दाढ़ी के कारण मैं उन्हें तत्काल पहचान भी नहीं सका । नाम बतलाने पर स्मृति जागरित हुई । मैंने भी अपनी दृष्टि दोष का आश्रय लिया ।

महायुद्ध समाप्त हुआ । मुसोलिनी पद दलित हुआ । हिटलर ने आत्म-घात किया और तोजो मृत्यु दंड का अपराधी प्रमाणित हुआ । दुनिया को मुट्ठी में मसलने वाले महापुरुष नर संहार के नाटक में क्रूरता का अंतिम पर्दा गिरा कर लोप हो गये ।

जालिम सरकार को अंतिम बिदा दे कर 'नहीं रखनी है' के नारे बुलंद करने वाले त्यागी वीरों के भाग्य का सितारा चमका, आपने कहा था गांधी फिलासफी यथार्थ रूप में···आज वे ही त्याग और तपस्या का पुरस्कार प्राप्त कर रहे हैं । जेल की हिस्ट्रीशीट ही अधिकार के लिये प्रमाण पत्र बन गया है ।

ऊँह···, राजनीति···प्रदर्शनी की उस चर्खी की भाँति नीचे ऊपर घूमती फिरती रहती है । साहित्यकार को उससे क्या प्रयोजन ?

मैंने कहा—साम्यवादी देशों में लेखक ही जनता का भाग्य विधाता समझा जाता है । स्टालिन के शब्दों में वह आत्मा का इंजिनियर है । उसे सभी सुख सुविधा प्राप्त है, किंतु हिंदी के लेखकों की कैसी छीछालेदर है ।

उन्होंने कहा - हिंदी के लेखकों में आत्मबल का अभाव है, वे अध्ययन की ओर अग्रसर न होकर केवल दलबंदी में पड़े रहते हैं।

मैंने कहा—नैपोलियन ने गेटे से कहा था कि नागरिक का भाग्य सरकार की शासन प्रणाली पर ही निर्भर रहता है। भाग्य नाम की अलग कोई कल्पना नहीं हैं।

उन्होंने कहा—साम्यवादी देशों में प्रगतिशील मानव भाग्य के विधान को नहीं मानता। मशीन की तरह काम करने वाला मानव दिन रात खटकर इस भूमि को स्वर्ग बना देगा। ठीक है। किंतु अपनी अभिलाषा और आवश्यकताओं को अंतिम शिखर पर पहुँचा कर भी क्या वह संतुष्ट हो सकेगा ? सोवियत रूस में लेखक सरकार के संकेत पर चलते हैं। वे शासन सूत्र के प्रचार मात्र हैं।

उस दिन बहुत देर तक वे बैठे थे। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वह सारनाथ के पास एक बगीचे में ठहरे हैं और 'बौद्ध दर्शन' पर एक बृहत् ग्रंथ तैयार कर रहे हैं।

मैं प्रायः रविवार को उनसे मिलने जाता था और सूर्यास्त के पहले हम दोनों की बातें समाप्त नहीं होती थीं। जब वह बोलने लगते तो ऐसा प्रतीत होता जैसे ज्ञान और अनुभव को उन्होंने मथ डाला है।

एक दिन शासन संबंधी प्रश्नों पर विशेष चर्चा रही। उन्होंने कहा—आरंभ में मानव अपनी मुक्ति से संपन्न होकर शक्तिहीन को पराजित कर उसकी भूमि, अन्न और पशुओं को प्राप्त कर उसे आश्रयहीन कर दूर खदेड़ देता था। शक्तिमान राजा माना गया। निर्बल उसकी छत्र छाया में जीने लगे। इतिहास यही प्रमाणित करता है कि युद्ध ही मनुष्य का व्यवसाय है। प्राचीन काल में भारत और यूनान में अगणित नगर राज्य गणतंत्र के रूप में फूले फले किंतु; समय के गर्भ में वे सब विलीन हो गये। कभी राजतंत्र ! और कभी गणतंत्र !! यही चलता रहा।

मैंने कहा—जब तक युद्ध सदैव के लिए बंद न हो तब तक विश्व में मानव को पूर्ण शांति नहीं प्राप्त होगी।

उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा—वह असंभव है। महाप्रलय होगा। सृष्टि का अंत होगा। नई सृष्टि होगी और फिर मानव उसी मनोवृत्ति के साथ उत्पन्न होगा।

मैंने कौतुहल से पूछा— तब यह शांति का आंदोलन केवल प्रचार ही है।

उन्होंने कहा—आपने नोबुल पुरस्कार का रहस्य समझा है ?

प्रतिवर्ष साहित्यिक, वैज्ञानिक और शांति-दूत को लगभग एक लाख रुपया पुरस्कार द्वारा प्राप्त होता है।

मैंने कहा—नोबुल ने ही डाइनामाइट (बारूद) का अविष्कार किया था। दुनियाँ में आग लगा कर इतना रुपया जो वह उपार्जित कर गया उसी की भूसी दक्षिणा यह बँटती है।

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—आपने ठीक समझा है। इसी तरह ऐटम हाईड्रोजन और विनाशक आविष्कारों की अट्टालिका से यह शांति का राग अलापा जाता है।

संध्या हो रही थी। मूलगंधकुटीर से हम लोग लौट रहे थे। भगवान बुद्ध की आकृति आँखों में समा गई थी। मैं उनकी ओर एक टक देख रहा था।

उन्होंने पूछा—बड़ी गूढ़ दृष्टि से क्या देख रहे हैं ?

मैंने कहा—आप भी विचित्र पुरुष हैं। शीत के पवन से कंपन हो रहा है और आप केवल एक चदार ओंढे हैं।

उन्होंने कहा—मैं इसका अभ्यस्त हूँ। मनुष्य अपने सुख और सुविधा के लिए जितना प्रयत्न करता है उतना ही व्यग्र रहता है। पेट की ज्वाला शांत करने के लिए कुछ खाने को चाहिए इसके अतिरिक्त में प्रत्येक स्थिति में संतुष्ट हूँ।

मैंने कहा—देखता हूँ भगवान बुद्ध के दर्शन का पूर्ण प्रभाव आपके ऊपर पड़ा है।

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—वास्तविक जगत बड़ा जटिल है। सिद्धांत और आदर्श पढ़ने और सुनने में उज्ज्वल प्रतीत होते हैं। जीवन एक कठिन तपस्या है।

दूसरे दिन वह देहरादून एक्सप्रेस से हरद्वार जाने वाले थे। यहाँ उनका कार्य समाप्त हो गया था। फिर कब भेंट होगी ? इस संबंध में कोई निश्चित उत्तर नहीं उन्होंने दिया। पत्नी के देहांत के बाद दोनों कन्याओं का विवाह कर अब वह निश्चिंत हो गये थे। शेष जीवन वह अध्ययन में ही व्यतीत करेंगे ;

सचमुच घटनाओं का क्रम बनाकर निशाकर जी का चरित्र चित्रण करने में एक सुंदर कहानी की रचना हो सकती है, किंतु अभाव में पैसों के लिये एक जूते की कंपनी के पुरस्कार का प्रलोभन आत्मा स्वीकार नहीं करती। अतएव यह रोमांस रहित कहानी अधूरी ही रही।

एक दिन मैं एक मासिक पत्रिका के कार्यालय में कुछ कार्य से गया था। विज्ञापन विभाग में बैठा था। सामने टेबुल पर बड़ी आकर्षक एक पुस्तिका पड़ी थी। मैं उठाकर उसे ध्यान से देखने लगा। उस पर लिखा था १९५२ की यह सर्वश्रेष्ठ कहानी है। यह पुस्तिका २० हजार डालर पुरस्कार देने वाली उसी जूते की अमेरिकन कंपनी द्वारा अंगरेजी में प्रकाशित हुई थी।

मैं बड़े कुतुहल से उसके पन्ने उलटने लगा। कहानी के साथ अंत में जूतों का विज्ञापन देखकर अकबर का वह शेर याद करने लगा जिसका भावार्थ यह था''बूट डासन ने चलाया हमने एक मज़मून लिखा। बूट तो चल गया लेकिन मज़मून नहीं चला।

आवागमन

चाँद और सूर्य के संकेतों पर चलनेवाले रात-दिन अपनी अपनी अवधि समाप्त कर चले जाते हैं। अमावस्या की निशा पहेली बनकर जीवन से प्रश्न पूछा करती है। जीवन अगणित कटु अनुभवों की गठरी लादे हुए संसार-पथ में भटकता हुआ उन प्रश्नों का उत्तर देता है—कोई अपना न हुआ। यह विश्व भ्रम का जाल है। माया, ममता, तृष्णा और प्रलोभन सब पथ-प्रदर्शक बनकर किसी भूलभुलैया के द्वार पर मुझे छोड़ जाते हैं।

मैं अपनी पलंग पर पड़ा जब अर्धरात्रि में तारों से भरे आकाश में दृष्टि गड़ाता हूँ तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस संसार के बाद भी एक दूसरा संसार है। प्रकृति मौन होकर बातें करती है। उस अज्ञात-लोक की किसी बात से भी हम परिचित नहीं हैं। उसके सम्बन्ध में केवल कल्पनाएँ और तर्क का आधार लिया जाता है।

उस दिन रविवार था। प्रोफेसर श्री रंजन छुट्टी का दिन मना रहे थे। मैं भी भोजन कर दोपहर में उनके यहाँ चला गया। प्रोफेसर श्री रंजन दर्शनशास्त्र के प्रकांड विद्वान थे। उनसे बातें कर हृदय में शांति मिलती थी। सुख दुःख, मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ और जीवन मरण की व्याख्या वे इतने विद्वत्तापूर्ण प्रमाणों द्वारा करते थे कि उनके अध्ययन पर आश्चर्य होता था।

प्रोफेसर श्री रंजन के कमरे में मेरे अतिरिक्त और भी दो एक सज्जन बैठे थे। जीवन की प्रति दिन की आवश्यकताओं के प्रति अभाव और असंतोष सबके मस्तिष्क का विषय बना हुआ था। तर्क चल रहा था। नियंत्रण की त्रुटियाँ, शासन-विभाग के कर्मचारियों की अयोग्यता, घूसखोरी, और शुष्क व्यवहार पर टीका-टिप्पणियाँ होती रहीं। भोजन, कपड़ा और रहने का स्थान, यही तो मानव-जीवन की सबसे आवश्यक वस्तुएँ हैं। वर्तमान समय में कोई भी संतुष्ट नहीं है। सर्वत्र चोर बाजार का मार्ग खुला हुआ है। मनुष्य एक दूसरे का गला घोंटने में तनिक भी भयभीत नहीं होता। बड़ी विलक्षण समय आ गयी है। इन जटिल परिस्थितियों

के कारण जीवन पहाड़ हो गया है। जीते हुए भी मनुष्य मृतक समान हो रहा है।

प्रोफेसर श्री रंजन गंभीरतापूर्वक सबकी बातें सुनते हुए बोले—देखिये, इसमें सिद्धांत और शासन-प्रणाली का उतना दोष नहीं है जितना कार्य-कर्त्ताओं का। सिद्धांत और नियम अक्षरों में लिखित अपने स्थान पर बड़े सुन्दर और आदर्शमय प्रतीत होते हैं किंतु उनका जब प्रयोग और व्यवहार होता है तब वे रूखे और तीव्र हो उठते हैं। प्राचीन काल से ही ऐसा होता आ रहा है। मानव अपने सुख और ऐश्वर्य की कल्पना में विश्व विजय की लालसा लेकर युद्ध-क्षेत्र में पदार्पण करता था। वह अपने स्वार्थ के लिए अन्य जातियों के लोगों को दास बनाता था। मनुष्य का पशु के समान क्रय विक्रय होता था। उनका मूल्य निर्धारित होता था। यूनानी शासन के कठोर नियमों पर सुकरात और अफलातून के दर्शन का प्रभाव पड़ा। निरंतर मानव का आध्यात्मिक विकास होने लगा। गणतंत्र की रचना हुई। मनुष्य समानता की पंक्ति में खड़े होने लगे। साम्राज्यों का विध्वंस हुआ। योग्यता और विद्वत्ता की पूजा होने लगी। व्यक्ति का आदर बढ़ा।

प्रोफेसर श्री रंजन एक स्वर में इतना कह गये जैसे वे क्लास में अपने विद्यार्थियों के संमुख लेक्चर देते हों, किंतु तत्काल ही उन्हें स्मरण हो आया कि वे मित्रों की मंडली में अपना मत प्रकट कर रहे हैं। सहसा मेरी ओर देखते हुए उन्होंने पूछा—कहिये आपकी क्या राय है?

मैंने कहा—मनु से लेकर चाणक्य तक हमारे देश के महान नीतिज्ञ उत्पन्न हुए। साम्राज्य उनकी शिखा में बँधा रहता था। मैं आपके इस विचार से सहमत हूँ कि सम्राटों से अधिक महत्त्व दार्शनिक और विद्वानों का हुआ। व्यक्ति की पूजा उसके सिद्धांतों की महानता के कारण हुई।

प्रोफेसर श्री रंजन ने कहा—आप ठीक कहते हैं, साम्राज्यों से अधिक स्थायी दार्शनिकों की विचारधाराएँ हैं। प्रत्येक देश में कुछ ऐसी उज्ज्वल आत्माओं का जन्म हुआ और संसार आलोक के संमुख आया। लेकिन उनके सिद्धांत, उनके जीवन तक ही अटल रहे, उनके बाद उन महान आत्माओं की पूजा हुई और उनके सिद्धांतों की छीछालेदर। यही बात अफलातून के संबंध में कही जा सकती है। उसके बाद उसके सिद्धांतों का

प्रचार करनेवाले उसके अनुयायी केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। टालस्टाय के संबंध में भी ऐसा ही हुआ।

मैंने कहा—यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अन्त में अनुयायियों द्वारा ही उन महान आदर्श और सिद्धांतों की हत्या होती है। जैसे महात्मा गांधी के बाद उनके सत्य और अहिंसा का दुरुपयोग हो रहा है। गांधीजी स्वयं अपने जीवन में देख चुके थे कि उनके सिद्धांतों का उपयोग लोग व्यवसाय और स्वार्थ की लालसा में कर रहे हैं। इसीलिए आज देश की भयानक स्थिति हो गयी है।

श्री रंजन कुछ कहना चाहते थे; किंतु उनकी पुत्री आशा दौड़ी हुई आई और बड़े भयभीत स्वर में उसने कहा—बाबूजी, अम्मा के मुँह से खून गिरा है।

श्री रंजन बड़े शांत भाव से उठे और आशा का हाथ पकड़े हुए घर में गये। उपस्थित लोगों में जिन्हें नहीं मालूम था उन्हें मैंने बतलाया कि प्रोफेसर की पत्नी क्षय से पीड़ित हैं।

प्रोफेसर श्री रंजन लौटे। उनकी मुखाकृति पर चिंता के चिह्न अंकित थे। उन्हें तत्काल ही डाक्टर के यहाँ जाना था। अतएव हम लोग चुपचाप खिसक गये।

× × × ×

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मनुष्य से अधिक सुखी पशु होते हैं। मनुष्य दिन भर घोर परिश्रम करने के बाद भी रात्रि में अपनी उलझन और समस्याओं पर विचार करता रहता है; किंतु पशु के पास इतना बड़ा मस्तिष्क ही नहीं होता जिसमें वह चिंताओं को स्थान दे सके।

मेरी खिड़की के सामने एक चिक का मकान है। उसके आंगन में भेड़-बकरों का झुंड आता है और वहीं उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। आंगन सूना हो जाता है, फिर एक दिन दूसरे झुंड से आंगन भर जाता है। इसी तरह कितने पशुओं की हत्या चिक के आंगन में हुई है, इसका कोई अनुमान भी नहीं कर सकता। यहाँ सदैव नरककुंड का दृश्य दिखाई पड़ता है। खून, हड्डियाँ और और छिछड़े चारों ओर पड़े रहते हैं। खिड़की खोलते ही भयानक दुर्गंध का सामना करना पड़ता है।

गरमी के दिन अंगारे बरसा रहे थे। कड़ी धूप निकली थी। दो पहर दिन ढल चुका था। मैंने खिड़की खोली। देखा, एक भेंड़ धूप में झुलस रही है उसका सब शरीर सूर्य के प्रखर प्रकाश में जल रहा था, केवल अपना सिर वह एक दीवार की छाया में छिपाने का प्रयत्न कर रही थी। उस मूक पशु को पानी पिलाने और छाया में बाँधने की किसको चिंता हो सकती थी जब दूसरे दिन इस संसार से उसका अंत होने वाला था।

मैंने उसी समय खिड़की बंद कर दी और चुपचाप मनुष्य की क्रूरता पर पश्चाताप करने लगा। अपने स्वार्थ की लालसा में सचमुच मनुष्य कितना हिंसक बन जाता है। रात्रि के अंतिम पहर में जब चिक हत्या करने वाले अपने छुरों को पत्थर पर घिस कर तेज करता तो उसकी आहट मुझे बराबर मिलती थी। मेरी नींद उचट जाती और मैं इस हत्या के व्यापार पर चिंतन करने लगता। एक दिन उससे पूछने पर उत्तर मिला था कि सदैव से ही यह उसकी जीविका का साधन रहा है और इसे छोड़कर वह किसी अन्य कार्य के भी उपयुक्त नहीं है। अतएव प्रतिदिन अनेकों की हत्या कर वह अपनी रोटी का प्रश्न हल करता है।

बेचारा पशु अपने समूह में से एक-एक को विलीन होते देखकर भी कुछ समझ नहीं पाता। छुरे के अंतिम वार पर ही उसका प्राण निकलता है, इसके पहले मनुष्य की भाँति वह मृत्यु की कोई भी कल्पना नहीं करता और इसीलिए कितनी शांति से उसकी आत्मा शरीर को छोड़ देती है।

कई दिनों के बाद प्रोफेसर श्री रंजन से इस विषय की चर्चा छिड़ी। वह ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुनते रहे।

उन्होंने कहा—हत्यारे चिक की भाँति साम्राज्यवादी भी युद्ध की घोषणा करते हैं। अपने स्वार्थ के लिए पशु की भाँति लाखों-करोड़ों सैनिकों का बलिदान करते हैं। रणक्षेत्र में मृत्यु और विध्वंस का भयानक दृश्य देखते हुए भी सैनिक अपना प्राण उत्सर्ग करता है। चिक की भाँति साम्राज्य-वादियों का भी तर्क है कि वह उनकी जीविका और साम्राज्य के कल्याण का प्रश्न है।

मैंने कहा—एक बात और विचारणीय है, मांस का एक टुकड़ा जब चील-कौओं के सामने फेंका जाता है तब वे आपस में छीना-झपटी करते हैं,

कुत्तों के संमुख जब हड्डी का एक टुकड़ा दिखाई पड़ता है तब वे आपस में लड़ने लगते हैं। यही मनोवृत्ति मनुष्य में भी दिखाई पड़ती है।

प्रोफेसर ने कहा—यही तो अज्ञानता का लक्षण है। जिस मनुष्य में आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव है, वह पशु के समान ही मनोवृत्ति रखता है।

मैंने कहा—यदि विचार किया जाय तो पशु मनुष्य से अधिक सुखी होगा क्योंकि उसे विश्व के अगणित प्रश्नों को सुलझाना नहीं पड़ता।

प्रोफेसर ने हँसते हुए कहा—यह तो आप बालकों की भाँति बातें कर रहे हैं। मनुष्य सर्वशक्तिमान है, वह भविष्य और वर्तमान का निर्माता है। वह समुद्र, आकाश और पृथ्वी को अपने आविष्कारों के जाल में बाँध देता है। इस संसार में वह क्या नहीं कर सकता? उसकी आत्मा में बल होना चाहिये, उसे मृत्यु से निर्भय रहना चाहिये।

मैंने कहा—लेकिन मनुष्य जितना अधिक विचार करता है उतना ही वह निराशा के समीप पहुँच जाता है। उसकी पलकों में मृत्यु का आतंक छा जाता है।

श्री रंजन ने गंभीरता से कहा—इसमें मनुष्य का उतना दोष नहीं है जितना शासन प्रणाली का है। हमारे देश में अभाव और निराशा का मार्ग विस्तृत है। जब तक व्यक्तिगत स्वार्थ का रूप जन और समस्त देश के लिए लीन होकर परिवर्तित नहीं होगा तब तक यही विचारधारा रहेगी।

मैंने वार्ता का क्रम दूसरी ओर करते हुए पूछा—आपकी पत्नी का स्वास्थ्य अब कैसा है?

उन्होंने संपूर्ण विवरण सुनाया, जिसका सारांश था कि अपने प्रयत्नों से वे कभी चूकेंगे नहीं और अपना अंतिम सिक्का खर्च करके भी वह हताश नहीं होंगे।

मैं मन ही मन प्रोफेसर के हृदय की महानता पर विचार करता हुआ घर लौट आया।

× × × ×

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि यदि प्रोफेसर श्री रंजन का सत्संग मुझे न प्राप्त हुआ होता तो संभवतः मैं पागल हो जाता अथवा विचार करते-करते मेरा ब्रह्मांड फट जाता। मेरे अपने जीवन की पहेलियाँ विचित्र हैं।

अनायास ही किसी प्रश्न को लेकर मैं दिन रात उसी का मंथन करता रहता। इस संसार में स्वार्थ का व्यापार इतना बढ़ गया है कि अब किसी से मिलना जुलना, घनिष्ठता बढ़ाना अच्छा नहीं लगता। जब अपनी ही संतान अपनी न हुई तब दूसरों की क्या बात? जीवन के अंतिम पहर में अब मैं अकेला उस अंतिम घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब यह मिट्टी का पुतला पंचतत्व में लीन हो जायगा।

उस दिन महाश्मशान का वह दृश्य मैं अंतिम समय तक नहीं भूल सकूँगा। प्रोफेसर श्री रंजन की पत्नी का देहांत हो गया था। हम लोग शव के साथ श्मशान पर गये थे। वर्षा के दिन थे। चिता के लिए लकड़ी की व्यवस्था हो रही थी। कोई कह रहा था कि लकड़ी गीली है और लकड़ी वाला पूछ रहा था कि कितने मन लकड़ी की चिता बनेगी?

प्रोफेसर जिस मकान में किराये पर रहते थे उसका मकान मालिक भी वहीं बैठा था। वह धनी बूढ़ा बोल उठा—एक लाश को फूँकने के लिए सात मन लकड़ी पर्याप्त होगी।

श्री रंजन इस संबंध में अनभिज्ञ थे। उन्होंने निश्चय किया कि आवश्यकता से दो चार मन लकड़ियाँ अधिक ही रहें। चिता जब जल चुकी तब बूढ़े ने कहा—मैं कहता था, देखिये कितनी लकड़ियाँ शेष बच गयी हैं।

मैंने मन ही मन कहा—इस जीवन के अंत के बाद भी मनुष्य अपना हिसाब और खाता छोड़ जाता है।

उस घटना के बाद कई बार प्रोफेसर से बातें हुईं। मुझे बड़ा आश्चर्य था कि श्री रंजन कितने दृढ़ पुरुष हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वे शांत और गंभीर थे। मैंने कहा—अपनी पत्नी की मृत्यु पर महात्मा गांधी भी फूट कर रो पड़े थे, किंतु आप······

मेरे कहने के पहले ही वे बोल उठे—इस आवागमन में जो विश्वास करते हैं, जो आत्मा और शरीर के संबंध को भली भाँति समझते हैं उनके लिए पश्चाताप करना व्यर्थ ही है। मृत्यु एक अनंत शांति है और इस शरीर के त्यागने पर ही वह मिलती है।

बहुत समय बीत गया। प्रोफेसर श्री रंजन भी आशा का विवाह करने के पश्चात् किसी पहाड़ी स्थान पर चले गये।

तब से कितने त्यौहार आये और चले गये लेकिन मेरे लिए यह दिवाली की रात्रि विशेष महत्व रखती है। इसी अंधकारपूर्ण अमावस्या की रात्रि में मैं इस संसार में उत्पन्न हुआ था। आज सबसे बिछुड़ कर मैं अकेला इस आवागमन की पहेली को सुलझाता रहता हूँ। मकानों पर जलाये गये दीपकों का प्रकाश मंद होता गया। मनुष्य का उल्लास चिर निद्रा में विश्राम कर रहा था। मैं अपने पलंग पर पड़ा अभी तक जाग रहा हूँ। रात्रि अपनी यात्रा समाप्त कर रही है। मंदिरों का घंटा बज रहा है। दूर कोई मसजिद से अजान दे रहा है। प्रोफेसर श्री रंजन की बातें मेरे लिए सर्चलाइट की भाँति प्रतीत होती हैं जो मेरे जैसे बिना पाल और पतवार की नौका को प्रकाश द्वारा मार्ग प्रदर्शित करती हैं।

उत्कंठा

जाह्नवी के उस पार एक मनोहर उपवन था, गंगा का पिता उसमें माली था।

गंगा नित्य उपवन के फूलों को चुन चुन कर माला गूँथती और उसे अपने ही गले में डाल कर आनंदमग्न हो जाती थी। वह प्रायः उपवन की क्यारियों को अपने कोमल हाथों से साफ करती और उसका पिता उनमें पानी बहाकर उपवन को सींचा करता था।

(२)

गंगा का जीवन यौवन की लहरों में बह रहा था। वह नित्य प्रभात में फूलों के अधरों पर बैठे हुए मधुप का 'गुन-गुन-गुन-गुन' प्रेमसंगीत सुनती फूलों को झूमते हुए देखती; तब उसका भी हृदय आप ही आप किसी को खोजने लगता। वह गद्गद् हो जाती।

उसके पास हृदय था, किंतु रूप नहीं!

ईश्वर ने उसका एक अंग भी सुंदर नहीं बनाया था।

वह जिस समय फूलों को चुनती, उस समय यदि कोई उड़ता हुआ भ्रमर उसके संमुख आ जाता तो वह कहती—दुर हो निष्ठुर! तू चार दिनों के लिये खिले हुए फूलों की सुंदरता पर रीझ कर, उनका मधुपान कर, उन्हें बड़ी निर्दयता से छोड़ देता है; स्वार्थी! दूर हो यहाँ से।

वह नित्य अपनी आँखें उपवन की राह में बिछा देती। उस राह से कितने ही पथिक आते जाते, उसका हृदय उछल पड़ता; किंतु वह उनकी आँखों में रुखाई देख कर निराश हो जाती। एक लंबी साँस खींच कर फूलों की ओर देखने लगती।

(३)

निशा सुंदरी फूलों के अधरों पर अपने चुंबन के सैकड़ों चिह्न छोड़ कर बिदा हो चुकी थी। सूर्य की सुनहली किरणों के आलिंगन से वे धीरे धीरे अपनी अलसाई आँखें खोल रहे थे। इसी समय गंगा ने देखा—उपवन के

द्वार पर दो आगंतुक खड़े हैं। एक वृद्धा स्त्री थी और दूसरा नेत्रहीन युवक था।

गंगा ने वृद्धा की तरफ देखते हुए कहा—आप किसे खोज रही हैं।

वृद्धा ने कहा—किसी को नहीं। थक गई हूँ, इसीलिए यहाँ खड़ी हूँ।

भीतर चली आओ—गंगा ने नम्रतापूर्वक कहा।

माँ, बड़े ही मधुर शब्दों में यह किसने उत्तर दिया है ?—नेत्रहीन युवक ने कहा।

इसी उपवन में काम करने वाली एक युवती है बेटा !

*   *   *   *

दोनों ने उपवन में प्रवेश किया।

थोड़ी देर में गंगा का पिता आ गया।

उन्होंने वृद्धा से पूछा—कहाँ जा रही हो ? घर कहाँ है ?

उस पार एक वाटिका की मैं मालिन थी, अब नौकरी छूट गई है, उसी की खोज में निकली हूँ। यह मेरा पुत्र है। जन्मकाल से ही नेत्रहीन है।

गंगा उन दोनों की तरफ सहानुभूति की दृष्टि से देख रही थी।

उसने पिता से कहा—बाबा, इन्हें अपने यहाँ रख लो न, उपवन में बड़ा काम रहता है। हम लोग उसे पूरा भी नहीं कर पाते।

गंगा के पिता ने वृद्धा से पूछा—तुम मेरे यहाँ काम करोगी ?

हाँ, मैं और मेरा पुत्र नवल—हम दोनों ही आपके आज्ञानुसार काम करेंगे।

बहुत अच्छा—गंगा के पिता ने कहा।

उसी दिन से अंधा नवल और उसकी बूढ़ी माँ उपवन में रहने लगे।

(४)

तब से वर्ष की कितनी ही सुकुमार बालिकाएँ गंगा के उपवन में अपना नृत्य दिखलाकर विलीन हो गईं।

उस दिन छोटी सी कुटी में एक दीपक टिमटिमा रहा था। उसी में नवल की माँ रोगशय्या पर पड़ी हुई थी। नवल, गंगा और उसके पिता

उदास बैठे हुए थे। एकाएक वृद्धा ने गंगा के पिता की तरफ करुण दृष्टि से देखकर कहा—

मैं कुछ कहूँ ?

हाँ, खुशी से।

उसने नवल का हाथ उनके हाथों में थमाकर कहा—मेरे बाद मेरी इस थाती की रक्षा कीजिएगा !

उन्होंने गंगा का हाथ नवल के हाथों में देते हुए कहा—कोई चिंता नहीं।

उसी समय पवन के एक झोंके ने टिमटिमाते दीपक को बुझा दिया। उसी के साथ साथ नवल की माँ का जीवन प्रदीप भी सदा के लिये बुझ गया।

उस समय कुटिया में हर्ष और शोक—दोनों ही छा गया।

(५)

खिले हुए फूलों के साथ खेलने वाली गंगा अब स्वयं प्रेम की क्यारियों में खिलने लगी। गंगा के पिता ने नवल का विवाह गंगा से कर दिया था।

गंगा की मीठी मीठी बातें नवल के हृदय को गुदगुदा देती थीं। वह आनंद मग्न होकर बड़े प्यार से उसे चूम लेता और वह भी गद्‌गद्‌ होकर अपनी बाहु वल्लियों से उसकी ग्रीवा को घेर लेती थी।

नवल का हृदय खिल उठता था।

गंगा का हृदय और नयन—दोनों।

(६)

एक दिन नवल ने पूछा—प्रिये, संसार कैसा है ?

बड़ा ही सुंदर।

देखने की बड़ी इच्छा होती है। जी घबड़ा उठता है। एक बार आँखें खोलकर इस कोलाहलमय संसार को देखने की बड़ी अभिलाषा है।

क्या करोगे संसार को देख कर ? वह केवल सुंदर ही नहीं, भयंकर भी है।—गंगा को अपने रूप पर विश्वास नहीं था, उसका हृदय नवल की उत्कंठा से काँप उठा।

इसमें कौन सी सुंदरता है प्रिये !

सुंदरता ? सुंदरता—इस पाप-ताप-पूर्ण कोलाहलमय संसार में नहीं, प्रकृति के राज्य में है प्रियतम ! ऊपर लंबा चौड़ा नीला आकाश फैला हुआ है, उसके वक्षस्थल पर करोड़ों चमकते हुए तारे, चंद्रमा और सूर्य चंचल गति से नाचा करते हैं। लोग कहते हैं, वहीं आकाश में स्वर्ग है। उस स्वर्ग के नीचे यह हमारी प्यारी वसुंधरा है, जिसकी गोद में बैठे हुए हम बातें कर रहे हैं। यहाँ पर बगीचों में वसंत आता है, सैकड़ों फूल खिलते हैं, हवा महँक उठती है। यहाँ सैकड़ों पहाड़ हैं, जहाँ से नदियाँ नाचती, कूदती, हँसती, गाती हुई निकलतीं और हमें अपने साथ खेलने को बुलाती हैं।

तब संसार अवश्य देखना चाहिए प्रिये !

कैसे देखोगे प्रियतम ?

आह प्रिये ! इसी संसार में तुम्हारा मुख भी तो है, ईश्वर क्षणभर को मेरी आँखें खोल देता तो उसे देखकर जीवन सफल कर लेता !

———

उलझन

रात हो चली थी। रामेश्वर अपने कमरे में लेटा हुआ लैंप के धीमे प्रकाश में किसी समाचारपत्र के पन्ने उलट रहा था। उसी समय बगल के कमरे से एक चीत्कार हुआ और फिर धमाधम का शब्द!

वह आश्चर्य से आहट लेने लगा। मालूम हुआ, कोई पुरुष किसी स्त्री को पीट रहा है। वह चौकन्ना होकर बैठ गया।

बूढ़ी समझा रही थी—जाने दो, अब न मारो, बस हो गया। पर वह निर्दय किसी की नहीं सुनता था।

रामेश्वर कमरे के बाहर आ गया। देखा—बगलवाले कमरे में जो किरायादार रहता है, अपनी स्त्री की पीठपूजा कर रहा है।

वह बीच बीच में कहता जाता—अरी कुलटे! तेरे ही कारण आज मेरा जीवन कष्टमय हो गया है। ओह! पिशाचिनी! तूने कभी चैन से नहीं रहने दिया।

मकान के और लोग चुपचाप यह दृश्य देख रहे थे। किसी का साहस न होता था कि उसे जाकर छुड़ाए।

वह पुरुष क्रोध के आवेग में कहता जाता था—दिन भर हाय-हाय कर पेट के लिये परिश्रम कर थका हुआ लौटता हूँ, तो यहाँ भी शान्ति नहीं—आज तेरा प्राण लूँगा—और अपना भी अंत करूँगा।

सहसा उस बूढ़ी स्त्री ने उस पुरुष का हाथ पकड़कर कहा—बेटा निरंजन जाने दो। जो हुआ सो हुआ। अब शांत हो जाओ। इसका क्या बिगड़ेगा। दुनिया उलटे तुम्हारा ही दोष देगी।

रामेश्वर इतनी देर में इस झगड़े के रहस्य से परिचित हो गया। बूढ़ी, निरंजन की माँ थी।

निरंजन की स्त्री और उस वृद्धा से अनबन रहा करती। वृद्धा दिन भर उसके रहन सहन की टीका टिप्पणी किया करती; सदैव काव्य की भाषा में

ही उससे बातचीत करती ! यही कारण था कि उस छोटी सी गृहस्थी में कलह का आतंक छा गया था।

रामेश्वर ने देखा, निरंजन का क्रोध भयानक रूप धारण कर रहा है, और वह झपटकर फिर अपनी स्त्री की ओर बढ़ा। वह बेचारी असहाय विलाप कर रही थी।

कैसा करुण दृश्य था !

रामेश्वर का हृदय काँप उठा। वह अपने को अब न सम्हाल सका। आगे बढ़कर द्वार के सामने खड़ा हो गया। लोग बड़े ध्यान से उसकी ओर देख रहे थे। उसने निरंजन को सचेत करते हुए कहा—भाई साहब, आपको यह शोभा नहीं देता; एक अबला के ऊपर आप इस तरह प्रहार कर रहे हैं, आपको लज्जा नहीं आती ? खबरदार ! बस हो चुका। अब यदि आपका हाथ चला, तो अच्छा न होगा !

निरंजन की खून से लाल आँखें रामेश्वर के ऊपर गड़ गईं। उसने लड़खड़ाते हुए कहा—आप कौन होते हैं ?

उसी समय रामेश्वर का पक्ष लेकर मकान के और लोग सामने आये। उन लोगों ने कहा—हमलोगों के सामने आप अब ऐसा निंदनीय कार्य नहीं कर सकते।

निरंजन की अवस्था वैसी ही जटिल हो गई, जैसी उस दारोगा की होती है, जो किसी सत्याग्रही को गिरफ्तार करके ले जाता है और जनता उसपर घृणा तथा तिरस्कार की वर्षा करती है !

निरंजन शांत हो गया। उसकी स्त्री ने अपनी डबडबाई आखों से रामेश्वर की ओर देखा। उसी दिन से उसके हृदय में रामेश्वर के प्रति श्रद्धा का भाव निवास करने लगा।

निरंजन की स्त्री का नाम था उर्मिला।

(२)

यदि किसी से पूछा जाय कि कि संसार में सबसे बड़ा सुख का साधन क्या है, तो वह यदि झूठ न बोले, तो उसका उत्तर होगा—नारी !

लेकिन इसी दुनिया में बहुतेरे ऐसे लोग भरे पड़े हैं, जिनका जीवन स्त्रियों ही के कारण हाहाकारमय हो गया है। वे प्राण देकर भी उस बंधन से मुक्त होने के लिए प्रस्तुत हैं। निरंजन भी ऐसे ही लोगों में से था।

जिस उर्मिला के स्वागत में स्वभावतः कोई नवयुवक आँखें बिछाकर दिन और रात एक कर देता, वही उर्मिला निरंजन के लिए विष की प्याली बन गई !

उस दिन से रामेश्वर के मन में उर्मिला के प्रति एक स्वाभाविक सहानुभूति जाग्रत हुई। अपने कमरे में बैठकर वह प्रायः उर्मिला की बातें सुना करता था, जिससे वह उसके संबंध में कुछ अधिक पता लगा सके—उसके स्वभाव का अध्ययन कर सके।

इतने दिनों में रामेश्वर को ऐसा प्रतीत होने लगा कि उर्मिला सुंदरी है, सरल है, नम्र है और परिश्रमी भी है। फिर उसे पाकर निरंजन सतुष्ट क्यों नहीं होता !

चार बजे सबेरे से उठकर उर्मिला जो गृहस्थी के काम में लगती, तो फिर उसे दिन भर जैसे अवकाश ही न मिलता कि कभी वह अपने सुख की सुंदर कल्पना में लीन हो। और, इसपर भी जब उठते बैठते, वह बूढ़ी—निरंजन की माँ—व्यंग के बाण छोड़ती, तो उसका हृदय तिलमिला उठता।

उर्मिला आत्माभिमानिनी थी। बुढ़िया की दृष्टि में यह सबसे बड़ा अपराध था; वह चाहती था कि जिस तरह दिन भर उर्मिला काम करती है, उसी तरह बीच-बीच में कभी-कभी दो चार खरी खोटी बातें भी सुनकर अपने भाग्य को सराहे—और उसका उत्तर, मुँह फुलाकर नहीं, बल्कि हाथ जोड़कर, दे।

निरंजन की माँ की इस प्रवृत्ति को वे लोग भलीभाँति समझ सकते हैं, जिन्हें कभी हिंदू समाज के गार्हस्थ्य जीवन में ऐसी दो चार बूढ़ियों को देखने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ हो।

युवतियाँ संकट के समय भी उल्लास भरे मन से हँसती बोलती हैं, यदि पति के स्नेह की शीतल छाया के नीचे दो घड़ी विश्राम करना उनके भाग्य में बदा हो।

किंतु उर्मिला के भाग्य में वह भी न था। उसका पति न जाने क्यों ऐसा नीरस था, जैसे जवानी की उन्मत्त आकांक्षाओं से तृप्त हो चुका हो। ठीक भी है, उसका यह दूसरा विवाह था; पहली स्त्री मर चुकी थी।

निरंजन की प्रवृत्ति विवाह की ओर नहीं थी; किंतु अपनी माँ के कष्टों का ध्यान करके उसे विवाह करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

कुछ लोग ऐसी मनोवृत्ति के भी होते हैं, जिनके मस्तिष्क में पत्नी का अर्थ 'दासी' और विवाह का अर्थ 'गुलामी का पट्टा' होता है !

संभव है, निरंजन ने अपने विवाह के समय इसी मंत्र का प्रयोग किया हो।

(३)

रामेश्वर अकेला था। उसके घर-गृहस्थी न थी। वह दफ्तर में नौकरी करता, होटल में भोजन करता और किराये पर एक कमरा लेकर वहीं सोता था। जिस मकान में वह रहता था, उसके निवासी तथा पड़ोसी तक यह नहीं समझ सके थे कि रामेश्वर किस देश का निवासी है, उसके घर में कौन-कौन हैं, इत्यादि। कभी उससे कोई पूछता भी, तो वह कहता—मैं अकेला हूँ—ऐसा अकेला, जिसका कोई 'अपना' नहीं है।

अधिकतर रामेश्वर के संबंध में लोग अनुमान से ही काम लेते। वह सबके लिए एक पहेली बन गया था।

रामेश्वर जब कभी उर्मिला को मैली धोती पहने हुए गृहस्थी के कार्य में व्यस्त देखता, तब उसके हृदय में दर्दभरी टीस होती।

रामेश्वर दफ्तर से लौटा था। अपने कमरे के सामने आकर उसने देखा—दरवाजे में जो ताला लगा हुआ था, वह खुला है। सामने उर्मिला खड़ी थी। निरंजन की माँ घर में नहीं थी, वह किसी संबंधी के यहाँ गई थी।

रामेश्वर ने उर्मिला की ओर देखा—वह जैसे कुछ बोलना चाहती थी। उसने आँखें नीची करते हुए कहा—आज आप ताला बंद करना शायद भूल गये थे !

कमरा खोलते हुए रामेश्वर ने कहा, मेरे पास है ही क्या ? फिर भीतर जाकर उसने देखा, कमरे का बिखरा हुआ सामान क्रम से सजा रक्खा है। उसे नवीनता मालूम हुई। कमरा जैसे बोल रहा था। उर्मिला कुछ और समीप आ गई थी।

रामेश्वर ने पूछा—मालूम होता है, इस कमरे को जीवनदान देनेवाली तुम्हीं हो।

उर्मिला की एक गंभीर मुस्कुराहट ने रामेश्वर के शरीर में बिजली दौड़ा दी।

वह आपसे बहुत रुष्ट हैं—उर्मिला ने कहा।

कौन ? निरंजन ?

हूँ !

क्यों ?

उस दिन जो आप मेरी तरफ से बोले थे !

उसमें रुष्ट होने की क्या बात थी ? वह उनका अन्याय था।

मेरे भाग्य फूटे हैं !

इसमें सन्देह नहीं उर्मिला ! तुम्हें पाकर कोई भी पुरुष अपने दिन सुनहले बना सकता है।

उर्मिला अपनी दृष्टि दौड़ाने लगी, क्योंकि बूढ़ी के आने का समय हो गया था। कहीं किसी ने हमारी बातें सुन तो नहीं ली ?—यही प्रश्न क्षण-क्षण उसे सताने लगा।

इतने में उसने देखा, सचमुच सीढ़ियों पर बूढ़ी चढ़ रही है। उर्मिला भय से काँपती हुई अपने कमरे में घुस गई, लेकिन रामेश्वर उसी तरह खड़ा रहा।

निरंजन की माँ का दम फूल रहा था। वह हाँफती हुई रामेश्वर की ओर वैसे ही देखने लगी, जैसे मदारी के मटके की नागिन !

रामेश्वर उस श्रेणी का नवयुवक है, जिनका सिद्धांत यह होता है कि यदि हम सत्य और उचित मार्ग से चलते हैं, तो हमें भय किसका है।

वृद्ध लोग बहुधा ऐसे विचारों को जवानी की उच्छृङ्खलता अथवा अक्खड़-पन समझकर नाक भौं सिकोड़ लेते हैं !

रामेश्वर अभी तक निर्णय नहीं कर सका था कि वास्तव में उर्मिला के प्रति उसके ऐसे सद्भाव क्यों हैं ! क्या यह प्रेम का अंकुर है ? पता नहीं, किंतु रामेश्वर यही समझता है कि उर्मिला की दयनीय दशा के कारण ही उसके हृदय में उस अभागिनी के प्रति सहानुभूति है। इसमें उसकी कोई निंदा करे, तो उसे इसकी परवा नहीं।

दुनिया तो बड़े-बड़े दार्शनिकों, महात्माओं और विद्वानों तक की निंदा करती है। इससे क्या होता है ? इसके लिए रामेश्वर संतोष किये बैठा है।

रामेश्वर अब वहाँ व्यर्थ खड़ा रहना उचित न समझ अपने कमरे में चला गया।

बूढ़ी, रामेश्वर की ओर भयानक दृष्टि से देखती हुई, आगे बढ़कर अपने कमरे में गई। उसकी कर्कशा गर्जना में जलीकटी बातें आपस में टकराती चली जा रही थीं। कोई भावुक आगे खड़ा होकर सुनता, तो अवश्य ही कहता, यह रबड़ छंद में बोल रही है।

सबेरे मकान की अन्य स्त्रियाँ आपस में बातें कर रही थीं। रातभर निरंजन और उसकी माँ की नीचता ने किसी को सोने न दिया था।

निरंजन ने उर्मिला को ऐसा मारा था कि उसकी नाक से खून बहना बंद नहीं हुआ था।

किंतु रामेश्वर उस दिन कुछ न बोला। वह चुपचाप सब सुनता रहा—देखता रहा।

(४)

दिन, अँधेरी रात की तरह, काले हो गये थे।

आज दिन भर रामेश्वर का मन बड़ा उदास था। वह अपने जीवन की बिखरी उलझनों को बटोर कर कहीं भाग जाना चाहता था। उसे ऐसा प्रतीत होता कि इस नगर के कोलाहल में शांति, सुख और कुछ रस नहीं है।

'घर, स्त्री, बच्चे; कोई नहीं,—फिर कैसा बंधन? अकेला रहने में भी चैन, नहीं, कोई मजा नहीं। इस दुनिया में किसी तरह सुख नहीं—सुख कहाँ है? मनुष्य कैसे पाता है?' इन प्रश्नों पर हजारों बार रामेश्वर विचार कर चुका है; लेकिन आज तक इन्हें वह सुलझा न सका।

संसार में कोई अपना न होते हुए भी सबको अपना समझना पड़ता है। किसी को अपना समझ लेने से कितना बड़ा सुख अट्टहास करता है!

एक मकान में रहते हुए भी रामेश्वर ने दो दिनों से उर्मिला को देखा न था। बूढ़ा उसे कमरे के बाहर निकलने नहीं देती थी।

प्रभात का समय था। उर्मिला बहुत तड़के उठी थी। उसे रामेश्वर से कुछ आवश्यक बातें करनी थीं वह अवकाश ढूँढ़ रही थी। उसके घर वाले अब सो रहे थे। बाहर आकर उसने देखा, रामेश्वर का कमरा बंद था। वह

कैसे जगाती ? उसका साहस नहीं होता था; एकाएक उसने द्वार पर धक्का दिया, रामेश्वर ने द्वार खोला; उसने आश्चर्य से, आँखें मलते हुए, उर्मिला को देखा ।

उर्मिला ने बहुत शीघ्रता से और धीमे स्वर में कहा—आपसे एक बहुत जरूरी बात कहनी है ।

क्या ?

वे लोग इस मकान को छोड़ रहे हैं ।

मेरे कारण ?

हाँ, इस मकान में अधिक सुविधा के साथ वे मुझे भरपूर कष्ट नहीं दे पाते, इसीलिए ।

इधर कई दिनों से मैं स्वयं इस कमरे को छोड़ देने का विचार कर रहा हूँ अब मुझसे देखा नहीं जाता ; किंतु मेरा क्या वश है ?

परसों जाने वाले हैं, दूसरा मकान ठीक हो गया है ।

तो तुम यहाँ से चली जाओगी ?

मृत्यु ही मेरे कष्टों को छुड़ा सकती है, किंतु भगवान यह भी नहीं देते । ओह ! अब नहीं सहा जाता ।

उर्मिला के नेत्रों से अविराम अश्रुधारा बह रही थी । एक दर्दभरी आह खींच कर वह चली गई ।

रामेश्वर आज दफ्तर में नहीं गया । अव्यवस्थित मन इधर उधर भटकने लगा । वह क्या करे, क्या न करे—यह नहीं समझ पाता था ।

समाज के इन प्रचलित नियमों को कौन बदल सकता है ? निरंजन से अलग होकर उर्मिला कहीं जा नहीं सकती ? क्या उसे अधिकार है ? नहीं ।

किंतु निरंजन जिस दिन चाहे, उसे दूध की मक्खी की तरह निकाल सकता है !

रामेश्वर स्वयं अपने मन से पूछने लगा कि उसे क्या अधिकार है कि उर्मिला के हृदय के संबंध में इस तरह से सैकड़ों विचारों में उलझता रहे । उर्मिला निरंजन की स्त्री है; वह जो चाहे करे !

क्या रामेश्वर उसे अपनी बनाना चाहता है ? नहीं तो ! संभव है कि वह यह भी जानता हो कि दूसरे की स्त्री को अपनी बनाकर वह कभी सुखी न रह सकेगा । फिर ?

वह उर्मिला को सुखी देखना चाहता है । आज उर्मिला उससे जो बातें करने आई थी, उसका तात्पर्य यही तो नहीं था कि उसके कारण ही परि-स्थिति और भयानक होती जा रही है और वह खुलकर उसे चले जाने के लिये न कह सकी हो ।

उसने निश्चय किया—अब, यहाँ रहने से उर्मिला के कष्ट मेरे ही कारण बढ़ते जायँगे । अतएव, यह कमरा छोड़ देना ही मेरा कर्त्तव्य है ।

रामेश्वर उसी दिन मजदूरों को लाकर अपना सामान होटल में उठवा ले गया ।

*　　*　　*　　*

अपने जीवन के पिछले दिनों में रामेश्वर के मन में यही उलझन रहती थी कि उसके मकान छोड़ देने में उर्मिला सहमत थी या नहीं !

———

उल्का

परीक्षा समाप्त कर, विद्यार्थी जिस तरह परिणाम की तिथि की प्रतीक्षा करते हैं, ठीक उसी तरह विलास को भी अपनी संतान उत्पत्ति के समय उत्सुकता रहती थी।

विधाता का कुछ ऐसा अभिशाप था कि सदैव कन्या उत्पन्न होने के कारण उसे हताश होना पड़ता था। यह एक ऐसा प्रश्न था जो अंतस्तल में कँटीले तारों से घिरा रहता। पड़ोस, समाज और मित्रों में इस प्रश्न पर लज्जित होकर विलास की आँखें झुकी रह जातीं। वह अपने भाग्य को कोसता कि एक नहीं, पाँच पाँच कन्याओं के विवाह की जटिल समस्या उसके जीवन के संमुख है।

दिनभर घोर परिश्रम करने पर भी विलास का वेतन इतना अल्प था कि उससे उसका निर्वाह नहीं हो पाता था; किंतु पत्नी की गृह प्रबंध की कुशलता ने उसे विचलित नहीं होने दिया। वह एक कोठी में नौकरी करता था। पूँजीपति सेठ की कृपणता के कारण उसे आंतरिक घृणा थी, फिर भी उन्हीं के हाथों उसकी जीविका थी।

कोठी से छुट्टी पाकर जब वह घर आता तब भी कार्य से उसका छुटकारा नहीं होता था।

रात्रि समय सब झंझटों से निवृत्त होकर विलास जब खाट पर लेटता तो उल्का की मधुर ध्वनि उसके कानों में गूँजती रहती—

आजा रि निंदिया आजा री।
बेला कि निंदिया आजा री॥

उल्का बारह वर्ष की हो चुकी थी। विलास की सबसे बड़ी कन्या होने के कारण अन्य कन्याओं के खिलाने, पिलाने और सुलाने का भार उसी पर था।

उल्का कभी खाली न बैठती थी। माँ जब भोजन पकाने बैठती तो ऊपर का सभी काम उल्का ही करती। अपनी सबसे छोटी बहन बेला को झूले पर सुला कर वह किरोशिया की बेल बुनती। इतनी छोटी अवस्था में

उल्का जितना अधिक कार्य करती है यह देखकर माँ मन-ही-मन प्रसन्न होती थी। उसे विश्वास था कि जिस परिवार में वह जायगी, वह उल्का से अवश्य संतुष्ट होगा।

अँगूर की लता की भाँति उल्का बढ़ रही थी। उसके विवाह के संबंध में कई बार उसकी माँ ने अपने पति का ध्यान आकर्षित किया; किंतु विलास सदैव ही उसका विरोध करता। वह बाल विवाह के विपक्ष में था। समय आने पर सब कुछ अपने आप हो जाता है, ऐसा उसका विश्वास था।

उल्का की माँ का विचार भिन्न था, वह प्राचीन परिपाटी का स्वर भरते हुए तर्क करती।

रात्रि समय अपनी संतानों के बीच में लेटी हुई उल्का की माँ ने विलास से पूछा—एक बात कहूँ, बिगड़ोगे तो नहीं ?

वही उल्का के विवाह के संबंध में न ?

हाँ।

क्या कोई नई बात कहना चाहती हो ?

मैंने विवाह निश्चित कर लिया है।

कहाँ ?

मेरी मौसी आई थीं। वह लड़के का फोटो भी दे गई हैं। लड़का एंट्रेंस पास है। बाप रेलवे में नौकर है। घर अच्छा है।

लेकिन अभी इतनी जल्दी क्या है ? कानून के विरुद्ध ऐसा करने पर जेल जाना पड़ता है। अब पहले की बातें बदल चुकी हैं।

कानून क्या धर्म को छुड़ा देगा ? यह सब व्यर्थ की बातें हैं। कहीं कुछ नहीं होगा। मासिक धर्म होने के बाद कन्यादान का कोई महत्व नहीं रहता।

रुपयों का प्रबंध कैसे होगा ?

वह सब हो जायगा। गहना, बर्तन और कपड़े मैं एकत्रित कर चुकी हूँ लड़के का बाप दहेज वगैरह कुछ नहीं माँगता। केवल विवाह में जो कुछ खर्च पड़े उसे तुम सँभाल लेना।

अच्छा देखा जायगा।

(२)

एक दिन शुभ मुहूर्त में उल्का का विवाह हो गया। कन्यादान के समय विलास के हृदय में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह

चली। लोगों ने समझा कि कन्या के विदा के कारण ही ऐसा होना स्वाभाविक है; किंतु गुलाब के फूल जैसी अपनी कन्या के सुयोग्य वर न मिलना ही इसका प्रमुख कारण था। उसे सबसे अधिक क्रोध अपनी पत्नी पर था, जिसकी जल्दीबाजी के कारण ही यह सब हुआ था; लेकिन अब क्या ? जो होना था सो हो चुका था।

विवाह के पश्चात् सहेलियों के व्यंग्य पर उल्का का ध्यान गया। उसने भर आँखें अपने पति को देखा भी नहीं था। घूँघट में से जो झलक उसने देखी थी, उसी के अनुसार सहेलियों की टीका टिप्पणियों पर उसे विश्वास करना पड़ा। किसी ने कहा—उसके मोटे मोटे होंठ हैं, उसके मुँह पर चेचक के दाग हैं। वह काला कुरूप उल्का के योग्य नहीं है।

अंत में अपनी सिसकियों के साथ उल्का बिदा हुई।

दिन पर दिन बीतने लगे।

उल्का अपनी गृहस्थी का कार्य बड़ी धीरता से करती। वह सास ससुर को कुछ कहने का अवसर न देती थी। फिर भी उसके मन में शांति नहीं थी। देखने में उसका संपन्न परिवार था; किंतु प्रत्येक चीजें ताले में बंद रहतीं और आवश्यकता से कम खर्च करने का आदेश मिलता था। उसे यह कंजूसी खलती थी। इस पर भी सास की कर्कश वाणी से जब कभी वह अपना तिरस्कार सुनती तो उसका हृदय व्यथित हो उठता था लेकिन यह सब व्यर्थ था। विधाता की रचना को कौन मिटा सकता है ?

सब कामों से अवकाश पाकर संध्या समय उल्का घर के आँगन में बैठी इंजन के धुँए को आकाश में बिखरता हुआ देखा करती। उस निर्जन स्थान में रेलगाड़ी की खड़खड़ाहट और इंजन के धक धक के अतिरिक्त कुछ भी न सुनाई पड़ता था। किसी से हँसने बोलने की सुविधा न थी। पति देव की नवीन नौकरी थी, वह अपनी 'ड्यूटी' पर चले जाते और अर्धरात्रि के समय श्वशुर शराब पीकर नशे में पदार्पण करते। उस समय उन्हें खिलाना और उनकी आज्ञा का पालन करना ही उल्का का लक्ष्य था।

निश्चित समय पर गाड़ी छूटने की भाँति रेलवे के कर्मचारियों का जीवन भी वैसा ही बन जाता है। उसमें कोई नवीनता नहीं रहती। नियमित कार्यक्रम के नीरस वातावरण ने जैसे उल्का को भी शुष्क बना दिया था। उसके अधरों से किसी ने हँसी छीन ली थी। वह मन-ही-मन पता नहीं क्या

विचार किया करती थी। कौन जान सकता है कि बनारसी साड़ी और आभूषणों से लदी हुई उल्का संपन्न गृह में जाकर भी इतनी वेदना मन में क्यों छिपाये हुए है ?

कालचक्र—अचानक एक दिन उसकी सास बीमार पड़ी और दस पंद्रह दिनों के ज्वर के साथ वह चल बसी। उसका कलंक भी उल्का के मस्तक पर लगा !

नशे के झोंक में उसके श्वशुर ने तीखे स्वर में कहा—बहू जब से तू घर में आई है, सर्वनाश ही हुआ है।

मौन होकर उल्का सुनती रही। वह विवश थी।

मानसिक उद्विग्नता के कारण उसका शरीर दिन पर दिन क्षीण होता गया। प्रतिदिन कार्य से विमुख होना उसके लिए असंभव था। किसी भी अवस्था में वह सब कार्य समाप्त करती। असमर्थ होकर जब वह पलँग पर पड़ी तो इसे काम न करने का बहाना समझा गया।

महीनों बीत गये। उल्का की कोई चिकित्सा न हुई। एक वृद्ध पंडित जी ने बतलाया कि इसे कुछ 'ऊपरी फेर' है। अतएव उल्का के श्वशुर निश्चिंत हो गये। फिर उस ओर ध्यान देना व्यर्थ था।

मानसिक संताप और ज्वर की ज्वाला ने उल्का को विक्षिप्त बना दिया। वह कभी घंटों बक बक करती, रोती, चिल्लाती, हँसती।

यंत्र-मंत्र के अनेक प्रयोग हुए; किंतु उससे कुछ लाभ नहीं हुआ।

एक दिन चेतनावस्था में उल्का ने अपने श्वशुर से कहा—बाबू जी एक बार मुझे मेरी माँ के यहाँ पहुँचा दीजिये तो बड़ा अच्छा हो।

उन्होंने रूखे भाव से उत्तर दिया—उन लोगों को तो तेरी कोई चिंता ही नहीं है और तू उन्हीं के यहाँ जाना चाहती है। यदि उन्हें तेरी ममता होती तो खुद ही आकर ले जाते। अब ऐसी अवस्था में वहाँ पहुँचाने से भी वे लोग समझेंगे कि बोझ यहाँ लाकर पटक गये हैं।

उल्का चुप हो गई।

वह आँखें बंद कर अपनी माँ, बहिनों और पिता का स्वप्न देखा करती थी। उसका मन अधीर हो उठता था।

उस दिन उल्का प्रसन्न थी। बहुत रात तक जागती रही। उसके कमरे से एक मधुर ध्वनि आ रही थी। वह अपमे उसी चिर-परिचित स्वर में गुनगुना रही थी—

आजा रि निंदिया आजा री।
······कि निंदिया आजा री॥

घरवालों ने समझा वह विक्षिप्त अवस्था में है। लेकिन उस रात में पता नहीं किस अज्ञात लोक से वह निद्रा को आमंत्रण दे रही थी? उसकी हृदय गति बंद हो गई और सदैव के लिए वह चिर निद्रा में लीन हो गई।

दूसरे दिन तार द्वारा विलास को यह समाचार मिला। वह अधीर होकर रोने लगा। उसका साहसी मन विचलित होकर बिलखने लगा। रात्रि के खुले आकाश में वह अपनी दृष्टि गड़ाये मौन बैठा था। अगणित ताराओं की पंक्तियों में से किसी टूटे हुए तारे के साथ वह उल्का की खोज कर रहा था।

उसकी कहानी

यह कहानी सुनाने के पाँच महीने बाद, वह एक दिन वेश्याओं के मकानों में आग लगाते हुए पकड़ा गया। इसके बाद वह पागलखाने भेज दिया गया।

मैं आवारा हूँ, बदनाम हूँ, बदनाम हूँ, दुनिया की नजरों से गिरा हुआ हूँ। मेरी यह कहानी सुन कर लोग हँसेंगे, तरस खायेंगें, क्या कहेंगे ?—नहीं जानता। प्रतिदिन प्रातःकाल बिस्तरे से उठकर पास में पड़े एक शीशे के टुकड़े में अपना मुँह देखते हुए, सोचता हूँ—२४ घंटे का एक छोटा सा जीवन समाप्त हुआ। इसी तरह कितने जीवन नष्ट भ्रष्ट होकर तीन युगों की समाधि बना चुके हैं।

उस घटना की गोद में सोलह वर्ष चले गये। फिर भी कल की बात मालूम पड़ती है। उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष की थी। जैसे नवयुवकों की प्रेम कहानियाँ अपने पड़ोस और आसपास के मकानों से आरंभ होती हैं, ठीक उसी तरह मेरी कहानी की भी घटना है।

मैं भोजन करके उठा था। जाड़े के दिनों में धूप कितनी प्यारी लगती है। मैं छत पर बैठा था। सामने वाले मकान के मुंडेरे पर एक बंदर हाथ में शीशा लिये अपना मुँह देख रहा था उसको घुमाता फिराता हुआ, वह तरह तरह से अपना खेल दिखला रहा था। मैं बड़े कुतूहल से देख रहा था। उसी समय उमा हाथ में एक डंडा लिए छत पर चढ़ी।

बंदर को डरा कर वह शीशा छीन लेना चाहती थी। लेकिन उसे देखते ही वह दूसरे मकान पर कूद पड़ा। निराश होकर एक टक उसकी ओर देख रही थी।

मैं कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया। बंदर मेरे मकान पर आ गया था। मैं सहसा उसकी ओर बढ़ा। उसने शीशा छोड़ दिया, वह मेरी ही छत पर गिर कर टुकड़े टुकड़े हो गया। उसका एक टुकड़ा उठाकर मैं अपना मुँह देखने लगा।

उमा हँसती हुई चली गई।

उस दिन से जब उमा मुझे देखती मुस्करा देती। इसके पहले अनेकों बार मैंने उसे देखा था, लेकिन वह देखना कोई देखना न था।

स्नान करने के बाद जब मैं ऊपर छत पर अपने बालों को कंघी से सँवारता तो कभी सामने उमा को देखकर, शीशे को सूर्य की प्रखर किरणों के साथ, इस तरह नचाता जिसमें उसका अक्स उमा के संमुख दौड़ता रहे।

उसकी आँखें झलमला उठतीं। मैं अपनी जवानी की नासमझी का आनंद लेता।

इसी तरह घनिष्ठता बढ़ती गई।

एक एक दिन गिन कर एक वर्ष समाप्त हुआ।

पहले संकेतों का निर्माण हुआ। फिर पत्र व्यवहार आरंभ हुआ। अंत में उमा निस्संकोच मेरे संमुख आकर खड़ी हो गई, जैसे वह संपूर्ण भय और लज्जा की आहुति दे चुकी हो।

इतने दिनों से प्रति क्षण जिस मूर्ति की आराधना में मैं तन्मय था, उसे एकाएक अर्धरात्रि के समय अपने कमरे में, अपने सामने खड़ा देख कर मैं निर्जीव सा क्यों हो गया?

उसने कहा—आज बड़ी कठिनाई से भाग सकी हूँ। फिर भी वह बूढ़ी मजदूरिन एक बार जग उठी थी। घर भर सो रहा है। अब विलंब न करो।

मैंने कहा—इतनी हड़बड़ी में भाग कर कहाँ चलेंगे?

उसने कहा—सीधे स्टेशन! जहाँ की गाड़ी मिल जायगी, वहीं चले जायँगे।

मैं उसकी ओर भयभीत होकर देख रहा था। मैंने अपने साहस को एक बार सचेत करते हुए कहा—अच्छी बात है, चलो, मैं कुछ रुपये और अपने कपड़े ले लूँ।

वह बैठ गई थी। मैं पिता जी का बक्स खोलकर रुपये निकालने के लिए ऊपर गया।

मैं बक्स खोल ही रहा था कि नीचे कोलाहल हुआ। घबड़ा कर बक्स बंद कर दिया। पिताजी की आँखें खुल गईं।

उन्होंने पूछा—कौन?

मैं चुप था।

वे मेरी ओर देखते हुए बोले—अरे विजय ! तू इतनी रात को यहाँ क्या कर रहा है ?

मैं कुछ भी न बोला।

वह पलंग से उठ पड़े। मुझे दोनों हाथों से दबा कर उन्होंने फिर पूछा—बोलता क्यों नहीं ?

इतने में कोलाहल बढ़ा। कोई कह रहा था—दुष्टा यहाँ पकड़ी गई।

मैं पिताजी से हाथ छुड़ाकर भागा। नीचे आकर भयानक दृश्य दिखलाई पड़ा।

पड़ोस के लोग उमा का हाथ पकड़े हैं। सब की आँखें चढ़ी हुई हैं।

मैं घर से बाहर निकल पड़ा। दौड़ता हुआ सड़क पर आया। एक तांगे पर बैठ कर स्टेशन पहुँचा।

गाड़ी पर बैठने के बाद, जब स्वस्थ हुआ, तो यही सोचता रहा कि मैं अकेला ही जा रहा हूँ, बेचारी उमा साथ न आ सकी।

(२)

घर से भागने पर कई महीने कलकत्ते में बीत चुके थे। तब से उमा का कोई समाचार नहीं मिला। दिन रात उसी की चिंता रहती।

मैं कितना बड़ा अपराधी हूँ। एक नवयुवती के जीवन को कलंकित करके इस तरह उसे छोड़ भागना उचित था ?

इसी तरह के पचासों प्रश्न उठते रहते, किंतु। मैं विवश था। मैं क्या करता ?

इतने बड़े नगर में इतने दिनों तक भूलता भटकता किसी तरह जीवन निर्वाह करता रहा। मानसिक और आर्थिक कष्टों के कारण बहुत दुबला हो गया था। अन्त में एक दिन, व्यग्र होकर मैंने पिता जी के नाम एक पत्र लिखा—उसमें मैंने अपने अपराधों पर दुःख प्रकट किया था और अपनी माँ का समाचार पूछा था।

पिता जी की कठोरता से मैं परिचित था; किंतु माँ अवश्य बुलायेगी, ऐसा मुझे विश्वास था।

दो सप्ताह के बाद उत्तर मिला—

मैं तुम्हारे जैसे आवारे लड़के का मुँह नहीं देखना चाहता। तुम्हें हम लोगों के समाचार की क्या आवश्यता है ?

पत्र पढ़ कर एक बार बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। अपने ऊपर घृणा हुई। अब कोई मार्ग न था।

मैं अपने दुर्भाग्य पर हँस पड़ा। आह इतनी अशांति क्यों ? मनुष्य जीवन पाकर इतनी निराशा क्यों ?

उस दिन न जाने किस अज्ञात शक्ति ने मन में एक नवीन बल भर दिया। मैंने सोचा—पवन की भाँति मैं अब स्वच्छंद हूँ और जंगली पशु के समान स्वतंत्र हूँ। मुझे कुछ न चाहिए। मैं अकेला हूँ। मगर उमा का क्या हुआ ?

एक दिन हवड़ा के पुल पर खड़ा मैं मन बहला रहा था। मुझे पहचान कर एक आदमी मेरी बगल में खड़ा हो गया। मैं भी पहचान गया। वह मेरा पड़ोसी था। उसकी पान की दुकान थी।

मैंने पूछा—क्यों ? यहाँ कैसे आये ?

उसने कहा—कुछ पैसा कमाने के लिए आया हूँ, भय्या !

इसके बाद मैं घर का समाचार पूछा।

उसने कहा—सब ठीक है।

फिर साहस करके मैंने उससे उमा की हाल भी पूछा।

उसने बड़ी गंभीरता से मेरी ओर देखते हुए कहा—वह तो किसी के साथ निकल गई। जहाँ विवाह ठीक हुआ था, वहाँ के लोग लड़की की बदनामी के कारण विवाह करने को तैयार नहीं हुए।

उसकी इतनी बातों से अधिक मैं सुनना भी नहीं चाहता था।

मैं यह कहते हुए हट गया—अच्छा फिर भेंट होगी।

वह चला गया। मैं एक बोझ से और हलका हुआ। मैंने मनही मन निश्चय कर लिया था कि चाहे जब भी हो उमा को न छोड़ूँगा।

लेकिन अब तो वह कल्पना भी निराधार हो गई। अनेकों तर्क वितर्क आपस में द्वंद्व करते रहे—हो सकता है, परिस्थितियों के कारण बाध्य होकर उसे किसी के साथ निकल जाना पड़ा हो।

जो कुछ भी हो, मेरे रोम रोम से चिनगारियाँ निकल रही थी। मैं तीन दिन तक जी खोल कर रोया। मेरी अभिलाषाओं की संपूर्ण विभूतियाँ ज्वालामुखी के विस्फोट में विलीन हो चुकी थीं।

(३)

दो वर्ष बीते।

इतने दिनों तक मैंने अनुभव का वह मार्ग देखा, जिस पर मनुष्य जीवन पर्यंत चलते चलते थक कर भी अपना रास्ता पूरा नहीं कर पाता। मैं दिन भर पैसे पैदा करता और रात को मदिरा से उन्मत्त होकर वेश्याओं के दरबार में संमिलित होता।

चिंता, दुख और मन की मलीनता, सब कुछ शराब की बोतलों से धो डालता था। उसी तरह जैसे धोबी कपड़ों को पीट पीट कर सफेद बनाने की चेष्टा करता है।

धन के अभाव में जुआ भी खेलता था।

भयानक से भयानक कार्यों के लिये मैं सदैव प्रस्तुत रहता था। जीवन को सरस बनाने के लिए यह सब आवश्यक हो गया था।

उमा के बाद, किसी भले घर की स्त्री को कभी भूल कर भी देखना मेरी दृष्टि में सबसे बड़ा अपराध है। मेरे इन दृढ़ विचारों ने अब मुझे शांति दी है।

वेश्याओं के यहाँ भी मनोरंजन में कितना निष्ठुर प्यार भरा रहता है यह मैं भलीभाँति समझने लगा था। इसी से किसी के यहाँ पालतू बन जाना मेरे लिए बड़ा कठिन था। आज यहाँ, कल वहाँ। यही क्रम चलता रहा।

उस दिन दफ्तर से संध्या समय लौटा तो द्वार पर दरवान ने कहा—बाबू आप की एक चिट्ठी कल डाकिया ने दी थी; लेकिन भेंट न होने से आप को न दे सका।

मैंने कहा—देखूँ।

मैं पत्र पढ़ने लगा। मेरी माँ ने किसी से लिखवाया था—तुम्हारे पिता जी बहुत बीमार हैं, पत्र देखते ही चले आओ। डरने की कोई बात नहीं है।

बहुत दिनों के बाद मैं घर पहुँचा। देखा, वास्तव में पिता जी रोग शय्या पर पड़े थे। मैं उनका चरण मस्तक से लगा कर रोने लगा।

उनकी भी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी।

इतने में माँ आईं, वह मुझे ऊपर ले गईं। मेरे अपराध क्षमा की चादर में ढाँक दिये गये।

कई दिनों तक तो संकोच और लज्जा के कारण मैं पड़ोसियों और इष्ट मित्रों से मिल न सका। मगर कितने दिन इस तरह छिपा हुआ रहता?

किसी तरह मन को दृढ़ बना कर मिलना जुलना आरंभ किया। दो एक मित्रों से उमा का भी हाल सुना। एक ने तो व्यंग्य में यहाँ तक कह डाला—वाह यार! तुम्हारी प्रेयसी तो किसी दूसरे के हाथों जा टपकी और तुम यों ही टापते रह गये।

मैंने मौन होकर आँख झुका लीं। चार वर्ष के भीतर मैं उमा को भुला बैठा था, लेकिन यहाँ आकर उसकी स्मृति जाग उठी थी।

मन की गति बड़ी चंचल हो गई—मैं घृणा की भावना में डूब कर भी दर्द भरी आहों को क्यों बटोरता हूँ? उदास होकर भटकता रहता हूँ। कोई उत्साह न रहा। फिर क्या वेश्याओं के हाथों आत्मसमर्पण कर दूँ। यही ठीक है।

मेरे भविष्य के कार्यक्रम को सुंदर बनाने के लिए, सौभाग्य से, पिता जी का देहांत हो गया। संग्रहणी से वह बच न सके। वकालत में पचासों हजार की संपत्ति पैदा कर गये थे। सब मेरे हाथ लगी।

दो महीने तो मैंने संतोष के साथ व्यतीत किये। अंत में एक दिन खूब शराब पीकर नगर की वेश्याओं का अन्वेषण किया। उमर खैयाम की रुबाइयों की तरह उनके अनेकों संस्करण देखे।

रात को दो बजे जब घर लौटा तो घंटों पुकारने पर नौकर ने द्वार खोला। माँ जग उठी थीं।

उन्होंने क्रोध से पूछा—क्यों रे, इतनी रात तक कहाँ रहा?

मैंने कहा—माँ, मैंने शराब पी है। वेश्या के यहाँ गया था···हा···हा···हा तुम्हारा पुत्र कितना होनहार है! प्रसन्न हो जाओ—माँ!

माँ ने समझा मैं नशे में हूँ। वह चुप हो गईं, एक शब्द भी न बोलीं।

मैं अपने कमरे में जा कर सो गया। दूसरे दिन अपनी स्पष्टवादिता के प्रति मुझे प्रसन्नता हुई। मैं स्वच्छंदतापूर्वक लोगों से स्पष्ट कहता हुआ, दुष्कर्मों की ओर बढ़ा।

माँ मेरे प्रति उदासीन रहा करती थीं। प्रायः कई दिनों पर बोलतीं। एक दिन भोजन करके जब मैं उठा तो बोलीं—विजय, तूने अपने बड़ो का खूब नाम रखा है। तेरे जैसी संतान भगवान किसी को न दे।

मैंने हँसते हुए कहा—माँ! इस जीवन में भला बुरा क्या है, इसका निर्णय मैं नहीं कर सका हूँ। पाप पुण्य का क्या परिणाम होता है, कौन जानता है? सबको मरना होगा। यही एक सत्य है।

उनकी आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। मैं वहाँ से हट गया।

माँ ने मेरे विवाह के लिए भी चेष्टा की। उन्होंने सोचा होगा कि विवाह के बाद संभवतः मैं सुधर जाऊँ और गृहस्थ बन जाऊँ, किंतु मेरे जैसे प्रसिद्ध आवारे के साथ कौन अपनी लड़की का विवाह करता?

मैं भी व्यर्थ की झंझटों से बच गया।

(४)

पैसा भी कैसी सुंदर चीज है!

संसार के समस्त वैभव और ऐश्वर्य इन्हीं पैसों के हाथ बिके हैं। जी खोल कर जो चाहे कर लें।

पिता के देहांत के बाद पाँच वर्ष तक मैं सिर्फ इन पैसों का खेल देखता रहा। इसी बीच में माँ भी चल बसी थीं। अब एक तिनके का भी सहारा न था। मित्र और परिचितों का वर्णन करना एकदम व्यर्थ मालूम पड़ता है, क्योंकि उन सभी झूठी सहानुभूति प्रगट करनेवालों को मैं चापलूस कुत्ते से अधिक महत्व नहीं देना चाहता।

जो कुछ भी हो—पैसे की झनकार पर नृत्य करने वाली सौंदर्य की पुतलियों ने मेरे हृदय में उत्साह का प्रबल प्रवाह बहा दिया है। मैं तन्मय होकर उनकी क्रीड़ा देखता हूँ। उनके माँ बाप, भाई बच्चे सभी तृषित नयनों से उस चमाचम की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर मैं किसके लिए, इन अपराधों के आविष्कारक कंचन को सम्हाल कर रखूँ? इसीलिए पैसों से ममता न बढ़ सकी।

इतने दिनों के बाद केवल एक मकान भर शेष बचा था। मैंने कभी इसका दुःख अनुभव नहीं किया कि मैंने पैसों को ठुकरा कर नासमझी की है। फिर यह मकान किसके लिए छोड़ूँ ? उसे भी बेच कर शराब की बोतलों में भरने लगा।

मेरी आयु ३६ वर्ष की संख्या गिन रही थी।

कभी कभी शराब पीकर मैं अकेला घूमने निकल जाता था। उस दिन पाँच मील के लगभग टहलता हुआ चला गया था। यह वही सड़क थी, जो पेशावर तक चली गई है। शेरशाह के बाद कितनी ही सल्तनतें इसकी धूल उड़ा चुकीं हैं। मैं कहाँ तक जाऊँगा, यही सोचता हुआ सिगरेट निकाली। सलाई का बक्स जेब में न था। मार्ग की दूकान पर रुका।

मैंने सलाई माँगी।

एक कांतिहीन पुरुष बैठा था। उसके पास दो बच्चे सो रहे थे। और पास में ही बैठी वह स्त्री कपड़ा सी रही थी।

पुरुष ने कहा—सलाई दो।

केवल सलाई ?—कहते कहते वह जैसे मुझे पहचानने लगी। भैरवी की तरह उसकी आकृति बन गई।

मेरा नशा उतर चुका था। मैंने भयभीत होकर देखा—आह, वह तो उमा खड़ी है। इतना परिवर्तन होने पर भी वह छिपी न रह सकी। उसका रूप, स्वास्थ्य और आकृति, सब कुछ नष्ट हो चुका था। वह ठीक मुझे सड़क के किनारे गड़े हुए उस पत्थर की तरह मालूम पड़ी, जिसमें मीलों की संख्या के अक्षर अंकित रहते हैं, जिससे पथिक यह समझ लें कि कितना मार्ग वह समाप्त कर चुका।

आह, उमा—इतना मुँह से निकलते ही मैं दौड़ पड़ा। फिर मुड़ कर उसे देखने का साहस न हुआ।

(५)

उमा को देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया था। कोलाहल, चिंता और उदासी सभी ने न जाने कहाँ से एक साथ मिल कर आक्रमण किया था।

रात आधी बीत गई थी। मैं संगीत की स्वर लहरियों में उमा की छबि अंधकार के आवरण में खोज रहा था।

गायिका गा रही थी—मो सम कौन कुटिल खल कामी…

उसके गाने पर मेरा ध्यान न था। मेरे सामने वह घटना घटी थी—

बंदर शीशा लेकर भागा था। उमा छत पर खड़ी है। मैं शीशे के टुकड़े में अपना मुँह देख रहा हूँ।

मैं उठा। वेश्या आश्चर्य से देखने लगी। मैंने उसके कमरे में टँगे बड़े शीशे को तोड़ डाला।

वहाँ सब मेरी ओर क्रोध से देखते हुए कहने लगे—अरे, यह क्या किया?

मैं चुपचाप भागा।

अब यही सोचता हूँ कि उमा के यहाँ चल कर वह सलाई का बक्स ले आऊँ और आग लगा दूँ—इस समस्त विश्व में, लोग जलते रहें…हा…हा…हा…खूब जलें और इस सृष्टि का विध्वंस हो—हा—हा—हा।

और अब ?

उस दिन राज तिलक था। शताब्दियों से बने हुए नियम के अनुसार नंददेव अपनी पैतृक भूमि के राजा होंगे। प्रजा में बड़ा उत्साह था।

बूढ़े मंत्री ने आकर कहा—महाराज, शुभ मुहुर्त आ गया है; •अब आप शीघ्र ही प्रस्तुत हो जायँ। राजसभा में आँखें बिछाकर प्रजा आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

तरुण नंददेव ने मंत्री की ओर देखते हुए कहा—बूढ़े नागरिक ! इस राज्य की पूर्ण स्थिति को जानते हुए भी मैं तुमसे पूछता हूँ कि ऐसे समय क्या यहाँ किसी राजा की आवश्यकता है ?

मंत्री ने नम्रता से झुककर कहा—धर्मावतार, आपके प्रश्न के तात्पर्य को मैं नहीं समझ सका। प्रजा को राजा की आवश्यकता क्यों नहीं है ?

नंददेव ने उत्तेजित होकर कहा—इस राज्य में लोग दाने दाने को तरस रहे हैं। मनुष्य, मनुष्य को हिंस्र पशु के समान खाने दौड़ता है। ईर्ष्या, द्वेष और कलह का आतंक छा गया है। दरिद्रता के टूटे प्रासाद में विलासिता अपना शृंगार कर रही है। चोरी, हत्या और दुराचार बड़ी तीव्रता से बढ़ रहे हैं। जानते हो इसका कारण ?

मंत्री आँखें नीची किए हुए चुप था।

न्याय, शासन और नियमों का दुरुपयोग किया गया। राजा अपने कर्तव्य को भूल बैठा। प्रजा मनमाने मार्ग पर भटकती रही। अपने पूर्वजों के कलुषित जीवन के कारण आज लज्जा से मस्तक झुका लेना पड़ता है, और और बूढ़े नागरिक। इन भयानक कार्यों में तुम्हारा कितना हाथ था, यह भी तुम भलीभाँति जानते हो !

इतना कहते कहते नंददेव मंत्री की ओर देखने लगे।

मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा—अपने अपराधों के लिए मैं क्षमा याचना करता हूँ।

नंददेव ने कहा—तो चलो, आज राजसभा में अपराधों का प्रायश्चित्त किया जाय।

* * * *

राज सिंहासन पर खड़े होकर नंददेव ने स्वाधीनता की घोषणा की। उन्होंने कहा—मुट्ठी भर अन्न के लिए आँचल पसारने वाले मेरे नासमझ भाइयों, आज आप लोग मुझे उस कलुषित राजसिंहासन का उत्तराधिकारी बनाने के हेतु उपस्थित हुए हैं, जिसपर बैठकर मनुष्य स्वच्छंदतापूर्वक मनुष्य के ऊपर हजारों वर्षों से अत्याचार करता आ रहा है। मैं प्रसन्नता के साथ उसका त्याग करता हूँ। मैं आप लोगों का राजा नहीं, साथी हूँ—सेवक हूँ। मैं भी आप ही लोगों की तरह एक साधारण प्राणी हूँ।

मैं आकाश और पृथ्वी को साक्षी करके कहता हूँ—कुसुमपुर के प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार है। भूमि, संपत्ति और राजा के अधिकार में जो कुछ धन है, उन, सब में आप लोगों का बराबर हिस्सा है।

जनता आश्चर्य से चकित हो उठी।

गरीबों और किसानों ने 'धन्य है! धन्य है!!' की पुकार मचाई।

धनियों और पदाधिकारियों ने एक साथ कहा—असंभव है! ऐसा नहीं हो सकता!

(२)

बहुत समय बीत गया।

कुसुमपुर में हाहाकार मचा था।

बालक, युवक, वृद्ध, और वनिताएँ—सभी शोक में पड़े थे। नंददेव सदैव के लिए सब का साथ छोड़कर चले गये थे।

कुसुमपुर का प्रत्येक पुरुष, उस पवित्र आत्मा के लिए विलाप करता हुआ, अर्थी के साथ गया था।

श्यामला नदी के तट पर चंदन की चिता धधक रही थी। चैत्र पूर्णिमा थी। निशाकर, प्रकाश की उज्वल माला लेकर, स्वागत कर रहे थे।

प्रकृति अपना राग अलाप रही थी। ऐसा राग, जिसे कभी अचानक सुनकर लोग कह बैठते हैं—आह! संसार में कुछ नहीं है।

चिता की उठती लपटें टेढ़ी, सीधी हिलती-डोलती-सी, कुछ नहीं है के स्वर पर ताल दे रही थीं।

ऐसे समय नंददेव का कीर्ति-गान हो रहा था। राजा न होते हुए भी वे कुसुमपुर के पथ प्रदर्शक थे। उनसे सबका स्नेह था।

चिता जल चुकी थी। कुसुमपुर की प्रजा आश्चर्य, कुतूहल और शोक से देख रही थी।

सबसे पहले उस बूढ़े मंत्री ने श्रद्धा से झुककर चिता की राख को अपने मस्तक पर लगाया। इसके बाद अन्य लोगों ने उसका अनुकरण किया।

मंत्री ने अपनी झुकी हुई कमर को सीधी करने की चेष्टा में, जनता की ओर देखते हुए, गला साफ़ करके कहा—

जंगल में जिस तरह पशुओं का शासक सिंह रहता है, उसी तरह देश में मनुष्यों का शासक राजा होता है। भगवान् ने मनुष्यों को पशुओं से अधिक समझदार बनाया है और इसीलिए, पशुओं के राजा के समान, मनुष्यों का राजा, जब अपनी प्रजा का भक्षक बन जाता है, तब अत्याचार की आलोचना होने लगती है, न्याय और अन्याय की मीमांसा होती है। और प्रत्येक मनुष्य के हृदय में यह प्रश्न उठने लगता है कि किसी के ऊपर किसी को शासन करने का क्या अधिकार है ? ऐसा समय कुसुमपुर के इतिहास में अनेक बार आया है। महाराज नंददेव ने राजा के महत्व को अपने जीवन से समझा दिया है। अब कुसुमपुर के लिए हमें फिर एक शासक—एक राजा—एक पथ प्रदर्शक—की आवश्यकता आ पड़ी है।

जनता ने साहस से कहा—हमें राजा नहीं, नंददेव चाहिये। हम स्वतंत्र हैं।

इस घटना के बीते कई सौ वर्ष हो गये।

तब से सैकड़ों बार राजा और प्रजा का झगड़ा उठा। परिस्थितियों ने कभी प्रजा और कभी राजा के पक्ष में अपना अभिमत दिया!

और अब ?

कुटिल काग

भींगी लकड़ियों के कारण आग सुलगती नहीं थी, धुँए से कालिंदी की आँखें लाल हो उठी थीं, वह बार बार पंखी झलते हुए खीझ उठी थी। चपला आटा गूँथ रही थी। उसने कहा—लकड़ी है कि जान की आफत ?

थोड़ा मिट्टी का तेल डाल दो।

तेल अधिक खर्च होने पर आते ही प्रहार होने लगेगा, तुम तो जानती हो ?

फिर क्या किया जाय, बाबूजी के दफ्तर से आने का समय हो रहा है, भोजन तैयार नहीं रखने पर भी तो वही हाल होगा !—चपला ने कहा।

किसी तरह चैन नहीं, हम लोगों के भाग्य में ही लात-जूता लिखा है। कालिंदी ने उत्तर दिया।

रसोई घर के किवाड़ से छिपे हुए महादेव ने सामने आते हुए पूछा—क्या कहा ? लात जूता, अरे, तुम दोनों की चाल ही ऐसी है, अभी घर में मैं चला आया और किसी को मालूम नहीं। इसी तरह चोर आकर सामान उठा ले जाता तो क्या होता ?

कालिंदी और चपला दोनों भयभीत होकर कार्य कर रही थीं।

महादेव ने कालिंदी से पूछा—बहू, आम कहाँ से आया था ?

आम तो कहीं से नहीं आया—कालिंदी ने कहा।

खरीदा था ?

नहीं।

फिर झूठ।

तीनों मौन। एक दूसरे को देख रहे थे। महादेव की आँखें टार्च के प्रकाश की भाँति उसे खोज निकालना चाहती थीं, वह गुरेर कर देख रहा था। उसने कहा—मैंने पचासों बार कहा है कि झूठ से मुझे घृणा है, मैं कहता हूँ कि घर में आम आया था, मैंने दरवाजे में गुठली देखी, घर में छिलका देखा, उस पर भी सफेद झूठ छिप सकता है।

चपला ने वातावरण शांत करने के लिये कहा—बाबूजी मैंने खरीदा था।

महादेव ने बेलना उठाकर कालिंदी की पीठ पर जमाया। दो बार धमाका हुआ। वह चला गया।

कालिंदी ने सिसकते हुए भोजन बनाया और भोजन के समय भी अनेक टीका व्यंग का उसे सामना करना पड़ता। रोटी कड़ी है, दाल पतली है, तरकारी में नमक कम है, आदि प्रतिदिन के प्रयोगों से कालिंदी परिचित थी।

गृहस्थी के सब कार्यों से अवकाश पाने के बाद कालिंदी अपने ससुर का पैर दबाती, तलवे में तेल की मालिश करती, किंतु महादेव कभी उससे संतुष्ट नहीं रहता।

कभी उसका पुत्र सुखदेव छुट्टी लेकर पिता से मिलने आता तो अपनी पत्नी कालिंदी के गुण-गान से उसकी तबीयत झल्ला उठती, तीन चार दिन की अगर छुट्टी लेकर आता तो दूसरे ही दिन चला जाता था।

दफ्तर में भी महादेव को चैन नहीं मिलती, बड़े साहब क्या कहते थे, छोटे बाबू उनके बारे में क्या कहते हैं ? इस तरह की बातों में ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होता था।

बड़े बाबू होते हुए भी उसकी तुच्छ बुद्धि से दफ्तर के सभी कर्मचारी परिचित थे, उसकी नौकरी का समय पूरा हो चुका था। लड़ाई के कारण दो वर्ष और ठहर गया था। प्राविडेंड फंड का रुपया लेकर वह काशी या वृंदावन में अपना समय व्यतीत करेगा।

सहसा एक दिन अँधेरी रात में कालिंदी लोप हो गयी। महादेव ने बहुत खोज की लेकिन उसका पता नहीं लगा। उसने कई जगह तार दिये, कोई समाचार नहीं मिला।

कालिंदी के चले जाने पर महादेव का व्यवहार अपनी पुत्री चपला के प्रति कुछ सरल अवश्य हुआ था, किंतु वह अपनी प्रकृति से विवश था।

उसके हृदय में शांति नहीं थी। वह सदैव झुँझलाया हुआ खिन्न रहता। काम में उसका मन नहीं लगता। साहब भी उससे असंतुष्ट रहता था।

जिस दिन नौकरी से अलग होकर महादेव जाने लगा, उस समय दफ्तर के सभी लोग उसकी प्रशंसा और सहानुभूति प्रकट कर रहे थे।

उसके जाने के बाद अनेक कर्मचारियों ने मंदिर में जाकर अपनी मनौती पूरी की।

चालीस हजार रुपया नकद लेकर महादेव तीनों लोक से न्यारी काशी नगरी में आ पहुँचा। बाप दादों के खंडहर में फिर दीपक जलने लगा। दीपक ही नहीं बिजली के बल्ब जगमगाने लगे। परिचित और पड़ोसियों को संडास की जगह टाईल लगा हुआ साइफन का पखाना दिखाकर उसे बड़ी प्रसन्नता होती। जीवन भर एकत्रित सामग्री अपने निजी घर में व्यवस्थित करके महादेव को संतोष हुआ।

चपला का ससुराल भी समीप में था। दिन में दो एक बार आ जा सकने की सुविधा थी। चपला का पति बड़ा सीधा और सरल था। वह अपनी पत्नी से केवल एक वर्ष अवस्था में बड़ा था। महादेव की कोई आज्ञा अस्वीकार करने का साहस उसमें नहीं था। वह उसके संकेत पर चलता था।

दैव की माया असमय में ही वह चल बसा ; महादेव के ऊपर वज्रपात हुआ। इस वृद्धावस्था में निश्चिंत होकर वह दिन काटना चाहता था; किंतु विधाता की इच्छा !

चपला ससुराल में न रहकर महादेव के साथ ही रहती थी। पति की मृत्यु का प्रभाव उसके ऊपर नहीं दिखायी देता था कारण पति उसके पसंद का नहीं था। यहाँ तक कि छोटी अवस्था होने के कारण पिता की आज्ञानुसार उसने चूड़ियाँ फिर पहन लीं। उसकी रहन सहन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

जवानी की अठखेलियों में अँगड़ाई लेती हुई चपला पड़ोस के एक युवक की आँखों में जा बसी।

स्नेह का आदान प्रदान होने लगा। घनिष्ठता बढ़ी। वह युवक इसके यहाँ प्रायः आने जाने लगा। सब कुछ समझते हुए महादेव अनभिज्ञ बना रहा। संतान की ममता में फँस कर चपला का विधवा विवाह तक करने के लिए वह प्रस्तुत था, किंतु उसके पहले ही चपला ने अपनी व्यवस्था कर ली। एक दिन कुछ आभूषण और रुपये लेकर वह भी अपने प्रेमी के साथ खिसक गई।

पुत्रवधू और पुत्री के इस तरह निकल जाने पर समाज से जो लांछना मिली उसे महादेव विष की घूँट की तरह पी गया। वह दूसरों के संबंध में

सदैव टीका टिप्पणी करता। अपनी जाति में व्यवस्था देता। अब स्वयं उसका मस्तक नत हो गया।

अपनी पतन की कहानी का रूप ही उसने ऐसा बदल दिया था कि उन रहस्यों को कोई समझ न सके। फिर भी दुनियाँ में अनुसंधान करनेवालों की संख्या अधिक है। वे सब जगह अपनी दृष्टि दौड़ाते रहते हैं।

महादेव का दरबार लगता। इसमें उन्हीं लोगों की संख्या अधिक थी जो दूसरों के यहाँ क्या होता है?—पर ही वाद विवाद करने के अभ्यस्त होते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी जमीन और मकान खरीदने और बेचने वाले दलाल भी वहाँ दिखाई पड़ते।

महादेव मकान या बगीचा खरीदता और अच्छा दाम मिलने पर उसे बेच देता। इस तरह बैठे बैठे उसने अपनी पूँजी दूनी तिगुनी कर ली थी।

बहुत दिनों से पत्रव्यवहार के बाद उसने अपने पुत्र का दूसरा विवाह भी कर दिया, लेकिन इस बार सुखदेव अपनी पत्नी को अपने साथ ही ले गया। महादेव की आशा के विपरीत यह कार्य हुआ। वह सुखदेव से रुष्ट हो गया। दोनों के मन की मलिनता इतनी बढ़ गई कि कुछ दिनों में पिता का पत्रव्यवहार तक बंद हो गया।

नौकर, दाई और महाराजिन के साथ महादेव का जीवन चैन से कट रहा था।

महाराजिन का आधिपत्य इतना बढ़ गया था कि महादेव उसके संकेत पर चलता। लोगों को ७० वर्ष के इस बूढ़े के कृत्य पर आश्चर्य होता। जब कोई उसकी रसिकता पर चुटकी लेता तो महादेव गर्व और प्रसन्नता का अनुभव करता।

कभी नौकर तलवे में मालिश करता। महाराजिन सिर दबाती और बैठे हुए लोग उसकी हाँ में हाँ मिलाते। अफीम की पिनक में महादेव अपने संसार को हरा भरा देखता।

कई वर्ष बीत गये।

सुखदेव का पत्र आया था कि वह नौकरी से अलग हो रहा है। अवधि पूरी हो चुकी थी। अब वह क्या करे? इस संबंध में वह पिता से परामर्श चाहता था।

महादेव ने कटु भाषा में पत्र का उत्तर दिया। अंत में उसका आदेश यही था कि यहाँ आकर उसके साथ ही वह रहे।

सुखदेव जानता था कि संमिलित रूप से उसके साथ रहना कठिन हो जायगा। फिर भी परिस्थितियों के कारण विवश होकर उसे आना पड़ा।

पिता की रहन सहन को देखकर वह मन ही मन असंतुष्ट हुआ। उसे ऐसी आशा नहीं थी कि इतनी अवस्था में भी महादेव की प्रवृत्तियों में परिवर्तन न होगा। उसकी विलासप्रियता पहले से बढ़ गई थी।

वह अपनी पत्नी के साथ चुपचाप सब देखता रहा। उसकी पत्नी जब कान में कुछ भुनभुनाती तब वह चौकन्ना होता।

एक दिन अनायास ही उसकी पत्नी पर महाराजिन गरज उठी। पहले तो वह चुप थी लेकिन असह्य होने पर उसने भी उत्तर दिया। बात बढ़ती गई। सुखदेव ने खड़े होकर महाराजिन को फटकारा।

महाराजिन के विलाप के कारण महादेव भीषण रूप बनाकर सामने आया। उसने घृणित शब्दों का प्रयोग किया। सुखदेव के सहन के बाहर की बात थी। उसने भी उसी स्वर में ललकारा। महादेव ने काँपते हुए डंडे का प्रयोग किया।

घटना का क्रम इस तीव्रता से बढ़ा कि सभी को आश्चर्य था।

अंत में थाना-पुलिस-मुकदमा की बातें होकर वातावरण शांत हुआ।

महादेव ने खर्चा देना भी बंद कर दिया, सुखदेव अपनी रसोई अलग कर ले, ऐसी उसकी आज्ञा हुई।

बूढ़ा सदैव व्यंग्य बोलता और लोगों से सुखदेव की निंदा करता। सुखदेव ऊब उठा था। घर रहना उसका कठिन हो गया। वह ज्योतिषियों के यहाँ अपने पिता की कुंडली लेकर जाता और पूछता कि इनकी आयु कितनी है ? कोई कहता जल्दा ही समाप्त हो जायगी, कोई कहता अभी दो चार वर्ष इसी तरह चलेगा। बूढ़े के बाद सुखदेव का जीवन सुखमय होगा, इसी कल्पना में दिन कट रहे थे।

घर में पड़े पड़े घबड़ाकर एक दिन सुखदेव अपनी पत्नी को सिनेमा दिखलाने ले गया। लौटने पर बूढ़ा क्रोध से लाल हो उठा था। रात भर

किसी तरह पलँग पर पड़ा था। सुबह तड़के ही उठकर उसने पूछा—क्या यही हमारे घर की चाल है कि औरत मुँह खोलकर सड़क पर चले ?

सुखदेव भी उत्तेजित हो उठा। उसने कहा—क्या यही हमारे घर की चाल है कि लड़की और बहू घर से निकल जाय ?

वातावरण कोलाहल से पूर्ण हो उठा। पड़ोस के लोग एकत्रित हो गये। सब लोगों के समझाने का कुछ प्रभाव न हुआ। छत पर बैठे कौए काँव काँव कर रहे थे।

और बूढ़ा कुटिल काग बहुमत अपने पक्ष में करने की चाल सोच रहा था।

काला सिक्का

राजा का राज पाट पलट गया था, विद्रोहियों की विजय थी।

युग का परिवर्तन था, आंदोलन के नेताओं के हाथ में शासन का सूत्र था, राजा की निरंकुशता और अत्याचार का अंत होकर नये शासन विधान की रचना होनेवाली थी।

कैसे क्या होगा ? जनता के मस्तिष्क में यही प्रश्न उपस्थित था।

जनतंत्र की घोषणा हुई, नागरिकों को समान अधिकार मिला, किंतु लंबा चौड़ा भाषण देनेवाले विधान के दाँव पेंच के मर्मज्ञ नहीं थे, तब बूढ़े मंत्री को खोज कर राजमहल में आमंत्रित किया गया।

मंत्री राजतंत्री था। उसने भय और दंड की कठोरता में शासन का संचालन किया था, उसके संमुख नवीन परिस्थिति थी। शासन विधान में कुछ नये सूत्र जोड़े गये, शेष सब राजा के समय के ही रहे।

मंत्रिमंडल और अधिकारियों का चुनाव हुआ। देश में नये नये नारे प्रचलित हुए। मुखियों ने अपने पद की महिमा के अनुसार वेतन का बोझ जनता पर लाद दिया। जिस पद पर एक पदाधिकारी कार्य करता था, उस स्थान के लिये अनेकों की नियुक्ति हुई, फिर भी मुखिया और सरदार सर्वथा संतुष्ट नहीं हुए। लोलुप देशभक्त अपने त्याग की विशद व्याख्या सुना कर सर्वस्व निगल जाने के मोह में पड़े हुए थे।

शासनसूत्र अव्यवस्थित था, जनता भूखी थी। त्राहि त्राहि की आवाज चारों ओर फैल गई।

भ्रष्टाचार, व्यक्तिगत स्वार्थ और न्यायालयों पर मंत्रियों का प्रभाव चल रहा था। अपव्यय और अंधाधुंधी का बोलबाला था। अन्न वस्त्र के अभाव से जनता त्रस्त थी। कोई किसी की सुनता नहीं था, राजा के स्थान पर भाग्य विधाताओं का दरबार लगता था। खुशामदी और चालूसों का कार्य सिद्ध होने लगा।

विद्रोह की धूनी फिर सुलग उठी।

राजा के राज्य में हम लोग इतने संकट में नहीं थे······जनता ने खुलकर घोषणा की।

तब बूढ़े मंत्री ने अन्य सभी मंत्रियों को एकत्रित कर एक दिन राजमहल में सब प्रश्नों पर विचार किया।

न्याय विभाग पर सबसे अधिक अव्यवस्था और भ्रष्टाचार का आरोप था। न्याय मंत्री ने अपनी असमर्थता प्रकट की। उसने कहा कि राजा के समय से जो परिपाटी चली आ रही है, उसी रूप में कार्य हो रहा है, ऐसी स्थिति में कर्मचारियों का लोभ शांत नहीं हो सकता।

अर्थ विभाग, गृहविभाग, रक्षा और यातायात विभागों में जनता के पैसों का जो दुरुपयोग हो रहा था, उसके संबंध में सुधार की योजना प्रस्तुत हुई।

बूढ़े मंत्री ने गंभीरतापूर्वक सभी समस्याओं का ध्यान रखते हुए कहा······मेरा जो व्यक्तिगत अनुभव है, उसके आधार पर मेरा विश्वास है कि राजा के राज्य में केवल महाराज की प्रसन्नता और क्रोध पर ध्यान रखना पड़ता था। इस जनतंत्र में हमें सबको संतुष्ट करने का प्रयत्न करना पड़ता है, परिणाम यह होता है कि हम किसी को भी संतुष्ट नहीं कर पाते हैं।

अर्थमंत्री ने उत्सुकता से पूछा—तब राज्य का संचालन उपर्युक्त रीति से कैसे हो सकता है ? देखता हूँ कि मान की तृष्णा जोरों से बढ़ती जा रही है।

बूढ़े मंत्री ने दृढ़ता से कहा—बहुत कुछ विचार करने पर मैंने निश्चित किया है कि एक बार अपने इस अंतिम प्रयोग को लागू करूँ।

गृहमंत्री ने कौतूहल से पूछा—वह क्या महाराज ?

बूढ़े मंत्री ने कहा—मैं अपने देश से सोना चाँदी और रत्न आभूषणों का महत्व ही नष्ट कर देना चाहता हूँ, इन वस्तुओं का कोई मूल्य नहीं रहेगा तब अपने आप जनता में इनके प्रति लोभ और आकर्षण शेष नहीं रह जायगा।

अर्थमंत्री ने आश्चर्य से पूछा—ऐसी स्थिति में संपूर्ण मुद्रा व्यवस्था का संचालन कैसे संभव होगा

बूढ़े मंत्री ने कहा—लोहे के सिक्के चालू होंगे।

यातायात मंत्री ने पूछा—फिर अन्य देशवाले इन सिक्कों को कैसे स्वीकार करेंगे।

बूढ़े मंत्री ने कहा—हम समस्त विश्व से अपना आर्थिक संबंध तोड़ देंगे, न किसी देश का माल लेंगे और न देंगे।

कई दिनों तक तर्क और व्याख्या होती रही। अंत में बूढ़े मंत्री की नई योजना स्वीकृत हुई, जनतंत्र की इस नवीन व्यवस्था से जनता में बड़ा कोलाहल मचा, पूँजीवालों ने विरोध किया, किसान और मजदूर वर्ग ने स्वागत किया, समान नागरिक अधिकारों के साथ, भूमि का भी बराबर का हिस्सा बाँटा गया।

सचमुच जनता सुख और शांति से जीवन व्यतीत करने लगी। भ्रष्टाचार, अन्याय, मंत्री और पदाधिकारियों का बड़ा खर्च और वेतन सब कुछ विलीन हो गया था।

शिक्षा का विस्तार होने लगा, विधान के नियमों का पालन होता और नवयुवक अपने बड़ों का आदर और संमान करते। बूढ़े मंत्री की देवता की भाँति पूजा होने लगी थी।

एक कुटुम्ब बना, नीच ऊँच का भेदभाव मिट गया था। यह सब देखकर बूढ़ा मंत्री अपनी सफलता से प्रसन्न था। राजधानी के मध्य भाग में राजमहल के संमुख मैदान में बूढ़े मंत्री की विशाल लोहे की प्रतिमा स्थापित की गई। उसके जन्मदिवस पर प्रति वर्ष नागरिक वहाँ अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने जाते थे। यह सब देखकर बूढ़े मंत्री की आँखों से हर्ष के अश्रु ढुलक पड़े थे। उसके जीवन का कार्यक्रम समाप्त हो चुका था। उसने भगवान् से प्रार्थना की कि अब वह उसे बुला ले। वह कुशल राजनीतिज्ञ था। वह भेड़रूपी जनता की आत्मा से परिचित था।

भगवान् ने जैसे उस बूढ़े प्रधान मंत्री की प्रार्थना सुन ली। बूढ़ा मंत्री एक दिन चल बसा।

समस्त राष्ट्र ने बड़े संमान से उसका अंतिम संस्कार किया। देश में शोक छा गया था।

समय बदला, जनता भोजन और वस्त्र से अधिक कुछ चाहने लगी। वह एक ही स्थिति से ऊब उठी थी।

बूढ़े मंत्री की व्यवस्था में परिवर्तन की माँग हुई, नई पीढ़ी के हाथों में शासन सूत्र आया।

लोहे के सिक्के बंद कर दिये गये और साथ ही बूढ़े मंत्री की वह लोहे की विशाल प्रतिमा भी छिन्न भिन्न कर दी गई थी। उस बूढ़े प्रधान मंत्री के ऊपर यह कलंक लगाया गया था कि लोहे का सिक्का चलाकर स्वर्ण और चाँदी की ईंटों से उसने अपना घर बनवाया था। उसके शौचालय में रत्नों की जगमगाहट देखकर लोग चौंक उठे थे।

कल्पनाओं का राजा

वह महीनों से अपने घर से बाहर नहीं निकला था। उसे किसी से मिलना, हँसना, बोलना कुछ भी पसंद न था। पड़ोस के लोग उसके रहस्य-पूर्ण जीवन की बातें समझने में असमर्थ थे। उन्हें अनेक चेष्टाओं के बाद भी यह पता नहीं लगा कि वह कौन है? कहाँ से आया है? और क्या करता है?

उसकी दिनचर्या भी बड़ी विचित्र थी। वह दिनभर सोता रहता। पता नहीं कितने दिनों से उसने प्रभात के समय उगते सूर्य की बिखरी हुई किरणों को नहीं देखा था। वह पलंग पर पड़ा झपकियाँ लेता, कभी उठ बैठता, फिर मुँह ढँककर पड़ा रहता। ऐसा ही उसका कार्यक्रम था।

उसके संबंध में लोगों ने बहुत तरह की बातें फैला रखी थीं। कोई कहता—वह किसी देश का राजकुमार है, जो अपने मन से भागकर चला आया है। एक ने तो इस घटना का समर्थन यहाँ तक किया कि उसके राज्य के बड़े बड़े कर्मचारी उसे मनाने, समझाने के लिए आये थे, लेकिन उसने किसी की भी न सुनी—किसी की न मानी!

किंतु, लोगों को यह विश्वास हो गया था कि किसी समय वह बड़ा धनवान था और पैसों को लुटाने में उसने कभी हाथ नहीं खींचा लेकिन स्वार्थी पुरुषों की माया में उसका सब कुछ चला गया। इसीलिए किसी से बोलना, मिलना, हा हा करना उसे अच्छा नहीं लगता। वह अपनी ही धुन में मस्त रहता है।

जो कुछ भी हो, उसका चौड़ा मस्तक, लंबी नाक और बड़ी बड़ी आँखें अपनी विशेषताओं का स्वयं परिचय देती थीं।

इधर तीन दिनों से भावों का वेग बड़ी तीव्र गति से उसके हृदय में उथल पुथल मचा रहा था।

अगणित पगडंडियों को पार करके थका हुआ पथिक, जब विश्राम के लिए कहीं अलसाया हुआ सोचता है कि कितने बीहड़ मार्गों को कुचलता, ठुकराता हुआ, वह यहाँ तक पहुँच सका है। लेकिन अब वह कहाँ जायगा?

क्या करेगा? यह समस्त जीवन यों ही भटकते ही बीत जायगा? वह आज इन्हीं प्रश्नों को न जाने किससे पूछना चाहता है।

देखो न, ऊपर आकाश अपने विशाल नेत्रों से दिन और रात जागकर संसार की आहों को बटोरता है, और यह पृथ्वी असंख्य मानव, जड़, जीव जंतु और कीट पतंगों की जननी, कितनी उदारता से अपने वक्षस्थल पर सुलाये हुए प्यार की थपकियाँ देकर, जलाकर राख कर देती हैं। सिकता के एक कण में कितनी ईर्ष्या, कितना द्वेष, जलन, अभिमान, प्यास और न जाने क्या क्या भरा रहता है।—कहते कहते वह पलंग से उठकर कमरे में टहलने लगा।

जाड़े की रात साँय साँय करती हुई, उत्तर देने की चेष्टा कर रही थी।

इस संपूर्ण सृष्टि का उद्देश्य, कौन बता सकता है? अवश्य ही निर्माता का खिलवाड़ है। खिलवाड़ में भी निष्ठुरता है, कठोरता है, उँह! कैसी विडंबना है!—कहकर अपना मुँह बनाते हुए, कमरे में टँगे हुए, एक बड़े शीशे में अपनी तरह तरह आकृति बनाकर वह स्वयं अपने को देखने लगा।

पास में चमड़े का एक बक्स रखा था। उसमें शराब की एक बोतल पड़ी थी। इधर बहुत दिनों से उसने मदिरा नहीं पी थी, क्योंकि उससे भी एक तीव्र नशे की खुमारी में उसके दिन उलझे हुए थे।

आज बक्स से बोतल निकालकर उसने अपने सामने रखा; जैसे किसी एक नवीन कल्पना का वास्तविक रूप देखने के लिए वह उठ खड़ा हुआ। उसने बोतल अपने बगल में ली और चुपचाप घर से चलने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसका बूढ़ा सेवक द्वारपर ऊँघ रहा था। उसे देखकर खड़ा हो गया, बड़ी उत्सुकता से उसकी आँखें कुछ पूछना चाहती थीं।

काल्पनिक ने कहा—मैं जाता हूँ, रात में लौटकर नहीं आऊँगा।

सेवक ने मस्तक झुकाकर उसकी बातें सुनीं। वह उसके स्वभाव से परिचित था।

काल्पनिक को यह मालूम था कि नगर से दो मील दूर पर सुंदर स्त्रियों का एक समुदाय है, जहाँ पुरुष अपने मनोरंजन के लिए उन्हें पैसों से पालते हैं, और वेश्या के नाम से उनका संबोधन करते हैं।

वह उसी मार्ग की ओर जा रहा था। रजनी ने दूसरे पहर में पदार्पण किया। कुत्ते भूँक रहे थे। चारो ओर सन्नाटा था। शीतकाल की रजनी

अपने पहले पहर में ही गृहस्थ दूकानदारों को छुटकारा दे देती है। दुकानें सब बंद हो गयी थीं।

वह चलते चलते रूप के हाट में पहुँचा। इस भयानक शीत में भी पैसों के नाम पर हाट आलोकित था। काफी चहल पहल थी। वह एक एक मकान के सामने खड़ा होकर देखता हुआ, आगे बढ़ा। किसी ने मुसकराकर उसे आकर्षित करना चाहा, किसी ने हाथ से संकेत किया और किसी ने रूमाल हिलाकर! इस तरह अनेकों विधियों से सबों ने अपना अपना कौशल दिखलाया; लेकिन वह आगे ही बढ़ता गया। अंत में एक जगह जाकर वह खड़ा हो गया। उसे यह ज्ञात हो गया कि हाट की सीमा का यहीं अंत होता है और यह अंतिम मकान है। उसने ऊपर देखा, एक ढली हुई आकृति दिखलाई पड़ रही थी।

दोनों ने एक दूसरे को देखा। दोनों चुप थे। न कुछ प्रदर्शन था, न कोई संकेत! उसने सोचा यह अंतिम है, इसके साथ ही यह हाट समाप्त होती है।

उसने मकान में प्रवेश किया। सीढ़ियों पर चढ़ते हुए, वह कमरे के सामने आ गया। वेश्या ने खड़े होकर उसका स्वागत किया। वह भीतर गया। एक मसनद के सहारे बैठ गया। सामने बोतल रख दी।

वेश्या की अवस्था ढल रही थी। उसकी आँखों के आसपास की लकीरें अपने बीते हुए दिन का परिचय दे रही थीं। आगंतुक की ओर कुतूहल से वह देखने लगी। वह जैसे स्वप्न लोक में चली गई हो।

युवक ने पहला प्रश्न पूछा—आप शराब पीती हैं?

.........आपको सब तरह से प्रसन्न रखना ही मेरा कर्तव्य होगा।

हूँ......यदि इसके पहले कभी न पी हो, तो मेरा कोई विशेष आग्रह नहीं होगा।

जीवन में बहुत थोड़े ऐसे अवसर मुझे मिले हैं।

तब ठीक है, दो काँच के ग्लास मँगाओ।

बोतल खोली गई। दोनों ग्लासों मे उसने बराबर बराबर उड़ेली।

युवक ने अपनी जेब से कुछ चाँदी के सिक्के निकालकर उसके सामने रख दिये। उसने कहा—आप जो मेरे लिए समय नष्ट करेंगी उसका यह पुरस्कार है।

उसके इस उदारतापूर्ण व्यवहार के कारण उस वेश्या को सिक्कों के उठाने में संकोच हो रहा था।

युवक ने ग्लास अपने हाथ से उठाकर उसे देते हुए कहा—हूँ !...

उसने ग्लास ले लिया। दोनों ने एक साथ उठाया।

युवक एक साँस में ही सब पी गया। मदिरा के आवेश में उसे कुछ बोलने की इच्छा हुई। उसने कहा—मैं आज तुम्हें अपने जीवन की एक घटना सुनाऊँगा। सुनोगी ?

वेश्या मुग्ध होकर उसकी ओर देख रही थी। मदिरा की एक घूँट ने उसे और समीप लाकर बैठा दिया।

युवक ने कहना आरंभ किया—

अपनी जवानी के अलहड़पन में मैंने अपनी एक प्रेमिका बना ली थी। वह बड़ी सीधी, बड़ी कठोर और आकर्षक थी। वह पहली ही बार मुझे देख कर मेरे हाथों बिक गयी थी। मुझे एक बार देखकर उसका रोम रोम पुलकित हो उठता था। वह दिन रात यही चाहती कि मैं उसकी आँखों से दूर न होऊँ। अपनी संपूर्ण शक्तियाँ लगाकर भी वह मुझे प्रसन्न करना चाहती थी। दिन-पर-दिन जाने लगे। जितना अधिक वह मुझे प्यार करती, मैं उससे दूर रहने की चेष्टा करने लगा। मैं उसके लिए अमृत था, लेकिन वह मुझे विष की प्याली के समान प्रतीत होने लगी। उसने मेरा सब कार्य-क्रम बिगाड़ दिया। मैं प्रतिदिन सूर्योदय के पहले उठता था। मेरे कार्य और परिश्रम को देखकर लोग आश्चर्य करते थे। लेकिन वही एक कारण हुआ, जिसने दिन रात मुझे सोना सिखलाया, उसने मुझे बेकार बनाया, उसने मेरा शरीर दुर्बल बनाया, उसने मुझे घृणा सिखलायी और उसने ही मुझे शराब पीने के लिए बाध्य किया। मैं साहसी था, उसने मुझे कायर बनाया। ऐसी ही मेरी प्रेमिका थी।—इतना कह कर काल्पनिक ने बोतल से मदिरा दोनों ग्लासों में ढाली। वेश्या ने पीने में उसका साथ दिया।

वह उसी तरह कहता चला गया—मेरी अवस्था बढ़ने लगी। मेरा उत्साह शिथिल होने लगा ! मेरा अब उसके प्रति आकर्षण कम होता जा रहा था। मैंने एक दिन उससे कहा—मेरा तुम्हारा संबंध अब स्थायी नहीं रह सकेगा। तुम मुझे क्षमा करो।

उसने बड़ी दृढ़ता से कहा—तुम्हारे साथ ही मैं अपना प्राण दूँगी। मैं उसे भुला कर शराब पीने लगा। एक दिन मैं आत्महत्या करने के लिए प्रस्तुत हुआ। मैं अपने जीवन से ऊब गया था। मेरे लिए संसार में कोई सुख नहीं था। मरना ही मेरा अंतिम लक्ष्य था। मैं सब सामग्री लेकर बैठा था। मेरे द्वार पर किसी ने खटखटाया। मैंने पूछा—कौन है ?

उसने कहा—मैं

मैं उसके स्वर को पहचान गया। मैंने कहा—क्या है ?

उसने कहा—चलो।

मैंने कहा—कहाँ ?

उसने कहा—मेरे साथ !

मैंने कहा—क्षमा करो, तुम्हारे ही कारण आज मैं अपने जीवन का अंत कर दूँगा।

उसने कहा—यह तुम्हारा भ्रम है, बोतल लेकर चलो, शीघ्रता करो। उसके स्वर में शासन था। मैं कैसे अस्वीकार करता। तैयार हो गया। बोतल लेकर निकला...

इतना कहकर युवक ने फिर बोतल का शेष अंश दोनों पात्रों में भर दिया और पीने लगा। बोतल समाप्त हो गयी।

वेश्या ने नशे के आवेश में पूछा—तब क्या हुआ ?

युवक ने कहा—बस, अब आगे न कहूँगा। मैं जाता हूँ।

वेश्या ने उन्मत्त स्वर में कहा—नहीं प्यारे, मैं तुम्हे न जाने दूँगी ! अभी दो घड़ी रात बाकी है। इस समय तुम कहाँ जाओगे ? मैं तुम्हें प्यार करूँगी।

युवक ने कहा—संसार में मनुष्य एक दूसरे को भ्रम के आवरण में छिपा रखना चाहते हैं। कौन किसको प्यार करता है ? यह सब व्यर्थ है। क्या तुम मेरी प्रेमिका से अधिक मुझे प्यार कर सकोगी ?

वेश्या ने कहा—इस समय तुम्हारा जाना ठीक नहीं है। मान जाओ।

युवक ने कहा—आज मेरी उसी प्रेमिका का अंतिम संस्कार है, मुझे जाना ही होगा। कोई भी शक्ति मुझे रोक नहीं सकती।—कहते हुए वह उठ खड़ा हुआ और चला गया।

वेश्या सचमुच एक ऐसे स्वप्न से उठकर जगी थी, जिस स्वप्न में उसका सब कुछ चला गया हो।

* * * *

दस वर्ष बीत गये।

वह वेश्या प्रतिदिन उसकी प्रतीक्षा में आँख बिछाये रहती थी। उसे विश्वास था कि किसी दिन फिर वह अपनी प्रेमिका से लड़ झगड़कर उसके यहाँ अवश्य आवेगा। लेकिन फिर कभी वह लौटा नहीं।

आज भी वह अपनी संतानों के बीच में बैठकर अपने एक रात्रि के प्रेमी की कहानी, कल्पना से उसे और भी विशाल बनाकर कहती है।

वेश्या को यह नहीं मालूम हुआ कि उस अपरिचित युवक की प्रेमिका का नाम वासना था, और उससे लड़कर फिर कभी कोई कहीं नहीं जाता।

करुणा

एक दृश्य—

अंधकार का चारों तरफ राज्य था। एक पहर रात ढल चुकी थी। आकाश के अंचल में तारे जगमगा रहे थे। चंद्रदेव दूसरे देश में भ्रमण कर रहे थे! उस पतली सी गली में कोई किसी को देख न सकता था, कभी कभी तो ऐसा हो जाता कि अंधकार के कारण एक दूसरे मनुष्य की टक्कर लड़ जाती। कूड़ा जगह जगह फैला था, सफाई कुछ भी न थी। उसी गली में एक पुराना मकान था। देखने से यह ज्ञात होता था कि अबकी वर्षा ऋतु में यह मकान खड़ा न रह सकेगा। उसी मकान की एक कोठरी में एक दीपक जल रहा था। उसमें कुछ सामान भी नहीं दिखाई देता था, केवल कुछ मिट्टी के बरतन पड़े थे, और एक रोगिणी शय्या पर पड़ी थी। रोग के कारण उसका शरीर पीला हो गया। शरीर में हड्डी हड्डी निकल आई थी। उस दीपक के मंद मंद प्रकाश में उस रोगिणी की गढ़े में धँसी हुई आँखें डबडबा रही थीं।

एक नन्हा सा बच्चा उसके वक्षस्थल में छिपा हुआ दूध पी रहा था। रोगिणी बार बार उसकी तरफ देखती, उसके नेत्रों से आँसू की धार बह रही थी। वे अश्रुकण अपने मार्ग से खिसककर बच्चे के गाल पर टपक रहे थे। वह नन्हा सा बच्चा अपनी माँ की तरफ देख रहा था, और माता उसकी तरफ देख रही थी। बच्चे ने अपने छोटे छोटे हाथों को ऊपर उठाते हुए कहा—म···माँ···आँ। माता ने उसे चूम लिया। उसके सिर पर हाथ थपथपाते हुए उसने कहा—बेटा, सो जाओ। रोगिणी की दशा पहले से अब कुछ अच्छी हो चली थी।

परिचय—

वह एक वेश्या थी, पतिता थी, और समाज से निकाली हुई अभागिनी थी। उसकी रूप की दूकान थी और दूकान भी ऐसी, जो न चलती हो। कुछ धन भी एकत्र न कर सकी। रूप भी नष्ट हो गया। दूकान टूट गई। एक बालक हुआ, तभी से वह बीमार पड़ी। कई मास तक वह बीमार

पड़ी। कई मास तक वह रोगग्रस्त थी। पेट के लिये घर का सब सामान बिक चुका था। ग्राहक भी नहीं आते थे।

और सहायक भी कोई न था। फिर भी दुखिया रो रोकर अपने दिन काटती थी। उसे केवल अपने ही तन की चिंता न थी, उसका एक बालक भी था। सबसे अधिक चिंता उसे अपने बच्चे की होती। उसे दूध तक न मिलता था। दुखिया के स्तन में इतना दूध होता नहीं था, जिससे उसका पालन होता। उस दुखिया का नाम था—करुणा !

कई दिन बाद—

करुणा ने देखा, अब बच्चे का जीवन निर्वाह करना उसके लिये बड़ा कठिन है। इस तरह तो एक दिन उसकी मृत्यु हो जायगी। उसने अपने मन में कहा—यदि मैं अपना बच्चा किसी को दे दूँ, और वह इसे अच्छी तरह रखे······किंतु एक वेश्या के बच्चे को कौन रखेगा—लोग उससे घृणा करेंगे ! अंत में उसने निश्चय किया कि रात्रि के समय बालक को मार्ग में रख दूँगी। कोई-न-कोई उसे उठा ले जायगा, और उसका पालन-पोषण करेगा। उसने मोह को अपने हृदय से हटा दिया।

अभी दो घड़ी रात बाकी थी। करुणा उठी, बालक को उसने गोद में ले लिया। फटे वस्त्रों से उसने उसे लपेट लिया और घर से वह निकल पड़ी। बार-बार घूमकर देख रही थी कि उसे कोई देख तो नहीं रहा है। उसके हाथ में बालक के खेलने का एक शीशे का खिलौना था। बालक का बोझ वह रुग्णावस्था के कारण सँभाल न सकती थी। चलते चलते वह एक सड़क पर आई। अभी पूर्व दिशा में लाली नहीं छाई थी, फिर भी सबेरा होने ही वाला था।

करुणा ने एक स्थान पर बालक को रख दिया। उस समय वह अश्रु-पात कर रही थी। वह सोचती, अब बच्चे को इस जीवन में देख सकूँगी या नहीं। बार बार वह बच्चे की तरफ देखती। बसंत का पवन आकर उसको स्पर्श करता।

उसकी आत्मा कहती—जो कुछ तुम्हारे पास है, वायु के साथ उसे लुटा दो। उसने हृदय को कठोर किया। कष्ट सहते-सहते वह कठोर हो चली थी। किंतु फिर भी वह माता का हृदय था।

करुणा ने बालक को चूम लिया। उसने कहा—मोहन, आज अंतिम बिदाई है, अब तुम अपनी माँ से अलग हो रहे हो। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। यह कहती हुई वह उन्मादिनी की तरह चली जा रही थी। मोहन के रोने की ध्वनि उसके कानों में गूँज रही थी। उसके हाथ में मोहन के खेलने का एक खिलौना था; किंतु खेलनेवाला न था। वह अपने घर की तरफ न जाकर कहीं दूसरी ही तरफ चली गई।

अनाथ मोहन—

मंदिर में घंटा बज रहा था। स्वर्णमयी उषा का क्षितिज में आगमन हुआ था। गंगा स्नान करने के लिये लोग घर से निकल रहे थे। एक रमणी भी अपनी दासी के साथ स्नान करने के लिये जा रही थी।

हाय! यह क्या! यह बच्चा यहाँ किसका रो रहा है?—रमणी ने आश्चर्य से कहा। दासी ने जाकर देखा, उसने उसे अपनी गोद में उठा लिया, और कहा—बहूजी, बच्चा तो बड़ा सुंदर है, किसी ने यहाँ रख दिया है। हाय, उसे जरा भी मोह न था। बहूजी ने कहा—अच्छा इसे घर ले चल।

बहूजी की जवानी ढल चुकी थी। संतान कोई उत्पन्न नहीं हुई थी। पति बड़े व्यवसायी थे, घर में लक्ष्मी का निवास था। वह बालक घर में अब सबका खिलौना हो गया। बड़े लाड़ प्यार में उसके दिन बीतने लगे। बहूजी को ही वह अपनी माता समझता था।

माता की व्यथा—

स्मृति काँटों की शय्या है। करुणा कभी रोती है, कभी हँसती है। रोती है वह मोहन के लिये, और हँसती है अपने जीवन पर। पथ पथ में वह फिरती है। कितनी रजनी उसकी सड़कों पर कटी हैं। अब न उसका घर था, न कोई साथी। सब कुछ छोड़ चुकी थी, और छोड़ चुकी थी अपने जीवन का अमूल्य संपत्ति मोहन को! वह विकल हो इधर उधर फिरा करती। पगली समझकर कोई उसे खाने को दो रोटियाँ दे देता। इसी तरह अपना जीवन काटती रही।

करुणा जब किसी बालक को खेलते हुए देखती, तो उसे मोहन की स्मृति आ जाती। वह बार बार उस खिलौने को देखकर रोती; क्योंकि मोहन की स्मृति के लिये केवल वह खिलौना ही उसके पास था। वह उसे हृदय

से लगा लेती और समझती, यही मेरा मोहन है। उसका दिमाग खराब हो चुका था। उसे न अपने भोजन की चिंता थी और न कपड़े की। यदि कोई दे देता, तो उसे वह ले लेती। मार्ग में चलता हुआ कोई उसके सामने एक पैसा फेंक देता, तो वह घृणा से उसे फेंक देती। लोग समझते, यह पगली है।

एक दिन करुणा को देखकर एक आदमी ने कहा—अरे यह तो वही वेश्या है! दूसरे ने कहा—जैसा किया था, उसी का फल भोग रही है—बुरे कर्म का बुरा परिणाम!

किंतु करुणा के साथ कोई सहानुभूति प्रकट करनेवाला न था! समाज उसका निरादर करता था। वह विकल होकर कहती—अभागे प्राण अब भी नहीं निकलते। हाय मैं क्या करूँ? मोहन! प्यारे मोहन!! आ जा मेरी गोद में!

दो वर्ष बाद—

वर्षा ऋतु के काले बादल अब सफेद और पतले हो चले थे। सफेद बादल आकाश में टकरा रहे थे। सूर्यदेव उन बादलों पर चित्रकारी कर रहे थे।

एक बड़ा सुंदर सा मकान था। उस मकान के सामने एक वाटिका थी। एक बालक ने कहा—गिलधाली! ए गिलधाली!! वह तितली मुजे पकल दो।

क्या करोगे?

उसे लखूँगा।

नहीं, वह मर जायगी।

मैं उसे दिला दूँगा।

मैं उसे नहीं पकड़ सकता, वह उड़ जायगी।

बालक उसे पकड़ने चला, तितली उड़ गई। वह उसकी तरफ देखने लगा। फिर वह अपनी रबड़ की गेंद को उछाल उछालकर खेलने लगा।

एक भिखारिन बहुत देर से वहाँ खड़ी देख रही थी। आज भूले भटके सहसा यह इधर आ गई थी। वह चुपचाप देख रही थी—आह, यह तो

मेरे मोहन की तरह है ! आँखें वैसी ही हैं—रंग भी कुछ साँवला सा है। गोल मुँह भी है। एक दिन चारपाई से गिरने पर उसके जो चोट आई थी, उसका चिह्न अब तक बना है। अवस्था भी इसकी उतनी ही है। एक वर्ष का था—दो वर्ष बीते। तीन वर्ष का तो यह बालक भी मालूम पड़ता है। यही है मेरा मोहन।

इन्हीं वाक्यों को करुणा भुनभुना रही थी। प्रेम से उसका हृदय उमड़ रहा था। मोती का हार टूट गया था, दाने एकएक करके भूमि पर गिर रहे थे।

गेंद उछलते उछलते करुणा के पास आ गया। बालक उसे लेने के लिये दौड़ा। वह उसकी तरफ देख रही थी। उसने धीरे से कहा—मोहन, भूल गये क्या ?

मोहन ने कहा—तुम भीक माँगती हो ? क्या पैछा ला दूँ ?

नहीं ?

तब क्या ?

अपने बच्चे को खोजती हूँ।

वह कहाँ है ?

तुम हो।

मोहन ने हँस दिया। उसने कहा—मैं अपनी अम्मा का बच्चा हूँ, तुम्हारा नहीं।

करुणा ने अपने वक्षस्थल में छिपा हुआ एक खिलौना निकालकर कहा—लो, यह तुम्हारा खिलौना है।—वह अपने को अब सँभाल न सकी। मोहन को गोद में लेकर रोने लगी। उधर नौकर ने जब देखा कि एक भिखारिन की गोद में मोहन है, तो वह भिखारिन के सामने आ गया और कहा—दूर हो यहाँ से।

यह कहते हुए बालक को उसने उठा लिया।

करुणा चुप हो गई, वह देखने लगी। उसने अपने मन में विचार किया कि इस समय यदि मैं कहती हूँ कि यह मेरा बालक है, तो कोई विश्वास ही न करेगा, और यदि विश्वास हो भी गया, तो मोहन सबकी दृष्टि में गिर जायगा। लोग समझेंगे, एक वेश्या—एक भिखारिन—का पुत्र है। उसका जीवन नष्ट हो जायगा।

वह विकल होकर रोने लगी।

नौकर गिरधारी ने पूछा—क्यों रोती है? भूखी है क्या?—ऊपर से बहूजी ने कहा—अरे उसे कुछ खाने को दे दो।

परंतु करुणा वहाँ से उठी। उसके पास मोहन की स्मृति के लिये जो खिलौना था, वह भी उसने वहीं छोड़ दिया। वह दौड़ती हुई चली जा रही थी। आज उसके मुख पर करुणा और संतोष था।

गिरधारी ने कहा—बहूजी! यह तो पागल हो गई है।

उस दिन से फिर करुणा को किसी ने नहीं देखा। न जाने कहाँ चली गई!

कलाकारों की समस्या

१—अरविंद

उसकी बड़ी बड़ी आँखें और नाक विशेषताओं से संमेलन कराती थीं। आकाश की तरफ देखनेवाला और शून्य में अपनी कुटिया बनानेवाला कवि आज बीसवीं सदी के कोलाहल में अपनी वासनाओं के विशाल भवन में प्रलोभनों का द्वार खोले बैठा है। वह चाहता है कीर्ति, यश; दुनिया उसकी कविता को पढ़ कर उसके प्रति संमान प्रकट करे।

उसके मरने के पचास वर्ष बाद, मनुष्य की बुद्धि का निरंतर विकाश होते रहने पर, उसकी कविताओं के प्रकाश की ज्वाला आसमान तक ऊँची चली जायगी, और तब उसकी आत्मा उसी शून्य में लिपट कर उस ज्वाला से पूछेगी क्या उसी मनुष्य समाज में अब दूसरी बार उत्पन्न होने का मुझे फिर निमंत्रण देने आई हो?

उसकी आत्मा कहेगी—मनुष्य, जीवित मनुष्य को समझने की चेष्टा नहीं करना। वह मृतक है, वह मरे हुए, लोगों से भय खाकर उनके प्रति संमान प्रकट करता है। मरने पर ही मेरा संमान है। अब मुझे जीवन नहीं चाहिए।

कभी कभी ऐसी बातों को सोचते रहने का अरविंद का स्वभाव था! इन विचार धाराओं से अलग होकर वह एक ऐसे संसार के सामने अपने को खड़ा देखता जो अपनी भौंह सिकोड़ते हुए व्यंग्य कर रहा था। फिर भी वह भूखों मरकर अपने विश्वास की छाया में लुक छिप कर वीणा बजा रहा था।

उदय ने एक पत्रिका के कुछ पृष्ठों को दिखा कर अरविंद से कहा—तुम्हारी कविताओं की इसमें आलोचना है।

अरविंद ने कहा—हूँ,...पढ़ ली है।

उसकी आँखों के संमुख वे पंक्तियाँ स्पष्ट हो गईं—छंदोंभंग है। भाषा शिथिल है। व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं। भावों में इतनी विलासिता भरी है

कि उसकी छाया को छूकर ही मनुष्य अपना सर्वस्व खो बैठेगा। वास्तविक जगत की यथार्थ बातों का निचोड़ चाहिए। कवि की यह कल्पना व्यर्थ है। समय की गति में बहो। तुम्हारी पतली दुबली, गुलाब की पँखुरियों सी सुंदर आराध्य देवी का वर्णन संसार इस समय नहीं चाहता। रोटी दाल का प्रश्न है।

ऊँह—कहकर सदैव ही अरविंद इस मार मार, किटकिट से दूर रहता है। उसे कोई परवा नहीं थी। वह अपनी धुन में गाता जाता है, उसकी कविता के स्वर समस्त वायुमंडल में गूँज उठते हैं।

एक बार प्रभात के बाल रवि से उसने अपने जीवन का मेल कराया था। उसमें तीव्रता नहीं थी, धधकती ज्वाला नहीं थी, और संसार को भस्म कर देने वाली आग नहीं थी, उसने कहा—ऊँचे उठो! आकाश का वह लंबा सा रास्ता दिनभर में समाप्त कर जाना होगा और तब तुम धुँधले से शिथिल कंकाल मालूम पड़ोगे—उठो!

अरविंद की रचनाओं में आकांक्षाओं के करुण रुदन की पुकार भरी हुई थी। एक दिन बरसाती नदी के समान अपने हृदय में, लहरियों के साथ कल्लोल करते हुए, उसने एक छवि देखी थी। ऋतुओं के आने जाने वाले दिन, उसकी स्मृति रक्षा में अब तब अपनो पवित्र ग्रंथियाँ बाँधे हुए थे। आज भी एकांत में चुपचाप बैठ कर न जाने कैसी आकृति बना कर, वह क्या क्या सोचता रहता है। उसके होंठ काँपने लगते हैं। उसकी आँखें स्थिर हो जाती हैं। तब वह कुछ शब्दों को अपनी लेखनी से दौड़ाता रहता है।

लोग यह भी कहते हैं कि उसकी कवितायें अमर हैं—साहित्य की स्थायी संपत्ति हैं। लेकिन वह इन सब विशेषताओं को नचाता हुआ हाहाकार करता है। अभाव के पंजे में जकड़ा रहता है।

ऐसा ही नवीन युग का कवि यह अरविंद है।

२—चंद्रनाथ

अस्ताचल पर डूबती हुई संध्या के हृदय की रंगीन स्याही को भावनाओं की प्याली में भरकर चंद्रनाथ चित्र अंकित करता था। वह चित्रकार था।

अपनी शक्तियों को उसकाने के लिए, उसे कभी-कभी शराब, संगीत और मोटर की आवश्यकता पड़ जाती थी। स्त्रियों की ओर उसका विशेष झुकाव नहीं था। वह सौंदर्य का उपासक तो अवश्य था, लेकिन उस सौंदर्य को अपने आवरण में ढँकना पसंद नहीं करता था।

चंद्रनाथ कहता, स्त्रियाँ झंझट, चिंता और कोलाहल की चिनगारियाँ हैं। स्त्रियों के प्रति ऐसा भाव होते हुए भी वह बंधन में जकड़ा हुआ था। संभवतः इस बंधन के कारण ही उनके हृदय में ऐसे विचार स्थिर हुए हों। किंतु जो कुछ भी हो चंद्रनाथ क्षणिक बुद्धि का व्यक्ति था। कभी कभी अपनी स्त्री से वह बिगड़कर अपना भयानक रूप दिखलाता—बड़बड़ाता हुआ घर से बाहर निकल जाता और कभी हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से क्षमा याचना करता वह यह भी कहता कि यह विजया न होती तो आज मैं बेकार लावारिस होकर सड़कों पर भटकता फिरता, मेरा कहीं भी ठिकाना न लगता और मेरे जैसे स्वभाव के आदमी का साथ निबाहना उसी का काम है।

अभी कल की घटना है। वह शराब पीकर घर लौटा था, कुछ पैसों के लिए उसने बहुत दीन भाव से याचना की थी। लेकिन उसकी पत्नी ने अत्यंत रूखे शब्दों में कहा—तुम दुनियाँ की सब बातें समझते हुए भी इतने नादान बने रहते हो, यह कैसी विलक्षण बात है ? तुम्हें मालूम है कि मकान वाले का तीन महीने का किराया, पानवाले, दूधवाले और उस बनिये को कितने रुपये देने हैं ? दो दिन हुए इतनी कठिनाई में एक चित्र का मूल्य मिला और उसे नष्ट करने की धुन तुम्हें सवार हो गई।

चंद्रनाथ उसकी ओर देखता रहा। अंत में जब उसने देखा कि वह किसी तरह भी रुपया देने के लिए प्रस्तुत नहीं है, तब उसने कहा—तुम्हारी ये सब उपदेश की बातें मुझे पसंद नहीं हैं ! मैंने पचास बार तुम्हें समझा दिया कि मेरे मजे में कभी बाधा न डाला करो। मैं जो कुछ करूँ; करने दो। जब मैं शराब से उन्मत्त होकर भटकूँगा सभी भावनायें मेरे संमुख आवेंगी और तब "मूड" में आकर मैं चित्र बनाना आरंभ करूँगा। फिर तुम देखोगी कि पैसों की कमी न रहेगी।

विजया ने तर्क करते हुए कहा—लेकिन तुम तो सब इसी तरह पीकर नष्ट कर देते हो और काम में मन भी नहीं लगाते। कितने चित्र पड़े हुए हैं और तुम उन्हें पूरा भी नहीं बना पाते।

चंद्रनाथ नशे की खुमारी में कहने लगा—मुझे दुःख है, विजया ! तुम एक आर्टिस्ट की मनोवृत्तियों को परख सकती हो। मैं दो ही स्थितियों में काम कर सकता हूँ। या तो मेरे पास जूते की ठोकरों से फेंकने के लिए रुपये हों या फिर भोजन तक का प्रबंध न हो। तभी मैं काम कर सकता हूँ। लेकिन तुम्हारे कारण इन दोनों स्थितियों में से एक को भी मैं नहीं अपना सकता। इसमें मेरा क्या दोष है ?

विजया ने दुखी होकर कहा—तब क्या मेरा ही दोष है ? तुम्हारे लिए, सब तरह कष्ट उठाते हुए भी तुम्हें सुखी न बना सकी, यह मेरा दुर्भाग्य है। कहते कहते उसकी आँखें छलछला पड़ीं।

चंद्रनाथ ने गर्दन सीधी करते हुए कहा—दुर्भाग्य तुम्हारा नहीं, इस भूमि का, इस देश का है, जहाँ हम लोग उत्पन्न हुए हैं। एक कलाकार की यही प्रतिष्ठा है ? यदि मैं पाश्चात्य देशों में पैदा हुआ होता तो मेरे एक एक चित्र हजारों के दाम में बिकते, लेकिन यहाँ कोई दस पाँच भी देनेवाला कठिनाई से मिलता है। इसमें न तुम्हारा दोष है, न मेरा।

इतना कहते हुए चंद्रनाथ विजया के आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहने लगा—लाओ, दो। अब विलंब न करो।

विजया ने कुछ रुपये लाकर चंद्रनाथ के हाथ पर रख दिये।

चंद्रनाथ ने प्रसन्न होकर कहा—मैं बारह बजे रात तक लौटूँगा। तुम सो जाना। मेरी प्रतीक्षा न करना। मैं द्वार खोल लूँगा।

वह चला गया।

विजया अपने पलँग पर पड़ी सोचती रही कि यह कला कौन सा जंतु है।

३—उदय

उस दिन रविवार था। उदय का दफ्तर बंद था। एक सप्ताह के कठिन परिश्रम के बाद एक दिन का विश्राम मिलता था। इसीलिए इसका बड़ा महत्त्व था। रविवार के दिन चंद्रनाथ की बैठक में काफी चहल पहल रहती दिन भर ताश चलता रहता।

उदय भोजन करके दोपहर में चंद्रनाथ के यहाँ आया। अरविंद भी वहीं बैठा था। कुछ और लोग भी थे।

उदय ने कहा—भाई, आज चार बजे तक मुझे एक बार दफ्तर जाना होगा ! छुट्टी के दिन भी सब छोड़ना नहीं चाहते ।

चंद्रनाथ ने कहा—तब क्या तुम भाँग बूटी के साथ नहीं रहोगे !

उदय ने उदासीनता से कहा—क्या करूँ ? नौकरी का प्रश्न है । घोर परिश्रम करके भी चैन की नींद नसीब नहीं । नाम के लिए एक पत्र का सहकारी संपादक हूँ । दिन भर प्रूफ देखता हूँ, लेखों का संशोधन करता हूँ, पत्रों का उत्तर देता हूँ, ग्राहकों का नाम रजिस्टर पर चढ़ाता हूँ । पीर, बबर्ची, भिश्ती, खर वाला हिसाब है । इस पर भी संचालकों की दृष्टि सीधी नहीं रहती । पता नहीं वे लोग यह भी चाहते हों कि उनका लड़का भी खिलाया करूँ और घर का सौदा भी ला दिया करूँ ।

चंद्रनाथ ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—यह सब व्यर्थ है ! छोड़ो नौकरी ! इस तरह नहीं चलेगा । भाँग छान कर चुपचाप मौज लो । सब काम अपने आप चलेगा । मनुष्य जितना ही सोचता है, परिस्थितियाँ उतनी ही शीघ्रता से उसके ऊपर आक्रमण करती हैं ।

उदय ने संकोच से कहा—अकेला होता तो कोई चिंता नहीं थी । बाल बच्चों की जीविका का भी प्रश्न है ।

अरविंद अभी तक शांत बैठा था । वह बातें सुन रहा था । वह बोल उठा—साहित्य से संबंध रखने वाले व्यक्ति का एकाकी जीवन ही अधिक उपयुक्त होता है । आज अकेले होने के कारण ही मैं इन सब झंझटों से अलग हूँ । पिता जी के कई पत्र आ चुके । वे मुझे विवाह के बंधन में बाँधना चाहते हैं । लेकिन मैं जिम्मेदारी का बोझ उठाने में असमर्थ हूँ ।

चंद्रनाथ ने कहा—विवाह हो जाने के बाद ही तुम्हारी भावुकता का अंत हो जायगा और फिर तुम्हारी कविता शिथिलता की समाधि बना लेगी ।

इसके बाद कुछ देर तक सब लोग जैसे इस जटिल प्रश्न पर विचार करते रहे । सब चुप थे ।

उदय ने अपना प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा—आज का मौसम बहुत प्यारा है । अरविंद अगर कविता सुनावें तो कहीं अच्छा हो । सबने समर्थन किया ।

अरविंद के सामने हारमोनियम रखा गया। चंद्रनाथ तबला ठीक करने लगा। आकाश बादलों को एकत्र कर रहा था। बूँदें गिरने लगीं। पवन का वेग द्वार बंद करने लगा। अरविंद ने अपने मधुर स्वर में गाना आरंभ किया—

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे!

जब सावन घन सघन बरसते,

इन आँखों की छाया भर थे।

मुग्ध होकर सब सुन रहे थे। चंद्रनाथ ठेका भी कुशलता से दे रहा था।

ठीक उसी समय मकानवाला द्वार पर दिखलाई दिया। चंद्रनाथ उसकी सूरत देखते ही निर्जीव सा हो गया!

वह कमरे में आकर खड़ा हो गया। चंद्रनाथ ने साहस से पूछा-कहिए?

उसने कर्कश स्वर में कहा—क्या कहूँ? मकान का किराया देने में आप बहुत परेशान करते हैं। अब मैं किसी तरह नहीं मान सकता।

चंद्रनाथ ने कहा—रुपया मिलता ही नहीं है क्या करूँ?

उसने ऊँचे स्वर में कहा—तब मकान छोड़ दीजिए। हारमोनियम, तबला बजता है, मौज उड़ती है और मकान का किराया देने को रुपया नहीं है। ऐसे भले आदमी तो मैंने देखे ही नहीं थे। बस हो चुका। तीन दिन के अंदर मकान खाली कर दीजिए। नहीं तो अच्छा नहीं होगा।

वह संपूर्ण आनंद में धूल फेंककर उसे किरकिरा बनाता हुआ चला गया था।

चंद्रनाथ चुप था। एक विचित्र समस्या थी।

* * * *

चंद्रनाथ ने मकान छोड़ दिया। चलते समय मकान वाले ने कुछ चित्र और सामान लेकर ही संतोष किया।

अरविंद के पिता का पत्र आया था। उसमें उनकी बीमारी का समाचार था। अतएव वह भी चला गया।

उदय का संचालकों से झगड़ा हो गया। इसलिए वह भी नौकरी छोड़ कर चला गया।

इस तरह बरसाती धूप की तरह उनके जीवन का कार्यक्रम सदैव बद-लता रहा।

उन तीनों के पड़ोस छोड़ देने पर पड़ोस के लोग कुतूहल में थे।

एक ने कहा—वे सब आवारा थे!

दूसरे ने कहा—सब बहुरूपिया थे!

तीसरे ने कहा—वे सब कुछ सनकी भी थे!

पता नहीं, अब आप क्या कहेंगे?

कहानी लेखक

ये बादल आज कितने नीरस मालूम पड़ते हैं। आज इन्हें देखकर तरस आता है—हृदय में धड़कन होने लगती है—दम घुटने लगता है, और कुछ देर रोने की इच्छा होती है।

मैंने देखा, इतना कहते कहते सचमुच उसकी आँखें डबडबा आईं—मुँह पर एक पीली रेखा दौड़ गई। वह चुप हो गया। मैं उसकी तरफ ध्यान से देखने लगा। वह मेरा मित्र था। उससे मेरी खूब पटती थी।

वह, विचारों की समाधि से अलग होते हुए, चौकन्ना होकर कहने लगा—क्या कहा? कहानी लेखक! नहीं भाई, मैं कहानी लेखक नहीं हो सकता। मैं स्वयं कहानी हूँ। मेरी कहानी में प्रलय की भीषण ज्वाला है, जिसमें मैं स्वयं जल रहा हूँ। उसे दूसरा कौन सुनेगा? सुनकर वह भी जलेगा। इससे लाभ? संसार में सुख का उन्माद रोग फैला है। दवा करने से वह बढ़ता ही जाता है। ये मंद मंद शीतल पवन, वर्षा के मृदुल झकोरे और काले काले बादल उसी रोग को एक बार फिर से जगा जगाकर थपकियाँ देते हैं। जानते हो, इनमें स्मृति की करुण पुकार छिपी हुई है! प्रतिवर्ष ये आकर आँसू बहा जाते हैं, सचेत कर जाते हैं।

× × × ×

मुझपर उसका बड़ा स्नेह था; किंतु उसके स्वभाव को मैं अभी तक समझ नहीं सकता था। उसने अपने जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन किया था। आज भी कुछ कहना चाहता था, यह मैं भली भाँति समझ गया। उसके भावों की तरल तरंगें उठ उठकर कहती थीं—आज हम और कुछ कहेंगी।

मैं ध्यान से उसकी तरफ देख रहा था। उसने बड़ी कातर वाणी में कहा—माँ कहती हैं, बेटा, विवाह करले, मुझसे अब काम नहीं होता, मेरे बाद तेरी कौन खबर लेगा। किंतु मेरे हृदय की व्यथा को वह क्या समझेंगी! अगर समझती भी हैं तो अपने बाद मुझे भी सांसारिक बंधन में बाँधकर

जाना चाहती हैं। नारी हृदय है, कोमल है, स्वच्छ है। वह मुझे हरा भरा देखना चाहती हैं; किंतु मेरे भाग्य में ही न था, अब क्या होगा! जानते हो, आकाश की गड़गड़ाहट कुछ संदेश कह जाती है। उसे मैं समझ नहीं सकता। सरला का छाया चित्र एकबार बिजली की चमक के साथ दिखलाई देकर लुप्त हो जाता है। आह, बड़ा अभागा हूँ!

इतना कहकर वह आकाश की ओर उन्मत्त दृष्टि से देखने लगा। उसकी सूरत डरावनी सी हो गई। वह पागल की तरह फिर कहने लगा—इन्हीं हाथों से अपने पिता की चिता में आग लगा चुका हूँ—अपने नन्हें से बच्चे के शव को ⋯⋯क्या वह दृश्य भूलेगा⋯⋯सरला की गोद में से छीनकर गंगा में बहा आया! वह विलाप करती थी, चीत्कार करती थी, और मैं कठोर हृदय से सब देखता ही रहा! मैं उसे भूलने की चेष्टा करने लगा। किंतु वह उसे न भूल सकी। वह रसोई घर में भोजन बनाते समय भी रोया करती थी। मैं उसे बहुत समझाता; किंतु उसकी आँखें दो बूँद आँसू बहाकर ही इसका उत्तर देती थीं। उसकी अवस्था दिन दिन खराब होने लगी। वह बीमार ही रहने लगी। मैं उसे बहलाने की बड़ी चेष्टा करता; किंतु सफल न होता। एकदिन उसने कहा—देखो, मेरा लाल मुझे बुला रहा है, वह मुझसे अलग नहीं हो सकता, मैं जाऊँगी। बस, रोग असाध्य हो चला। कई दिनों बाद, इन्हीं हाथों उसकी भी चिता बनाई! उसपर उसके शव को अनंतकाल के लिए सुलाया, और इन्हीं हाथों से उसमें आग लगाया—घी और राल डाल डालकर उसे धधकाया! इन्हीं हाथों से कभी उसके बँधे हुए केशों में फूलों की माला सजाता था, प्यार से उसके गुलाबी कपोलों पर थपकियाँ देता था और उसका मुखचंद्र देखता ही रह जाता था। किंतु नहीं वे दिन चले गये थे! अब ये ही हाथ उसकी कपाल क्रिया के लिए प्रस्तुत हो गये! उसदिन भी बादल आकर गरज उठे थे—मेरी इस दशा को देखकर चिता पर अविरल गति से आँसू बहा रहे थे। उस समय मैं जीवन के रहस्यों पर विचार कर रहा था। चिता की लपटों में जैसे उसकी आत्मा छिपी हुई कहती—नहीं, मुझे न छेड़ो, जाने दो। हाय! इस घटना को भी कई वर्ष हो गये। ध्यान आने पर मालूम पड़ता है, अभी कल की घटना है। तब से मैं यही विचार करता हूँ—क्या करूँ। केवल ये ही प्रश्नवाचक दो शब्द बार बार मर्मस्थल पर अंकित हो जाते हैं।

उसका यह रोमांचकारी वर्णन सुनकर स्वयं मैं भी कुछ देर के लिए

दुखी हो रहा था। उसकी वाणी में दर्द था। बातों को बदलने और उसे बहलाने के लिए मैंने कहा—तुम्हारी कहानी बहुत कम लोग पसंद करेंगे। कारण, वह सुखांत नहीं है और प्लाट में भी कौतूहल नहीं है।

उसने कहा—रहने दो, मुझे माफ करो; तुम जाओ, मैं कुछ देर के लिए एकांत चाहता हूँ। किसी का दिल जले, किसी को कहानी सूझे!

मैं उसे छोड़कर घर में चला गया। उसकी वृद्धा माँ रसोई बना रही थी। मैंने उन्हें प्रणाम किया! उन्होंने मुझे आशीर्वाद देते हुए मेरे बैठने के लिए एक पटरा रख दिया। मैं बैठ गया।

रसोई घर में बर्तन भी नहीं दिखाई देते थे। एक मैली सी धोती पहने—जो कई स्थान पर फटी और सिली हुई थी—वह भोजन बना रही थीं। मैंने पूछा—माँ, क्या बना रही हो?

उन्होंने कहा—खिचड़ी बना रही हूँ; किसी तरह दिन कट रहा है बेटा। घर का सब सामान बिक चुका है, अब कुछ नहीं बचा है—यही एक टूटा मकान बाक़ी है।

मैं चुप था। कारण, मैं उनकी आर्थिक स्थिति को जानता था। आय की कोई व्यवस्था न थी। खर्च-ही-खर्च था।

उन्होंने एक आह भरते हुए फिर कहा—रामेश्वर मेरे कहने में नहीं है। कुछ करता नहीं। दिन रात उदास घर में बैठा रहता है। इस तरह कितने दिन और कटेंगे? उसका कोमल हृदय है, इसलिए मैं कुछ कहती नहीं। कई बार समझाया कि बेटा, जो बातें बीत चुकी हैं, उन्हें याद करने से क्या लाभ। संसार का यही नियम है। यहाँ रहकर उसी के अनुसार कार्य करना मनुष्यता है। किंतु उसकी समझ में कुछ नहीं आता। अधिक कुछ कहती हूँ, तो रो देता है।

मैं कुछ देर सुनता रहा। इसके बाद, उस दिन मैं चला आया। दूसरे फिर गया। मेरा मित्र रामेश्वर पुस्तक पढ़ रहा था। उसे अध्ययन का का व्यसन था पहली बार पुस्तकालय में ही मेरी उसकी भेंट हुई थी, उसी दिन परिचय हुआ था। तब से घनिष्टता बढ़ती ही गई। अब उससे मेरी पूरी अभिन्नता है।

मैंने कहा—रामेश्वर कल की तुम्हारी कहानी ने रात भर मुझे सोने न दिया। मैं उसी पर विचार करता रहा।

उसने मुस्कुराते हुए पूछा, क्या विचार करते थे ?

मैंने कहा—यही कि अभ्यास करने पर तुम सफल कहानी लेखक होगे।

अनमना होकर उसने कहा—तुम पागल हो मैं क्या कहानी लिखूंगा।

मैंने कहा—नहीं रामेश्वर, मेरे अनुरोध से तुम कल वाली घटना पर एक कहानी लिख डालो। यह मुझे अत्यंत प्रिय है।

उसने कहा—मेरी भाषा में जोर नहीं है। मैं अपने भावों को व्यक्त नहीं कर सकता।

मैं कहा—तुम्हारे हृदय से निकले हुए भाव स्वयं अपनी भाषा बना लेंगे। तुम्हें मेरी शपथ, वह कहानी लिख डालो।

(२)

कई दिन बीत गये। मैं कई कार्यों में व्यस्त था; रामेश्वर से मिल न सका। एक दिन मैंने बरामदे में से देखा, वही मुझे पुकार रहा है। मैंने ऊपर से ही कहा—अभी आया भाई, नीचे के कमरे में बैठ जाओ।

मैंने देखा, उसके हाथ में कागज के कुछ टुकड़े थे। मुझे देखते ही उसने कहा—देखो, मैंने कहानी लिख डाली है।

मैं उसे कमरे में बैठ कर पढ़ने लगा। वास्तव में बड़ी खूबी के साथ उसने कहानी लिखी थी। उसी दिन मैंने कहानी को अपने एक परिचित संपादक के पास भेज दिया।

कई दिन बाद उत्तर आया। संपादक जी कहानी पर मुग्ध हो गये थे। उन्होंने अनेक धन्यवाद दिया था। मैंने रामेश्वर के हाथ में पत्र दे दिया। उसके उत्साह को बढ़ाते हुए और भी कहानियाँ लिखने के लिए कहा।

मैं जानता था कि कहानी लिखने का चस्का बड़ा विचित्र होता है। यह संसार के किसी नशे से कम नहीं है। किंतु बात केवल इतना ही होती है कि इसमें स्वाभाविक अभिमान उत्पन्न होने लगता है।

एक मास बाद वह कहानी प्रकाशित हो गई। उसे पढ़कर सचमुच रामेश्वर के हृदय में गुदगुदी हुई। फिर तो वह बड़ी कुशलता से और भी

कहानियाँ लिखने लगा। धीरे धीरे वह सिद्धहस्थ हो गया। उसे कहानियों पर पुरस्कार भी मिलने लगे। उसका जीवन भी सुव्यवस्थित हो चला।

(३)

कई मास बाद, मेरे परिचित संपादक मेरे यहाँ आये। मुझसे मिल कर उन्होंने रामेश्वर की कहानियों की बड़ी प्रशंसी की। कहने लगे—रामेश्वरजी की कहानियाँ मेरी पत्रिका के पाठक बड़े चाव से पढ़ते हैं। उनकी प्रशंसा में प्रति मास अनेक पत्र आते हैं। ग्राहक संख्या भी बढ़ रही है। उनकी कहानियों में जादू है।

मेरे साथ ही वह रामेश्वर के घर पर उससे मिलने के लिए गये। वह बैठा कोई 'प्लाट' बना रहा था—देखकर मैं समझ गया। मैंने उसे संपादकजी का परिचय दिया।

हम लोग वहीं चारपाई पर बैठ गये। रामेश्वर नम्रतापूर्वक देख रहा था। वह चुप था। संपादकजी बोले—रामेश्वर बाबू, आप की कहानियों का मैं भक्त हूँ। मुझे तो वह कहानी बहुत पसंद है, जिसमें आपने एक माता के पुत्र-शोक का वर्णन करते हुए लिखा था—'मेरा लाल! तू भूखा होगा, तुझसे कौन पूछता होगा कि तुझे भूख लगी है! मेरे लाल, तू अपनी माँ के सिवा कहा सोता होगा! तुझे थपकियाँ दे देकर कहानियाँ कौन सुनाता होगा? आह, मेरा लाल! तू कहाँ गया!'—आप करुण कहानी लिखने में बड़े निपुण हैं। उसी दिन मेरा विश्वास हो गया कि आप इस कला के मर्मज्ञ हैं। बधाई!

मैं रामेश्वर की तरफ देखकर मुस्करा रहा था। न जाने क्यों, आज वह चुप था।

संपादकजी ने फिर कहा—कहिये, अब मैं आप की कहानियों का क्या पुरस्कार दूँ?

उसने कहा—मैं अपने हृदय के रक्त से कहानियाँ लिखता हूँ। उनका मूल्य क्या होगा?

———

खोज

निर्जन बन था ! और बीहड़ पथ !!

स्वर्णमयी संध्या आकाश को चूमकर चली गई थी। इस समय तरंगित नीलांबर में उज्ज्वल तारे निर्निमेष पलकों से सुधांशु की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर उनका कुछ पता नहीं।

सुनसान अँधेरी रात थी। मैं रह रहकर इधर उधर देखने लगता और हृदय चिल्ला उठता—अभी तो बहुत दूर जाना है। निदान मैं थककर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। क्षणभर विश्राम लेकर फिर चल पड़ा। सैकड़ों जुगनू आशा की स्वर्णज्योति से चमककर मुझे प्रकाश दिखलाने लगे। चारों तरफ झनझन झनझन हो रहा था। मेरे पैर काँपते काँपते जमीन पर पड़ते थे; मेरे भय की सीमा नहीं थी।

यह क्या ! मैं जिस मार्ग से आ रहा था, वह एकाएक भूल गया, लौटना कठिन हो गया। पूजा की सामग्री मेरे हाथों में थीं, उसे सँभाले हुए धीरे धीरे आगे ही बढ़ चला।

अचानक किसी ने पुकारा—इस भीषण रजनी में अकेले कहाँ ?

मैंने फिरकर देखा, वह मेरे ही जैसा कोई व्यक्ति था, पर उसके मुख पर शांति मुस्करा रही थी।

मैंने कहा—कई वर्ष हुए, जब मैं भी पहली बार इधर ही आया था, तो मार्ग भूल गया था।

तो क्या आपको वह निर्दिष्ट स्थान प्राप्त हो गया ?

हाँ, बड़ी साधना और आराधना के बाद।

सुना है, वहाँ पहुँच जाने पर मनोकामना पूर्ण हो जाती है !

हाँ।

तो मेरी भी मनोकामना पूरी होगी ? मैंने तो उपासना में बहुत समय बिताया है।

जाओ, वहाँ पहुँचने पर ही तुम्हारी उपासना का निर्णय होगा।
अभी कितनी दूर जाना है ?
थोड़ी ही दूर, इस नदी के उस पार।

बातों से हृदय को साहस हुआ, पाँव जल्दी जल्दी उठने लगे। मैं वहाँ पहुँच ही तो गया। उस तोरण, कलस और बन्दनवार से सुशोभित द्वार पर लिखा हुआ था—प्रेम मंदिर।

मेरे पहुँचते ही द्वार खुला; और मैं बेधड़क भीतर चला गया। पूजा समाप्त कर मैंने प्रेमदेव को साष्टांग प्रणाम किया।

उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—तुम्हें क्या चाहिए ?
मैंने कहा—नाथ, केवल एक भिक्षा।

उन्होंने कहा—पहले तुम इस मंदिर के सब पुजारियों से भेंट कर लो, फिर तुम जैसा चाहोगे वैसा ही प्रबंध होगा।

प्रेमपुजारियों के दर्शन हुए। कुछ लोग ध्यान में निमग्न थे, कुछ आहें भर भरकर आँसू बहा रहे थे। सभी का तन जर्जर और मुख पीला था। आँखों में विफलता बरस रही थी।

उन लोगों को दिखाकर प्रेमदेव ने पूछा—क्या इस दल में मिलना चाहते हो ?

मैंने कहा—यदि शांति मिले, यदि प्रियतम का दर्शन मिले तो...

उन्होंने कहा—तुम अपने प्रियतम को पाकर सुखी न हो सकोगे। फिर लौटकर वापस आओगे; किंतु यहाँ का नियम है कि दूसरी बार वरदान नहीं मिलता। खूब विचार कर लो।

मैंने कातर कंठ से कहा—स्वामिन्, कोई ऐसा वरदान दीजिए, जिससे हृदय को भीषण ज्वाला में पड़कर जलना न पड़े।

उन्होंने कहा—अच्छा, तो तुम जिसे चाहते हो, उसे पाने की अभिलाषा कभी मत करना, नहीं तो सब सुख चला जायगा। केवल आराधना करो, इसी में अक्षय सुख है।
मैंने कहा—जो आज्ञा।

× × × ×

उस दिन ब्राह्म मुहूर्त में मैं नदी तट पर बैठा हुआ प्रेमोपासना कर रहा था। उस समय कनक-किरीटिनी-उषा भी शायद किसी की आराधना में लगी थी।

दूर से अचानक किसी के आने की आहट मिली। फिरकर देखा। देखता ही रहा। स्तब्ध हो गया। अवाक् हो गया। चकित हो गया।

एक कोकिल कंठी ने कहा—प्रियतम, तुम्हारी विकलता मुझे खींच लाई है। मैं तुम्हारी हूँ, मुझे स्वीकार करो।

मैंने कहा—प्रिये, मैं तुम्हें अब नहीं चाहता। तुमने व्यर्थ कष्ट किया—विलंब—अति विलंब!

फिर क्या मेरा ध्यान नहीं करते?

करता हूँ; किंतु तुम्हें पाने की अभिलाषा पूरी हो गई, तुम्हें पा चुका। तुम लौट जाओ। क्षमा करो।

सुंदरी ने खिलखिलाकर कहा—तुम पागल तो नहीं हो गए हो?

तो क्या तुम इस पागलपन को भी छीन लेना चाहती हो?

अच्छा, मैं फिर आऊँगी, तब तक तुम इस पर विचार कर लेना···

उस दिन से मेरे ध्यान का रूप बदल गया। अब मैं यही सोचता हूँ कि वह आराधना की मूर्ति अब कब आवेगी!

गायक

संगीतज्ञों की सभा थी। बड़े बड़े संगीत कला के गुणी लोग एकत्र हुए थे। फूलों की माला, तोरण और बंदनवार से सभा का मंडप सुशोभित हो रहा था। उस दिन सबमें उत्साह था।

सबने बड़ी निपुणता से अपना अपना कौशल दिखलाया। गुणियों की प्रतिद्वंद्विता चल रही थी।

आचार्य अपनी बीणा बजाने लगे। सब मंत्र मुग्ध हो गए। प्रकृति शांत हो गई। पत्तों की खड़खड़ाहट बंद हो गई थी। वायु की गति शिथिल हो रही थी। सबने प्रशंसा की। वाह वाह की ध्वनि से सभा गूँज उठी। आचार्य हँस पड़े, विजय की प्रसन्नता थी।

*　　　*　　　*　　　*

सबके बाद वह उठा। वह गायक था। वाद्ययंत्रों की स्वर लहरियों ने उसे उत्तेजित कर दिया। वह सँभल न सका। कुछ गुनगुनाने लगा। कुछ देर बाद उसने करुण कोमल स्वर से एक तान ली। उसकी तान में दर्द था।

आचार्य ध्यान से देखने लगे। बीणा बजाना बंद कर दिया। आगंतुक ने बिना आज्ञा के यह धृष्टता की थी। आचार्य ने द्वारपाल की ओर उसके शासन के लिये संकेत किया। किंतु गायक की तान ने सबको चकित कर दिया। सब बेसुध हो गए। आचार्य ने वीणा फेंकते हुए कहा—यह क्या?

ऊँचे मंच पर राजा के पास ही राजकुमारी बैठी थी। अपनी मुक्तावली गायक की ओर फेंकते हुए उसने कहा—बहुत सुंदर गाया!

अब तो आचार्य प्रकृतिस्थ हो गए। उनके मुँह से निकल पड़ा—तुम श्रेष्ठ कवि हो, तुम सच्चे गायक हो, और तुम्हीं संगीत के आचार्य हो!

———

गुंडा

नगर उसके अत्याचार के आतंक से भयभीत हो उठा था। मार्ग चलते जो सामने उपयुक्त पात्र दिखाई पड़ता, वही उसकी आवश्यकता का आखेट बन जाता। उसका लंबा छरहरा बदन केवल विकटता का व्यक्तित्व प्रकट करता था। उसके कार्यों से परिचित लोग दूर हट कर आपस में उसकी विशेषताओं का वर्णन करते। नगर में यह विख्यात था कि कितनी हत्याओं और अपराधों के पश्चात् भी कोई उसका कुछ भी न कर सका।

वह पुलिस के मस्तक पर कलंक का टीका बना था। अधिकारियों का आदेश था कि किसी तरह भी वह न्यायालय के कटघरे में उपस्थित किया जाय।

पुलिस के पूर्ण प्रयत्न को सफलता मिली। उस दिन जब कोई उसकी जमानत करने वाला नहीं मिला तब उसका गुंडा मन चंचल हो उठा। ठीक उसी समय काली चादर ओढ़कर कोई स्त्री आई और उसने रुपयों की गठरी नगद जमानत के रूप में रखी। अभियुक्त से उसकी आँखें मिलीं वह खिल उठा। सब आश्चर्यचकित हो गये।

आजन्म कारावास का दंड पाकर वह प्रायः जेल के नियमों में बाधा डालता था। जेल में पर्याप्त पूजा होने पर भी उसकी अकड़ न गई। जेल जीवन का सबसे कष्टमय कारण उसके लिए मादक वस्तुओं का अभाव था। एक दिन पता नहीं कैसे वह जेल की दीवारों को पार कर वेश्याओं की हाट में पहुँचा। उसने निश्चित स्थान पर जाकर देखा द्वार बंद था। पान वाले से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि वह अपने किसी प्रेमी की प्रसन्नता के लिए द्वार बंद रखती है।

उसका मस्तक लाल हो उठा। उसकी आँखें भयानकता की सूचना देने लगीं। वह कूद कर आगे बढ़ा। उसने द्वार अपने पैरों से तोड़ डाला। प्रेमी प्रेमिका को एक साथ देख कर उसका हाथ नेपाली भुजाली पर पड़ा। उसने कुछ पूछना उचित न समझा। उसके एक वार में ही कार्य समाप्त हो गया। वहाँ से निकलकर एक क्षण में ही वह अदृश्य हो गया।

उस दिन से फिर कभी वह बनारस की गलियों में दिखलाई नहीं पड़ा, लेकिन उसकी कथा आजतक प्रचलित है।

गूँगे का गुड़

संसार में उत्पन्न होकर जो मनुष्य अधिक धन व्यय करता है, उसे खर्चीला और जो मितव्ययी होता है उसे कंजूस के नाम से संबोधित किया जाता है। दोनों ही स्थिति में टीका टिप्पणियों से किसी का छुटकारा नहीं। कृष्णानंद के संबंध में भी दफ्तर में यह बात सभी को विदित थी कि वह पान, सिगरेट अथवा किसी भी मादक वस्तु का व्यवहार नहीं करते। उनका कोट और टोपी कितने ही शीतकाल की आयु समाप्त करके भी बदलने के योग्य न हुए। यही कारण था कि कुछ लोग उन्हें शुष्क और नीरस समझते थे।

इन सब विशेषताओं के भीतर रहस्य था। कृष्णानंद बाह्य आडंबर के लिये शून्य थे। अपनी रहन सहन के लिये लज्जित होना उनके स्वभाव के विपरीत था। मासिक वेतन पत्नी को सहेज कर वह निश्चिंत हो जाते थे। पारिवारिक प्रबंध से जैसे उनका कोई संबंध ही न रहता। प्रतिदिन नियमित रूप से दफ्तर जाना और संध्या समय लौट आना—यही उनका कार्यक्रम था।

कृष्णानंद कभी पत्नी से मतभेद होने पर अथवा कभी मितव्ययता का संपूर्ण चित्र देखकर झुँझला उठते थे; किंतु पत्नी बड़े आवेग में जब कुछ कहती तो वह मौन हो खड़े रह जाते। कन्या के विवाह का एकमात्र श्रेय इसी मितव्ययता को ही था और पुत्र के उज्ज्वल भविष्य का भाग्य भी इसी में अन्तर्निहित था। कृष्णानंद इस सत्य में विश्वास करते थे।

बीसवीं शताब्दी में जैसे मशीन की भाँति मनुष्य चलता है वैसे ही दिन और रात भी अपना कार्यक्रम पूरा करते रहते हैं।

कृष्णानंद के जीवन में एक भूकंप जैसी घटना टूट पड़ी। नियति का चक्र था। इसी ढलती अवस्था में पुत्र शोक के कारण कृष्णानंद का हृदय टूट गया, कमर झुक गई और आँखों का प्रकाश मंद पड़ गया। मशीन की खट खट बंद हुई। जीवन का उद्देश्य शिथिल पड़ गया। शांत वातावरण ने गंभीरता का स्वरूप धारण किया।

निराशा का बोझ लादे जब संध्या समय कृष्णानंद घर आते तो पत्नी का विलाप उन्हें और भी व्यग्र बना देता। वह चुपचाप अपने कमरे में पड़े रहते। अनेकों बार समझाने का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। कृष्णानंद ने सांत्वना देते हुए पत्नी से कहा था—भगवान की जैसी इच्छा ! मनुष्य अपना कार्य पूरा करता है. किंतु विधाता के निर्णय में कौन बाधा दे सकता है।

पड़ोस, परिचित और दफ्तर में सभी के प्रश्नों का उत्तर कृष्णानंद हृदय संहाल कर देते, किंतु महीनों बाद रात में अपने पलंग पर पड़े हुए उनकी दृढ़ता का बाँध टूट गया। अश्रु की धारा वेग से बहने लगी।

पत्नी ने सिसकियों के मध्य में आकर पूछा—यह क्या ?

तब उनका अधीर मन केवल इतना ही कह सका—अब दफ्तर जाने का साहस नहीं रहा। नौकरी पहाड़ हो गई है। कुछ अच्छा नहीं लगता।

(२)

डाक्टरी परीक्षा और अधिकारियों के पास प्रार्थनापत्र में महीनों व्यतीत होने के पश्चात् कृष्णानंद को नौकरी से अवकाश मिला। पेंशन स्वीकृत हुई। पत्नी के आग्रह पर तीर्थयात्रा का निश्चय हुआ। मथुरा, वृंदावन के मंदिरों में दर्शन पूजा में कुछ दिन कटे। मंदिरों की आरती, भगवान की उपासना में शंखध्वनि, घड़ी घंटा का आयोजन कृष्णानंद को वैसा ही मालूम पड़ता जैसे पानीकल, बिजलीघर अथवा कारखानों का भोंपू निश्चित समय की सूचना देते हुए कर्मचारियों को कार्य में लगने और अलग होने का संकेत देता है। मनुष्यों ने भगवान को भी नियंत्रित किया है। ठीक समय पर स्नान, पूजा, आरती और शयन का क्रम बनाकर सब कार्यों को नियमित बना दिया गया है।

पंडा, पुजारी और भिखारियों की जटिल समस्या के संमुख कृष्णानंद नतमस्तक होकर देखते ही रह जाते। ऐसे अवसर पर उनकी पत्नी के सहयोग से मुक्ति मिलती। जो जितना देगा, उसे उतना ही फल मिलेगा, यह पहेली बड़ी सरल प्रतीत होती है।

संध्या समय कृष्णानंद अकेले यमुना के तट पर बैठे हुए कछुओं को चना खिलाते। पता नहीं क्यों मनुष्यों से अधिक उन्हें पशु, पक्षी और जंतुओं के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती।

जब वह मुट्ठी भर चना फेंक कर, कछुओं की गर्दन बाहर निकली देखते तो मन-ही-मन मनुष्यों के स्वार्थ की तुलना करने लगते। ठीक ऐसा ही तो मानव स्वभाव भी है, तनिक से स्वार्थ के नाम पर मनुष्य कितना विनम्र हो जाता है, किंतु क्षण भर में ही कछुओं के मुख के समान वह गुप्त हो जाता है।

दो सप्ताह बीत जाने पर एकदिन कृष्णानंद की पत्नी ने कहा—इतने मंदिरों और महात्माओं का दर्शन करने पर भी मन शांत न हुआ। कोई नहीं बतला सका कि मनुष्य कहाँ से आता है और कहाँ और क्यों चला जाता है? मरने पर उसका क्या होता है? यही समझने के लिए इतनी दूर आई थी। चलो अब यहाँ से भी चला जाय।

कृष्णानंद कौतूहल से पत्नी का मुख देखने लगे। उन्होंने कहा—प्रत्येक धर्म और दर्शन अपनी व्याख्या अपने तर्कों के अनुसार करते हैं। मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, इसके लिए अनेकों उपदेश धर्मग्रंथों में मिलते हैं, लेकिन शरीरांत के बाद क्या होता है, इसको कौन बतला सकता है?

पत्नी ने कहा—ज्ञानियों ने मार्ग बतलाया है, किंतु उस पर विश्वास नहीं होता।

कृष्णानंद ने अपने मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा—मुख्य बात यह है कि जिसका यहाँ अधिक आदर होता है उसका वहाँ भी होता है। असमय में ही निमंत्रण पाकर जो चला जाता है, वही बंधनमुक्त होता है। उसकी बन जाती है। लेकिन जिन्हें समुद्र की लहरों जैसा जीवन और आकाश पर फैली जैसी आकांक्षाओं का क्षेत्र दिखाई पड़ता है। वह यहीं रहकर अंतकाल तक यातनाओं की खाई खोदते हैं।

उसी समय पंडा ने आकर कहा—बाबूजी गाड़ी का समय हो रहा है।

(३)

कृष्णानंद का अधिकांश समय धार्मिक ग्रंथों में व्यतीत होता। पत्नी के अनुरोध पर उन्होंने काशी में शेष जीवन काटना निश्चित कर लिया था। प्रातःकाल गंगास्नान और विश्वनाथ का दर्शन करके वह संतुष्ट रहते। वह

संध्या समय कथा सुनने जाते। उन दिनों एक त्यागी महात्मा की चर्चा सभी जगह चल रही थी। कृष्णानंद भी प्रतिदिन वहाँ जाते।

धार्मिक कथा और पुराणों का प्रभाव जनता के ज्ञान बढ़ाने में कितना सहायक होता है, यह तो कृष्णानंद को विदित न हुआ, किंतु कथा कहनेवाले महात्मा के व्यक्तित्व और त्याग की चर्चा सर्वत्र ही भक्तों द्वारा सुनाई पड़ती थी। महात्माजी एक ही वस्त्र धारण करते हैं, कोई कुछ भी रख जाय, वह उसे स्पर्श भी नहीं करते इत्यादि बातें श्रोताओं के मंडल में विख्यात थीं।

उस दिन कथा बंद थी। कृष्णानंद घाट पर बैठे थे। उस पार की घनी हरियाली जैसे उन्हें अपनी ओर खींच रही थी। वह एक नौका पर बैठकर उस पार गये। सिकता पर अपना पद चिन्ह छोड़ते हुए कृष्णानंद ने देखा—सामने घाटों की विशाल अट्टालिकाएँ खड़ी हैं। गंगा की मुक्तधारा में बहने वाला पवन कभी दौड़ जाता। दिनकर अस्ताचल पर पहुँच चुके थे। महाश्मशान पर चिता धधक रही थी।

कृष्णानंद का मन उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगे—उस लोक में जाकर मेरा पुत्र विवश हो गया है, अन्यथा वह जैसे प्रतिदिन की पढ़ाई और खेलकूद की बातें बतलाता था, वैसे वहाँ की बातें वह मुझसे क्यों गुप्त रखता ?

सृष्टिकर्ता ने अपने इस रहस्यमय चित्र को प्रकृति के अवगुंठन से ढँक रखा था! समस्त विश्व का आलोक उड़ेल कर भी वहाँ प्रकाश की छाया न थी।

कृष्णानंद की आँखों के अश्रुकण सिकता में अपना अस्तित्व मिटा रहे थे। वे एक झोपड़ी के सामने आकर खड़े हुए। इस निर्जन कानन में अकेले रहनेवाले पुरुष की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ।

किसी आगंतुक की आहट पाकर झोपड़ी के तपस्वी ने मधुरता से कहा—खड़े क्यों हो, बैठ जाओ।

कृष्णानंद ने आश्चर्य से देखा, वहाँ जलती अग्नि के अतिरिक्त और कुछ भी न था। कृष्णानंद धूनी के पास ही बैठे। कुछ देर मौन रहने के बाद कृष्णानंद ने पूछा—तपस्वी मेरा एक प्रश्न है!

'क्या ?'

इतने दिनों भटकने पर भी भगवान की महिमा का वास्तविक स्वरूप मेरी आँखों के संमुख कोई न रख सका। मैं मार्गविहीन भटक रहा हूँ।

तपस्वी ने कृष्णानंद की मलिन आकृति देखते हुए कहा—भाई, भगवान का स्वरूप तो भक्तों के अधीन है। लेकिन सुनो, वह तो गूँगे का गुड़ है। जिस तरह गूँगा गुड़ का स्वाद नहीं बतला सकता वैसे ही उसका स्वरूप और आराधना की प्रणाली भी रहस्यमयी है।

उस दिन से फिर कृष्णानंद ने यह प्रश्न किसी से नहीं पूछा।

घृणा का देवता

कभी तुम प्यार के आवेश में आकर बहुत सरल बन जाते हो और कभी जंगली जंतु की तरह आक्रमण करते हो? तुम्हारे इस प्यार के रहस्य को समझना कठिन हो जाता है।—कहते कहते वह उसकी मुखाकृति देखने लगी।

उसने उसकी आँखों से आँखें मिलाकर कहा—मनुष्य के हृदय में किस समय क्या रहता है, इसे कौन जानता है? मन उस सूखे पत्ते की तरह है, जो पवन की चंचल गति में पड़कर कब जाने कहाँ चला जाता है। रो-रोकर सिसकियाँ भरने वाले दिन मौन होकर किसकी आराधना करते हैं, यह कौन बता सकता है? आज एक साँस में जिस सौंदर्य मदिरा को पी जाने की अभिलाषा होती है, कल उसी में कटुता दिखलाई पड़ती है। वासना पैसों से पाली जाती है। जिसे लोग प्रेम कहते हैं, वह चमाचम के आवरण में ढँक जाता है। काल्पनिक जगत में विचरण करनेवाला भावुक, वास्तविक जगत् का खिलौना बन जाता है। दुनियाँ की आँखें मुझे देखकर मेरा तिरस्कार करें, यही मेरी अभिलाषा है।

उस दिन शरद्पूर्णिमा थी।

असंख्य मानव जाति के हृदयों को निचोड़कर चंद्रमा प्रकाश उँड़ेल रहा था। चाँदनी उसके समीप बैठी हुई थी। उसकी नस-नस में यौवन का उन्माद भरा हुआ था। मनुष्य अपनी आकांक्षाओं की गठरी बनाकर जीवन भर निराशा के पथ पर उसे ढोता रहता है। इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, वासना निर्जीव हो जाती है; लेकिन यह लाखों वर्ष की बूढ़ी चाँदनी आज भी कितने अलहड़पन से मुस्कुराती हुई, प्रश्न पूछ रही है।

उसने खिलखिलाकर उससे पूछा—देखती हूँ, तुम कहीं पागल न हो जाओ।

उसने उत्तर दिया—पागल होने पर भी यदि शांति मिलती।

* * * *

उसने आकाश की ओर देखा। चंद्रमा के पास एक सफेद बादल का टुकड़ा मँडरा रहा था! चाँदनी ने उसकी कालिमा को धोकर उसे उज्ज्वल बना दिया था।

वह एकटक देखने लगा। किसी समय अपने बचपन के दिनों में इसने इसी तरह के बादल के टुकड़ों को पशु, पत्ती, पहाड़ आदि की आकृति में बनते बिगड़ते देखा था। आज केवल एक टुकड़े में वह ऐश्वर्य की रंग विरंगी पुतलियों की छवि देख रहा था। चाँदनी परदा हटा रही थी। प्रकृति गंभीरता का आकार बनाए खड़ी थी।

प्रथम किरणें जिस समय आकाश के हृदय पर दौड़ी थीं, उस समय कौन आया था? आज युगों की गोद में बैठनेवाली स्मृति अपनी तालिका दिखा रही थी।

एक के बाद दूसरा, इस तरह कितने ही चित्र सामने आए और विलीन हो गए। रात्रि अपना तीन खंड समाप्त कर चुकी थी। सफेद बादल के टुकड़े में घृणा की एक विशाल मूर्ति अपने हाथों से सबको नष्ट भ्रष्ट करके अटल खड़ी थी।

वह ध्यान से देखने लगा। चाँदनी सन्नाटे की चादर ओढ़कर विदा की तैयारी कर रही थी। कुछ देर में यह समस्त प्रकृति का खेल छिन्न भिन्न हो जायगा। प्रत्येक चण संसार की नश्वरता की ओर संकेत कर रहा था। कलह और द्वंद्व का साम्राज्य अपने अस्तित्व को स्थायी बनाने की चेष्टा कर रहा था।

वह हँसा। उस हँसी में भयानकता की आत्मा पुकार रही थी। उसने देखा—रात यों ही जागते ही कट गई है। इस तरह कितने दिन व्यतीत हुए हैं। अब जीवन का कोई कार्यक्रम नहीं रहा। घृणा की ज्वाला जल रही थी। मनुष्य की चिता जलकर राख हो जाती है; लेकिन यह अनंत काल तक जलती रहेगी। विश्वासघात, कुटिलता, दूसरे को हाहाकार के पंजे में जकड़ देने की कामना यह सब कैसी अद्भुत पहेलियाँ हैं। इनका मनुष्य ने स्वयं निर्माण किया है अथवा विधाता की सृष्टि के साथ ही ये आये हैं?

प्रभात की लाली ऊपर उठी। चाँदनी शिथिल हो, निशाकर से बिदा लेकर विश्राम के लिए कहीं जा रही थी।

उसकी संपूर्ण कहानी सुनने के बाद भी चाँदनी निष्ठुरता के साथ खिसक गई।

सूर्य के प्रखर प्रकाश के साथ वह उठ बैठा। उसकी आँखें लाल थीं। उसने देखा, आकाश झुलसा हुआ था।

सब कुछ इसी तरह नष्ट करके विधाता का विचित्र खेल किस दिन विध्वंस होगा।

* * * *

दिन पर दिन उसका शरीर ढलता चला गया। मानवसमाज से घोर घृणा करते हुए, वह जैसे अपने को ही मिटा देने के लिए तुला हुआ था। बदले की प्रवृत्ति नहीं थी।

डाक्टरों का मत था कि क्षयी का पूर्ण आक्रमण उसके ऊपर हो चुका है। उसे अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करना होगा, अन्यथा उसका अंत बहुत शीघ्र आने वाला है। लेकिन उसे इसकी परवाह न थी।

एक दिन उसने निश्चय किया कि अब जीवन का शेष समय किसी पहाड़ पर व्यतीत करना ठीक होगा। नगर के कोलाहल की ध्वनि अनायास ही अपने बाहुपाश में बाँधना चाहती है। झूठी सहानुभूति में स्वार्थ की प्रतिमा अपना विकृत मुँह दिखा रही थी।

उसका दो मास पर्वत मालाओं के ऊपर व्यतीत हुआ। प्रकृति के मनोरम चित्रों में प्रतिदिन वह कुछ अन्वेषण करता।

यहाँ पर भी मनुष्यों ने उसका साथ नहीं छोड़ा। यह क्षयी का रोगी समस्त वायु मंडल दूषित कर रहा है, इसे यहाँ से निकाल देना होगा। सब सशंक होकर उसकी ओर देखते। वह दिन रात खाँसता रहता।

उस दिन दया की एक मूर्ति उसके सामने आई। उसने कहा—भाई यहाँ बहुत से लोग अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए आते हैं। तुम्हारा यह रोग उनके लिए घातक हो सकता है। अतएव कृपा करके यह स्थान छोड़ दो।

उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। संध्या समय वह घर से निकला एक पत्थर के टीले पर बैठ कर वह सोचने लगा। चारों तरफ पहाड़ घिरे हुए थे।

खाई से बादल निकल रहे थे। उसने देखा—पहाड़ की ऊँची रेखाएँ आसमान का अलिंगन कर रही थी। पश्चिमी कोनो में संध्या अपनी लालिमा एकत्रित कर रही थी।

वह तन्मय होकर देखने लगा। क्षण भर में खाँसी आई और उसके मुँह से रक्त की धारा निकली जिसे उदास संध्या अपने साथ लेकर न जाने कहाँ विलीन हो गई !

चिड़ियावाला

कोयल की बोली बोलो !

नहीं, पहले पपीहे की बोलो ।

नहीं, नहीं, भुजंगेवाली ।

बालकों का एक झुंड चिड़ियावाले को घेरे था । उसका नाम कोई नहीं जानता था । जिस मार्ग से वह चला जाता, खेलते हुए बालक दौड़ पड़ते—चिड़ियावाला ! अरे चिड़ियावाला !! वह देखो, आ रहा है ।

चिड़ियावाला हँस पड़ता, बालकगण उसके साथ हो लेते !

वह तरह तरह की चिड़ियों की बोली, बड़ी खूबी के साथ, बोलता था । इसीलिये, उसका नाम था—चिड़ियावाला ! बूढ़े कहते—मैं अपनी जवानी से, स्त्रियाँ कहतीं—मैं अपने विवाह के पश्चात् से, इस चिड़ियावाले को इसी तरह देखती हूँ । पड़ोस में कोलाहल मच जाता । सब उसके इस कौशल पर मुग्ध हो जाते ।

उसकी गुदडी का चिथड़ा खींचते हुए नटखट बालक ने कहा—सब बोली तो बोल चुके ! अब गदहे की बोली बोलो, बस फिर न कहेंगे ।

चाम के झोपड़े में आग लगी है—बाबा ! वह कैसे बोलेगा ? माँ जी से कुछ माँग लाओ, अब चलूँ ।—कहते हुए चिड़ियावाला अपनी गुदड़ी समेटने लगा ।

लड़के मार्ग रोककर खड़े हो गये । एक ने कहा—अच्छा भूत की सूरत दिखलाकर, तब—चले जाओ ।

चिड़ियावाले ने अपने हाथों से आँखों की पलकें उलट लीं, रुई की तरह सफेद बालों से मुँह ढक लिया और दाँत निकालते हुए भयानक आकृति बनाकर कहा—हो आः !

लड़के हँस उठे । खिड़की की चिक में से पैसे बरस पड़े । वह चलता बना ।

यही उसका व्यवसाय था, और यही—उस महाश्मशान की भीषण ज्वाला को धधकाने के लिये—कमाई थी ।

\+ + + +

नंदन बाबू की जमीन पर वह झोपड़ी बनाकर था। झोपड़ी के सामने गेंदा और गुलमेंहदी समय समय पर खिलती थी, जिसे देखकर वह प्रसन्न हो उठता था। उस पुराने पीपल के वृक्ष के नीचे उसकी झोपड़ी थी, संध्या समय जिसपर सैकड़ों पक्षी अपना बसेरा लेते थे।

नंदन बाबू ने, अपने किसी लाभ की आशा से, उसे वहाँ से निकाल दिया था। उनका लड़का सुशील रोज उसे मन ही मन खोज लिया करता; मगर बाबूजी के डर से कुछ न कहता।

एक दिन घूमते फिरते हुए चिड़ियावाला उसी झोपड़ी की जमीन को चुपचाप देख रहा था। सुशील ने आकर कहा—चिड़िया की कोई बोली बोलो।

चिड़ियावाले ने एक बार उसकी ओर देखा, फिर जमीन की ओर देखते हुए चल पड़ा।

उस दिन से वह चिड़ियावाला फिर वहाँ न दिखाई दिया।

(२)

समय के नंदन वन में कितने ही परिवर्तन हो गए।

उस दिन पक्षियों के मधुर कलरव से आकाश गूंज उठा। जाड़े का गुलाबी प्रभात था। कुएँ के सामने बरगद का वृक्ष था, थके हुए मुसाफिर का वहीं विश्राम गृह था। एक उजड़ी हुई झोपड़ी थी। वहीं, थका माँदा चिड़िया-वाला अपनी गुदड़ी पर पड़ा था।

प्रकृति सन्नाटे का राग अलाप रही थी। एक भटका हुआ पक्षी, रात भर बसेरा लेकर; उड़ा जा रहा था—बहुत दूर ! अपने भूले हुए पथ को खोज रहा था।

बड़ी करुण आह थी। एक दर्द भरी तान थी। किसी ने नहीं सुना। खून की एक उलटी हुई। कलेजा थामकर रह गया। किसी ने नहीं देखा।

किरणें अपना जाल बना रही थीं। प्रलय का वह भीषण लाल खूनी अंगार अपने विराट् रूप की ओर संकेत कर रहा था। जीवन कहानी एक पहेली बनकर स्वयं देख रही थी।

चित्रकार

चित्रकार बैठा था। कोई काम उसके हाथ में न था। वह दाने दाने के लिये तरसने की तैयारी कर रहा था; परंतु कलावंत था, उसे कुछ परवा न थी।

उसकी चटाई पर चित्र लेखन की सामग्री बिखरी थी। वह सोचता था—कोई तो आवेगा ही। हुआ भी ऐसा ही। एक सुंदरी स्त्री आई। उसने पूछा—घनश्याम चित्रकार तुम्हारा ही नाम है?

हाँ—कहकर चित्रकार उस रसभरी मेघमाला को देखने लगा।

क्या मेरा चित्र बना दोगे?

बन सकेगा?—मुझे तो आशा नहीं।

चेष्टा कर देखो। परंतु मैं बैठकर शबीह न लगवाऊँगी।

नहीं, उसकी तो कोई आवश्यकता नहीं। परंतु मैं ऐसा सुंदर चित्र बना सकूँगा या नहीं, मुझे तो संदेह है।

तुम बना सकोगे—कहकर सुंदरी ने मुस्करा दिया। एक पत्र दिया। कहा—बनाकर इसी पते से ले आना।

वह चली गई।

दरिद्र चित्रकार ने, जिसके पास खाने को भी न था, कुछ खर्च के लिये नहीं माँगा। वह चुपचाप कल्पना से क्षितिज पर सुंदरी का चित्र बनाने लगा।

× × × ×

स्वर्णमयी उषा के आगमन के साथ ही चित्रकार अपनी शय्या छोड़ देता। वह एकांत स्थान में बैठकर प्रकृति के सौंदर्य को देखता। सूर्य का उदय, पूर्व दिशा की लालिमा, हरे हरे वृक्ष और पर्वतों की श्रेणियों को को देखता तथा पक्षियों का गान सुनता।

वह ध्यान में लीन रहता। सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ आता, सूर्य का प्रकाश उसके ऊपर पड़ता, वह सहन न कर सकता, उसका ध्यान टूट जाता। वह अपनी कुटियों में आकर कुछ बनाने लगता। कभी कभी बसंत

का पवन उसकी कुटिया में सूखी पत्तियाँ लाकर फेंक जाता, वह उन्हें उठाकर देखने लगता, फिर चित्र बनाने लगता। कभी कभी वह गुनगुनाने लगता। विकल होकर कभी कुटिया के बाहर आकर आकाश की तरफ देखता, और कुछ सोचने लगता। अपने विचार से जब उसका ध्यान हटता तब वह देखता, भगवान् भास्कर आकाश से विदा हो रहे हैं; उनकी अंतिम किरणों की आभा आकाश में सफेद सफेद बादलों के पंखों पर सुनहली चित्रकारी कर रही है—आकाश का रंग कभी नीला हो जाता, कभी लाल और कभी सब रंग एक ही रूपों में दिखलाई देते।

वह बैठ जाता। चुपचाप प्रकृति की लीला देखता जाता। गोधूली का पहला तारा उसे दिखलाई देता; वह कहता—यह भी अपूर्व लीला है—सब तारे एक साथ क्यों नहीं निकलते ?—वह बड़े ध्यान से देखता—मानों तारा कह रहा हो—मेरा भी चित्र बना सकोगे ?

जो कुछ वह देखता, मानों सब कहते—हमारा भी चित्र बना दो !—किंतु चित्रकार कहता—नहीं, तुम्हें देखने से मेरे हृदय में कुछ शांति अवश्य मिलती है; पर तुम्हारा चित्र बनाकर मैं अपने हृदय में शांति का राज्य स्थापित न कर सकूँगा। मेरे अंतःपटल पर मेरे अतीत का जो दृश्य अंकित है—जिसके लिये मैं रुदन करता हूँ, विलाप करता हूँ—उसीका चित्र बनाऊँगा। तुम्हें तो सभी प्रत्यक्ष देखते हैं; पर मेरे अतीत को कौन देख रहा है ? मैं चित्रों द्वारा उसे दिखाऊँगा।

× × ×

दिन-पर-दिन बीतने लगे। चित्रकार केवल चित्रकार ही न था, वह कुशल कवि भी था। कभी कभी वायु के साथ वह गान भी करता।

चित्रकार का न कोई मित्र था, न साथी, उस निर्जन स्थान में वह एकांतवास करता था। संसार के मायाजाल से वह अलग था। वह पुस्तकें पढ़ता, चित्र बनाता और विचार करता। इतने ही में उसका सारा समय बीत जाता। इसी में उसे शांति मिलती।

उसके पास एक अमूल्य वस्तु थी, वही उसकी संपत्ति थी। उसे वह बड़ी सावधानी से रखता था। वह था—उसका प्रेमपत्र ! कभी कभी रजनी में वह दीपक के प्रकाश में उसे पढ़ता था। पढ़कर रोता, फिर हृदय से लगा लेता।

 × × ×

बहुत दिनों के बाद—

चित्रकार का चित्र बन चुका था। शीतल मलय पवन के एक झोंके ने कुटिया का द्वार खोल दिया। उसकी दृष्टि चारों तरफ दौड़ने लगी। उसने देखा, आकाश के मध्य में सूर्यदेव आ गए हैं। अब उसके मुख पर शांति और संतोष था, वह विकलता नहीं थी। करुणा ने अब ज्ञान का रूप धारण कर लिया था। वह चुपचाप बैठा था। चित्र तैयार था।

द्वार पर कुछ शब्द हुआ। चित्रकार आश्चर्य से उस तरफ देखने लगा। किसी ने पूछा—क्या मुझे पहचानते हो?

चित्रकार ने कहा—न······हाँ···।

क्या वे दिन भूल गए?

कुछ कुछ।

क्या रोने के दिन बीत गए?

हाँ।

अब देखने से मालूम पड़ता है, तुम एकदम बदल गए!

चित्रकार ने बड़े मधुर शब्दों में कहा—जो पहले ग्लानि और चिंता थी, वही अब शांति के रूप में हृदय में बास करती है। जो प्रेम था, वह ज्ञान के रूप में परिणत हो गया है।

दोनों एक दूसरे को देख रहे थे।

चित्रकार ने फिर कहा—एक बोझ अभी तक हृदय पर है, आज वह भी दूर हो जायगा।

इतना कहते हुए उसने वह चित्र और पत्र निकाला। वह एक बार चित्र की तरफ देखता, और एक बार उसकी तरफ। दोनों चुपचाप खड़े थे। चित्रकार ने पहले उसे पत्र दिया। उसने उसे देखकर कहा—यह तो मेरा ही लिखा हुआ है।

चित्रकार ने हाँ कहते हुए उसके हाथ में चित्र दे दिया। तब उसने कहा—यह तो मेरा ही चित्र मालूम पड़ता है।

चित्रकार बड़े ध्यान से उसकी तरफ देखने लगा। उसने कहा—हाँ। इसे बनाकर ही मुझे शांति मिली है। और, अब अंतिम मिलन है। मैं जाता हूँ।

इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चित्रकार देखते ही देखते न जाने कहाँ चला गया!

———

छलिया

बहन मालती,

बहुत सा प्यार ! तुम बड़ी निष्ठुर हो । तुमने सौगंध लेकर कहा था कि मैं पहले पत्र लिखूँगी, पर राह देखते देखते आँखें पथरा गईं । तुम्हारे हाथ सुकुमार हैं, अवश्य कलम उठाने में दुख जायँगे, इसका मुझे पता न था । मैं तो घबरा गई ।

तुमने कहा था कि मैं पत्र लिखने में स्वतंत्र हूँ, पर तुम तो—मालूम होता है—मुझसे भी अधिक अपनी सीमा के भीतर रहनेवाली हो । बहन, पसीजो ! पत्र तो लिखो उस दिन मेले से लौटकर आने पर तुम्हारी बड़ी बड़ी आँखें मेरी आँखों में घुस गई हैं । सचमुच तुम्हारे वह तो तुम्हें छोड़ते न होंगे । तुम बड़ी भाग्यवती हो । मुझे भी तो वही प्रयोग बतलाने को तुमने कहा था । लिखो न ! क्या उपाय है ? मैं ऊब गई हूँ । मुझसे तो यह तीव्र उपेक्षा अब सही नहीं जाती ।

क्या आँसू पीकर बराबर हँसते रहना हमारे ही भाग्य में है ? तुम बड़ी हँसोड़ हो यह तो मैं जान चुकी हूँ । बतलाओगी ? उसका क्या मूल्य है ? बहन, उन दिनों की स्मृति कब तक धीरज देगी ? मैं कभी कभी घबड़ाकर उन्हीं से पूछती हूँ कि—मेरा वह सब क्या हुआ ? वह, मेरे आराध्य ! निश्चल प्रतिमा की तरह उत्तर दे देते हैं ।

तुमने उन्हें उस दिन देखा था । यह ठीक है कि जब पास आ गए, तो तुमने घूँघट काढ़ लिया, पर देखा होगा अवश्य ! वह मेरे हैं, केवल इस मौखिक गर्व से असंतुष्ट हृदय कब तक भुलावाया जा सकता है ? कोई उपाय बताओगी ? तुम्हें सौगंध है—लिखो । मैंने तुम्हें अपना पता लिखा दिया था । आशा है, तुम भूली न होगी ।

तुम्हारी—

चंपा

चंपा का पत्र पढ़कर मालती मुस्कुराने लगी। एक बार उसने सोचा, यह बला कहाँ से पीछे लगी। फिर उसके चंचल चित्त ने कहा—क्या हर्ज है ? जैसे श्यामलाल को बुद्धू बनाना चाहती हूँ, उसी तरह चंपा को भी छका सकती हूँ ! कैसी अच्छी दिल्लगी रहेगी। उसने बनावटी सहानुभूति और गंभीरता के साथ उत्तर लिखा—

मेरी प्यारी चंपा,

गले से मिलना ! आज अनायास तुम्हारा पत्र मिल गया। पहले कई दिनों तक तुम मेरी आँखों पर चढ़ी थीं; मगर सदैव कौन किसको याद करता है ? मैंने समझा, वह एक मनोविनोद था। शायद तुम भूल जाओ, लेकिन नहीं, बात वैसी नहीं मालूम पड़ती। तुम्हारे पत्र ने जैसे प्रत्यक्ष में बातें कीं। तुम्हारी दशा पर तरस आता है—बहन ! क्या करोगी ? भाग्य में जो लिखा होता है, वही तो होता है।

मेरे वह तो मेरे संकेत पर चलते हैं। उनके लिये कभी दुःख और चिंता करनेवाली बातें मेरे मन में उठी नहीं। फिर भी तुम्हारे दुःख की कल्पना कर सकती हूँ। यह एक बड़ी विचित्र बात है !

एक बात है ! तुम्हारे पत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारे वह दिन-पर-दिन तुम्हारे प्रति नीरस होते जा रहे हैं। मैं समझती हूँ, इसका मुख्य कारण यही है कि जरूरत से ज्यादा तुम नम्र हो जाती हो। यदि वह कुछ खिंचें, तो तुम भी कुछ खिंचो। स्त्रियों पर आधिपत्य जमाकर अपराधी पुरुष शासन की लालसा में अपने को कैसा भाग्यशाली समझने लगता है ? हो सके, तो उत्तर देना।

तुम्हारी—

मालती

पत्र लिखकर मालती बार बार उसे पढ़ने लगी। उसे अपने काल्पनिक पति की प्रशंसा करने में बड़ा मजा आया, वह हँस पड़ी।

\+ \+ \+ \+

मालती का पत्र पढ़कर चंपा कई दिनों तक विचार में पड़ी थी। अंत में उसने उत्तर लिखा—

मेरी भाग्यवती बहन,

तुम्हारे उस सुहाग की साड़ी के आँचल का चुंबन ! तुम्हारा पत्र पढ़ कर मेरा हृदय तो उतावला सा हो गया है। तुम्हारे भाग्य से ईर्ष्या होती है ! तुम्हारी बातें मेरे लिये बड़ी कठिन हैं। भला उनसे खिंचने से कै दिन चल सकेगा ? अभी तो भूले-भटके कभी वह बात भी कर लेते हैं नहीं तो वह घर का आना भी एकदम छोड़ देंगे। तुम्हीं कहो, उनसे लड़ाई करके ईश्वर भी मेरा सहायक न होगा। मेरे तो वही धर्म हैं, वही ईश्वर हैं और वही पार लगानेवाले हैं। राम राम ! ऐसी बातें भूल कर भी नहीं सोचना चाहती। हृदय काँप उठता है !

सुना है, वह एक दूसरी स्त्री पर रीझे हैं, एक वेश्या के यहाँ जाते हैं ! हो सकता है उनके लिये बहुतेरी हैं; मगर मेरे लिये वह एक ही हैं। इसीलिये, तीर की तरह यह बात दिल में चुभी है। मेरा क्या वश है; मैं क्या कर सकती हूँ ? न जाने कौन सा अपराध हो गया है। उनकी आँखों में अपने प्रति घृणा देखकर डूब मरने की इच्छा होती है।

एक दिन था, जब मैं अपने से बढ़कर भाग्यवती दुनिया में किसी को न समझती थी, फूली न समाती थी। वे दिन हँसते हँसते कट जाते थे। जीवन में कितना उत्साह था। उनकी एक प्रेमभरी दृष्टि पर मैं मर मिटने को तैयार थी। लेकिन, आज मुझसे बढ़कर दुखिया कौन होगा ?

देखती हूँ, मनुष्य का स्वभाव रंगीन बादलों की तरह क्षण भर में ही बदल जाता है। जिसको एक दिन वह दोनों हाथों को फैलाकर गले से लगाता है, उसी को क्रोध की लाल लाल आँखें चढ़ाकर पैरों से ठुकरा भी सकता है। किसी के मन की बात कौन समझ सकता है ?

ओह ! उनका दिल मुझसे फट गया है, अकेले कमरे में बैठे न जाने क्या सोचा करते हैं। मुझे देखते ही उनकी आँखें चढ़ जाती हैं। बोलो, ऐसी स्थिति में मेरे जीने से क्या लाभ ?

उस दिन तुम्हारा पत्र डाकिया से लेकर जब नन्हीं आई, तो पूछने लगे, किसका पत्र है ? तुम्हारी बात मैं छिपा गई। मैंने कहा—मेरी बहन का है। फिर उन्होंने कुछ न पूछा। मैं समझती हूँ कि इसमें मैं उनसे झूठ नहीं बोली, क्योंकि तुम भी तो मेरी बहन हो !

अब मैं क्या करूँ ? कोई उपाय यदि तुम बता सकतीं, तो मैं जीवन भर तुम्हारी ऋणी रहती, तुम्हारे नाम की माला जपती। मेरी दशा पर विचार

करो और लिखो कि मेरी सुख की फुलवारी क्या फिर से हरी भरी हो सकती है ? या जीवन से निराश हो जाऊँ ? बस।

तुम्हारी अभागी—

चंपा

* ❀ * *

आरंभ में मालती ने इसे खिलवाड़ समझा था; किंतु अब वह चंपा के मानसिक कष्ट का धीरे धीरे अनुभव करने लगी। उसे ऐसा मालूम पड़ता, जैसे वह घोर अनर्थ कर रही है। इस बार फिर उसने उत्तर लिखा—

बहन चंपा,

तुम्हारा पत्र मिला था। कई दिनों तक तुम्हारी स्थिति पर विचार करती रही। कुछ समझ में नहीं आता। मनुष्य इतनी जल्दी बदल जाता है, आश्चर्य है!

सुना है, पुरुष बड़े स्वार्थी होते हैं। मतलब के समय नम्र हो जाते हैं, बड़े सीधे सादे बन जाते हैं; मगर भीतर से होते हैं बड़े चालाक! पहले तो ये दिन और रात एक कर देते हैं। सदैव एक ही बात—मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ—यही उनका पेटेंट नुस्खा होता है। अरे, तुम्हें नहीं मालूम, जिस तरह नित्य एक ही तरह की तरकारी, दाल, मिठाई खाते खाते तबीयत ऊब जाती है, उसी तरह इनको भी जायका बदलने की आवश्यकता पड़ती है। मेरा ऐसा अनुमान है कि तुम्हारे वह आजकल जायका बदलने के फेर में पड़े हैं।

वेश्या किसी की होती नहीं। उसे तो रुपयों से काम है। उसके यहाँ जाकर मनुष्य बरबाद भी हो सकता है और कुछ सीख भी सकता है। जो उस भूल भुलैया से निकल आता है, वह संसार में चतुर समझा जाता है। जीवन भर फिर वह किसी के हाथों पर नहीं चढ़ता। ऐसा मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा है। हो सकता है, तुम्हारे वह भी वहाँ से छुटकारा पाने पर सदैव के लिये तुम्हें सुखी बना सकें।

मुझसे पूर्णरूप से परिचित न होते हुए, केवल एक दिन की भेंट में, तुम मुझे अपना समझती हो। तुम्हारी इस सरलता पर मैं मुग्ध हूँ। मैं भी तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ, किंतु तुम अपने भाग्य की उलझी ग्रंथि को सुलझाने में अपने को असमर्थ समझती हो।

मैं अब तुम्हारा शहर छोड़ रही हूँ। बहुत शीघ्र यहाँ से चली जाऊँगी। सब तरह से सुखी होते हुए भी मन उदास रहता है। सोचती हूँ, उनसे लड़ाई करके कहीं भाग जाऊँगी। मैं स्वतंत्र हूँ, मेरे हृदय पर किसी का अधिकार नहीं। मैं एक पहेली हूँ। बूझ सकोगी? अच्छा, जाने के पहले एक दिन तुमसे भेंट करूँगी। अब पत्र मत लिखना।

तुम्हारी—

मालती

* * * *

कई दिन समाप्त हुए।

चंपा, मालती के इस रहस्यपूर्ण पत्र को न समझ सकी। मालती कौन है, यह वह भलीभाँति न जानती थी। बागीचे में भेंट हुई थी। बड़ी मिलनसार थी। बातें हुईं। एक दिन का परिचय था। मालूम पड़ता, वह बरसों की परिचित है। चंपा सोचने लगी; वह शहर छोड़कर कहाँ जायगी? क्या वह अपने पति का साथ छोड़ देगी? उसने तो लिखा था कि मेरे वह संकेत पर चलते हैं, फिर इतनी उदासी क्यों?

इधर कई दिनों से श्यामलाल को भी चिंतित देखकर चंपा कुछ समझ न पाती। भोजन के समय श्यामलाल की भरभराई आँखें किसी भारी अभाव की सूचना दे रही थीं।

घड़ी में आठ बजा था। बड़ी कड़ाके की धूप निकली थी।

श्यामलाल कपड़ा पहन रहे थे। चंपा उनके सामने खड़ी थी। उसने पूछा—आज इतनी जल्दी कहाँ जा रहे हैं? भोजन कर लीजिए, तब जाइएगा।

मेरे एक मित्र परदेश जा रहे हैं। उन्हें स्टेशन तक पहुँचाना है।—कहते हुए श्यामलाल कुर्ते का बटन लगा रहे थे।

ठीक उसी समय द्वार पर गाड़ी के रुकने की खड़खड़ाहट हुई। चंपा अपने पति के कमरे से हटना चाहती थी। उसने समझा, उनके कोई मित्र आए हैं। श्यामलाल भी ध्यान से द्वार की ओर देखने लगे।

यह क्या? यह तो स्त्री है! कौन है—मालती? चंपा ने पहचान लिया। वह वहीं खड़ी हो गई।

श्यामलाल थरथर काँप रहे थे। मालती आगे बढ़ी। चंपा ने बड़े कौतूहल से दोनों हाथ फैलाकर उसका स्वागत किया। मालती, श्यामलाल की ओर देखती हुई, उनके कमरे की ओर बढ़ी।

चंपा ने कहा—उधर कहाँ ? चलो घर में ।

नहीं, उन्हीं के यहाँ, तुम भी साथ आओ ।—बड़े साहस से मालती ने कहा ।

चंपा बड़े आश्चर्य से उसके साथ कमरे में गई । आज मालती ने श्यामलाल को देखकर घूँघट नहीं काढ़ा था ।

श्यामलाल का चेहरा अपराधी की तरह पीला पड़ गया था । वह चुपचाप देखने लगे ।

श्यामलाल से आँखें मिलाकर मालती ने मुस्कुराते हुए कहा—बड़ी देर कर दी ! मैं प्रतीक्षा में थी । इसीलिये स्वयं चली आई ।

श्यामलाल एक शब्द भी न बोल सके । वह चंपा की ओर देखने लगे । मालती ने कुछ आभूषणों को देते हुए चंपा से कहा—लो, इसे सहेज लो, इतनी बहुमूल्य चीज मेरे भाग्य में नहीं है । यह सब तुम्हारा है ।

मेरा !—नहीं, तुम यह क्या कह रही हो मालती बहन ? पागल तो नहीं हो गई हो ?—चंपा ने पूछा ।

मैंने तुम्हें लिखा था कि मैं एक पहेली हूँ—तुम्हें नहीं मालूम, मैं वही वेश्या हूँ, जिसपर तुम्हारे पति रीझे हैं, मैं अब परदेस जा रही हूँ बहन ! मुझे क्षमा करो ।—मालती ने बड़ी नम्रता से कहा ।

चंपा, मालती और श्यामलाल की ओर देखने लगी ।

श्यामलाल ने घबराकर कहा—ओह ! मैं नहीं जानता था ।······तुम बड़ी विचित्र हो ।

बहन, अब तुम सुखी रहोगी । अंतिम बार तुमसे मिलने आई थी । आज ही जा रही हूँ, इसी दस बजे की गाड़ी से ।—कहते हुए मालती जाने लगी ।

चंपा की आँखों में लाली दौड़ रही थी । उसने तीखे स्वर में कहा—तुम बड़ी छलिया हो ।

मालती चली गई थी ।

श्यामलाल ने कपड़े उतार दिए, वह मालती को स्टेशन तक पहुँचाने नहीं गए !

ओंक

बुलाकी जब रामगढ़ से चला था उस समय उसके पास केवल एक लोटा और एक कंबल था, किंतु विधाता का वरदान है कि इस समय उसकी समस्त संपत्ति का वास्तविक मूल्य आँकना कठिन है।

कोई कहता है कि रामसिंह डाकू के लूट का माल सब बुलाकी के यहाँ जमा रहता है। रामसिंह बुलाकी का बचपन का साथी है और उसी के बल-पर वह इस संसार में किसी से भी भयभीत नहीं हो सकता है।

कुछ लोगों को विश्वस्त सूत्र से यह भी ज्ञात हुआ कि नवाब की जमीन जो बुलाकी ने खरीदी थी उसमें मकान बनवाते समय एक बड़ा खजाना बुलाकी को मिला। इसमें करोड़ों के मूल्य के जवाहरात और शाही मुहरें भरी थीं। लखनऊ से नवाबी तख्त उलटते समय छिपाकर यह सब यहाँ लाकर उसी स्थान पर गाड़ दिया गया था।

बुलाकी के संबंध में जितनी भी कथा कहानियाँ प्रचारित हैं उनमें दैनिक 'रहस्य' नाम के समाचार पत्र ने विशेष अन्वेषण किया था। इसके कारण जनता में बुलाकी की बड़ी कुकीर्ति फैल गयी थी।

दैनिक 'रहस्य' के कई अंकों में बुलाकी का जो वृतांत छपा था, वह सब मिलाकर तेरह कालम मैटर था जिसमें मुख्य मुख्य आक्षेप पर ध्यान रखने पर बुलाकी का चरित्र मनोवैज्ञानिक कसौटी पर कसा जा सकेगा।

१—उत्तर भारत में बुलाकी की ७ मिलों में सरसों के साथ भड़भाँड़ का तेल मिलाकर शुद्ध सरसों का तेल प्रमाणित कर मुहरबंद टिन में बेचा जाता है। इसी तेल के कारण 'बेरी बेरी' आदि रोगों का आक्रमण जनता पर हुआ।

२—बुलाकी की कुल ग्यारह घी की आढ़तों में विभिन्न प्रकार की मिला-वट कर शुद्ध चंदौसी के नाम पर घी बेचा जाता है।

३—बुलाकी की उन्नीस आटे की मिलों में आम की गुठली और शकर-कंद का मेल देकर बोरा बंद आटे का प्रांत भर में विक्रय होता है।

'रहस्य' पत्र ने जनता से अपील की थी कि ऐसे 'नर राक्षस' के चक्र में जनता भूली हुई है। जनता समझती है कि उसकी बनवायी हुई धर्मशाला, अस्पताल, मंदिर और क्षेत्र सब जनहित का कार्य कर रहे हैं, किंतु वास्तव में जनता को ठगकर जो पैसा उपार्जित किया गया है, उसका कुछ अंश इन संस्थाओं में भी लगा दिया गया है।

पत्र ने यह भी प्रमाणित किया था कि दो बार दीवाला मारकर बुलाकी का पिता अपने पुत्र के साथ नगर छोड़कर रामगढ़ चला गया था।

पहले तो बुलाकी ने फौजदारी दफा ५०० में 'रहस्य' पत्र के संचालक और संपादक पर मानहानि का दावा करने का निश्चय किया, किंतु वकीलों ने मुकदमा कमजोर बतलाया क्योंकि बुलाकी की मिलों में सरकारी जाँच के समय कई बार मिलावट की 'रिपोर्ट' हुई थी जिसको बुलाकी ने घूस के जोर से ठंढा कर दिया था।

अँग्रेजी सरकार के द्वितीय महानगर में पदार्पण कर आरंभ में रहस्य पत्र का संचालक हरिसन रोड पर 'विदेशिया' और छोटी छोटी गाने की पुस्तक बेंचता था, किंतु देखते देखते उसका भाग्य चमका।

रहस्य पत्र के प्रकाशन से निरंतर उसकी आय बढ़ती गयी। साप्ताहिक से दैनिक रूप बना। 'पेनी' की घिसी 'फ्लेट' से 'रोटरी' की व्यवस्था हुई। बुलाकी के संमुख एक यही उपाय था कि पत्र को खरीद कर वह स्वयं उसका संचालक हो जाय और उसे नीचा दिखावे। अंत में बुलाकी ने मुँह माँगा मूल्य देकर पत्र को पूँजी का सेवक बनाया, किंतु उसकी नीति आदि में परिवर्तन, हो गया। पैसेवालों की पोल खोलने की प्रणाली ने धार्मिक रूप ग्रहण किया।

द्वितीय महायुद्ध के काल में बुलाकी को क्षणभर भी अवकाश न मिलता था। दिनभर गद्दी पर मसनद के सहारे बैठा वह अपनी तिजोरियों का द्वार खुलते और बंद होते हुए देखता रहता। बीच बीच में टेलिफोन पर 'के भाव है' का उसका स्वर सबको मौन कर देता था।

ब्रिटिश शासन पर बुलाकी का अटल विश्वास था। वह समझता था कि भारत पर अंग्रेजों का शासन उनका जन्म सिद्ध अधिकार है और उन्हीं की

छत्रछाया में बुलाकी के भाग्य का उत्कर्ष हुआ था। वह सरकार और अधिकारियों की प्रत्येक आज्ञा का पालन करता था, किंतु जब समय ने परिवर्तन की सूचना दी और अंग्रेजी साम्राज्य विद्रोह के भूकंप से हिल उठा तब बुलाकी को चेतना आयी। उसने अपने जनहित के कार्य को विशद रूप दिया। गुप्त दान में कांग्रेस को भी समय समय पर बड़ी भारी थैली देता था।

भारत से पलायन करते समय अंग्रेजी व्यावसायिक कंपनियों ने बुलाकी के मन चाहे मूल्य पर अपनी कुंजी उसे सौंप दी थी। इस तरह अधिकांश विदेशी 'साइन बोर्ड' पर बुलाकी का नाम अंकित हो गया था। उसके संमुख धन के लिए कभी चिंता का प्रश्न ही नहीं उठता था। जिस दिन जापान ने आत्म समर्पण किया था उसीदिन केवल एक घंटे में बुलाकी ने दो करोड़ सत्रह लाख रुपया फाटके में पैदा किया था।

× × ×

युग बदल गया था।

विधान सभा के निर्वाचन काल में सेठ बुलाकीदास को बड़ा मार्मिक आघात लगा था। एक साधारण व्यक्ति ने कांग्रेस टिकट पर बुलाकी को पराजित कर दिया था। बुलाकी को स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं थी। महीनों पहले से बुलाकी की सफलता के लिए प्रचारकार्य होता रहा। सभाएँ होतीं, जुलूस निकाला जाता, पैसों के बल पर जो कुछ संभव था, उसमें कोई त्रुटि नहीं की गयी। सैकड़ों कार्यकर्ता मोटरों पर बैठ कर अपने जीवन को सार्थक समझते रहे और इस तरह गर्दन घुमाते हुए उचक कर देखते जैसे वे अपने देखने वालों की दृष्टि में ही समा जाना चाहते थे। हर तरह से बुलाकी के पैसों का यथार्थ सुख उन्हीं को प्राप्त हुआ था।

बुलाकी के पराजित हो जाने पर उन लोगों ने प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति अनेक अपवादों का आरोप संकलित कर डाला था, किंतु बुलाकी के आश्रय में पड़े हुए, नियमित समय पर मासिक वेतन प्राप्त करने वाले पत्र संपादकों का एक मात्र मत यही था कि अगर पंडित नेहरू का भाषण दो दिन पहले न हुआ होता तो विजय सेठ बुलाकीदास की निश्चय ही होती।

प्रतिहिंसा की ज्वाला धधकने लगी। बुलाकी को अपने समस्त जनहित कार्य और उपकार की भावनाएँ व्यर्थ प्रतीत हुईं, उसके इतने बड़े बड़े कार्यों का कोई महत्व नहीं? जनता भेंड़ है। उसमें बुद्धि नहीं।

बुलाकी के आधिपत्य में जितने दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र प्रकाशित होते थे, उनके संपादकों के नाम उसने अपना आज्ञा पत्र भेजा जिसमें स्पष्ट रूप से घोषणा की गयी थी कि वे लोग कांग्रेस की त्रुटियों पर ही अपना लक्ष्य रखें।

कई महीनों के बाद अकस्मात बुलाकी के संगमर्मर के महल से पुलिस छापा मार कर हिसाब किताब का बही खाता ले गयी और उस पर सात करोड़ सुपर टैक्स गबन करने का अपराध लगा, उसी दिन से बुलाकी की मानसिक व्यग्रता बढ़ती गयी।

दिनभर व्यवसाय में व्यस्त रहने वाला बुलाकी सब कुछ छोड़कर पलँग पर पड़ा था। डाक्टरों ने विशेष सावधानी का आदेश दिया था। बुलाकी के प्रतिक्षण की गतिविधि पर डाक्टरों में आपस में परामर्श होता था। उसी के अनुसार चिकित्सा चलती।

अचानक एक दिन रात में बुलाकी की अवस्था बड़ी गंभीर हो गयी। बंबई से एक विशेषज्ञ हवाई जहाज से आये। अन्वेषण के पश्चात् निश्चित हुआ कि मस्तिष्क की एक नस खुल गयी है और रक्त की गति रोकना कठिन है। अपयश की आशंका के कारण किसी भी डाक्टर का साहस नहीं हुआ कि सेठ बुलाकीदास के मस्तिष्क पर कोई प्रयोग कर सके। इसके अतिरिक्त बुलाकी स्वयं चीरफाड़ से दूर रहना चाहता था। अंत में बीसवीं सदी के सभी आधुनिक आविष्कारों ने अपनी कोई उपयोगिता बुलाकी के संबंध में प्रमाणित नहीं की।

हताश होकर रामगढ़ के उस वैद्य ने मस्तिष्क में रक्त की गति बंद करने के लिए जोंक लगाने की संमति दी।

जोंक का नाम सुनकर बुलाकी चौंक उठा, उसे संभवतः रामगढ़ में पोखरे में स्नान करते समय कभी जोंक का सामना करना पड़ा था।

बूढ़े वैद्य ने बड़ी कुशलता से सब कार्य किया। बुलाकी को कोई कष्ट नहीं हुआ।

चैतन्य होकर बुलाकी ने कहा—देखूँ रक्त कैसा है ?

वैद्य संकेत से रोकना चाहता था, लेकिन बुलाकी की आज्ञा को कौन रोक सकता था ?

शीशे की प्याली में अंगारे के समान लाल खून 'तारकोल' की भाँति काला हो गया था। बुलाकी ने प्याली में अपनी ही छाया देखी, वह मूर्च्छित हो गया। अंत में उसकी श्वास की गति सदैव के लिए बंद हो गयी।

३०२

दफा ३०२, खून का मुकदमा था! नगर भर में इस हत्या की चर्चा थी। अभियुक्त, हथकड़ी बेड़ी से लदा हुआ, कोर्ट के द्वार पर, लाल पगड़ी के शासन में, खड़ा था।

शांतिप्रकाश ने चौंककर देखा—उसके नाम की ही पुकार हो रही थी। सिपाही लोग उसे धक्का देते हुए भीतर ले गये। वह अजायबघर के एक जंतु की तरह देखा जाने लगा।

दो दिन कारावास में कटे थे, आज मुद्दालेह का बयान था। कटघरे में खड़ा अभियुक्त शांतिप्रकाश कितना भयानक हो गया था—देखने लायक दृश्य था! उसकी सरस आँखें कितनी गंभीर हो गई थीं! आँखों में एक डरावना तेज था! निर्भीकता से उसने जज को अपना लिखित बयान दिया, जो इस तरह था—

× × × ×

मैं दरिद्रता की गोद में पला हूँ। सुख किसे कहते हैं, मैं नहीं जानता। मेरी माता का देहांत, जब मैं पाँच वर्ष का था तभी, हो गया था। मेरे पिता नौकरी करते और मैं उन्हीं के साथ रहता था। पिता को छोड़ इस संसार में कोई अपना न था। सब अपने दिन पूरे करके चले गये थे। पिताजी के जीवन का एकमात्र उद्देश्य था कि मैं पढ़ लिखकर होनहार बनूँ। मेरा भविष्य उज्ज्वल हो। उनके वेतन में से आधे से अधिक केवल मेरे पठन पाठन में व्यय होता था। वृद्धावस्था में भी घोर परिश्रम करके २०) रुपये मासिक से अधिक वे पा ही न सके! मेरे सुख की कल्पना करके उन्होंने अपने सुख को मिट्टी में मिला दिया था।

इसी तरह कई वर्ष व्यतीत हो गये। मैं बड़े परिश्रम से अध्ययन करता रहा। एंट्रेंस पास हो गया था। उसी साल, न जाने कैसी व्यवस्था करके, पिताजी ने मेरा विवाह कर दिया था। अब, भोजन हम लोगों को अपने हाथ से न बनाना पड़ता था। किंतु विवाह होने पर झंझट और भी बढ़ गई! २०) मासिक में निर्वाह न हो पाता, अतएव रात्रि के समय भी

पिताजी को एक जगह काम करने जाना पड़ता था। मुझसे उनका कष्ट देखा न जाता; किंतु करता ही क्या ? कोई उपाय न था !

मैंने एक दिन उनसे कहा—बाबूजी, अब तो मैं सयाना हो गया हूँ, एंट्रेंस भी पास कर चुका; आज्ञा दीजिये, तो कोई नौकरी कर लूँ।

उन्होंने बड़ी गंभीरता से उत्तर दिया—बेटा, अभी तुम्हारा पढ़ने का समय है, नौकरी तुम्हें कहाँ मिलेगी ? एंट्रेंसवालों को पंद्रह रुपये पर भी कोई नहीं पूछता। कम से कम बी० ए० तो पास कर लो, ताकि भविष्य में भलीभाँति अपना निर्वाह कर सको।

मैं चुप हो गया। फिर कभी यह प्रश्न नहीं उठाया। मैं कालेज में पढ़ने लगा।

तीन वर्ष और समाप्त हो गये।

मेरी स्त्री अपने इस जीवन से संतुष्ट थी। जैसे उसे कोई लालसा ही न हो ! पिताजी उसका बड़ा आदर करते थे ! दरिद्रता के भीषण तांडव नृत्य में भी वह हँसती हुई दिखाई देती थी। उसकी ऐसी मनोवृत्ति देखकर मैं मन ही मन प्रसन्न होता था, अपने को भाग्यशाली समझता था।

उस वर्ष मैंने बी० ए० की परीक्षा दी थी, सफलता की पूर्ण आशा थी; किंतु भगवान मेरा इतना सुख भी न देखा गया, एकाएक मेरे ऊपर वज्र गिर पड़ा। पिताजी बीमार पड़े, दो दिन की बीमारी में ही चल बसे !

अंतिम समय में उन्होंने मुझसे कहा—बेटा, मैं अपने इस सांसारिक जीवन की परीक्षा दे चुका, भगवान ने मुझे उत्तीर्ण कर दिया है—मैं जा रहा हूँ, तुम सुखी रहो।

वे चले गये। मेरे मन में दो बातों की कलक रह गई—एक तो वह मेरे पुत्र को न देख सके, जो उनकी मृत्यु के दो मास पश्चात् पैदा हुआ और दूसरी यह कि मैं अपने उपार्जित धन से उनकी कुछ सेवा न कर सका।

मेरे कष्टों ने अपना और भी भयंकर रूप बना लिया। पुत्र हुआ। दरिद्रता जीवन से परिहास कर रही थी। मेरी समझ में न आता, क्या करूँ ! घर में भोजन का प्रबंध न था। मेरी पत्नी की बड़ी शोचनीय दशा थी। शरीर पीला पड़ गया, एक सूखा कंकाल मात्र बच गया था। मैंने उसके कुछ आभूषणों को बेंचकर काम चलाया।

मैं बी० ए० पास हो गया था। कई स्कूलों और दफ्तरों में नौकरी के लिये मैंने प्रार्थनापत्र भेजे थे, किंतु परिणाम कुछ न हुआ। मैं बेकार कई महीने तक चेष्टा करता रहा। अंत में मुझे एक स्कूल में अध्यापक का स्थान मिला। वेतन ३०) मासिक था।

मैं बड़े परिश्रम से अध्यापन कार्य करता रहा। कुछ लड़के मेरी पढ़ाई से असंतुष्ट थे। प्रधानाध्यापक और अन्य अध्यापकगण मेरी ओर से सदा उदासीन रहा करते। इसका मुख्य कारण था, मेरा फटा कोट, सिली हुई धोती और मैली टोपी! मेरी स्थिति ही ऐसी न थी कि मैं अपने जीवन में वस्त्रों द्वारा कुछ परिवर्त्तन कर डालता, इसलिये उन लोगों से हिल मिल न सका। उनकी दृष्टि में रुखाई देखकर मुझे साहस भी न होता था।

छः मास के बाद मुझे स्कूल छोड़ देने के लिये सूचना मिली। कारण यह बतलाया गया विद्यार्थी पढ़ाई से असंतुष्ट हैं।

विवश होकर मैंने स्कूल छोड़ दिया। अब कोई साधन न रहा। बहुत चेष्टा की; किंतु इस बार तो निराश ही होना पड़ा। कहीं स्थान न मिला। पड़ोस के कुछ बालकों को पढ़ाकर चार पाँच रुपए मिल जाते। आधे पेट और उपवास से दिन कटने लगे।

मनुष्यमात्र से घृणा हो चली। कभी सोचता—मनुष्य इतना भयानक क्यों है? लोग एक दूसरे को खा जाने के लिये प्रस्तुत क्यों हैं? मनुष्य ने ईर्ष्या, द्वेष; घृणा की रचना करके संसार में विचित्र रूप प्रकट किया है। आह! संसार में प्रलय क्यों नहीं होता—आग क्यों नहीं लगती—लोग उसमें क्यों नहीं जल जाते—हाहाकार क्यों नहीं मचता कि मैं भी उसी में जलकर अपनी इस दुर्बल आह को बुझाकर शांत कर देता।

ईश्वर में अश्रद्धा हो गई। नहीं नहीं, विश्वास भी उठ गया! पुण्य और पाप में, नरक और स्वर्ग में, संदेह होने लगा।

मेरी पत्नी बालक गोद में लेकर रो रही थी। मैंने पूछा—तुम क्यों रोती हो? मरना तो है ही, रोकर क्यों प्राण दिया जाय?

उसने सिसकते हुए कहा—आपके कष्टों को देखकर रोती हूँ।

मैंने कहा—संसार में मनुष्य कितना झूठ बोलते हैं! धन ही सब कुछ है। 'ईश्वर' नाम की कोई चीज नहीं है।

उसने च···च···च···करते हुए कहा—ऐसा न कहो; ईश्वर है। उसपर अविश्वास करना पाप है। यह तो हम लोग अपने पूर्वजन्म का फल भोग रहे हैं।

मैंने समझा, यह मूढ़ है। यह इन रहस्यों को क्या समझेगी। यदि ईश्वर होता, तो अन्याय न करता—निर्धन और धनी की श्रेणी न बनाता—एक को विलास और ऐश्वर्य का सम्राट् बनाकर दूसरे को एक एक दाने के लिये मुहताज न करता!

दिन भर का उपवास था। उस दिन भोजन का कोई प्रबंध न था। बालक तक भूखा था। घर में कुछ बर्तनों के सिवा कुछ न बचा था। पीतल का एक पुराना लोटा लेकर मैं बाजार में उसे बेचने के लिये गया। उसे बेचा; उस दिन का काम चला। रात भर नींद न आई; हृदय में भीषण कोलाहल था। विचार करने लगा—

भीख भी नहीं माँग सकता! पढ़ा लिखा आदमी हूँ, कैसे साहस होगा?

फिर?

आत्महत्या करूँ?

नहीं, वह कैसे हो सकता है? स्त्री और पुत्र फिर क्या करेंगे? उनका निर्वाह कैसे होगा?

तब, उनका भी अंत कर दूँ? किंतु साहस नहीं! ऐसी स्त्री की, जिसने अपना सब सुख मेरे चरणों पर अर्पित कर दिया है—आह! उस देवी की, हत्या मैं कैसे कर सकूँगा?

उन्मत्त विचारों में परस्पर उत्तर प्रयुत्तर हुआ।

मैंने अपनी मृत्यु के अनेक उपायों का अन्वेषण किया। दरिद्रता का नृत्य देखते देखते कभी मेरे नेत्रों के संमुख सड़कों और गलियों में पड़े अध-मरे, अंधे, लँगड़े, लूले और भूखे भिखारियों के चित्र फिरने लगते। मैं तड़पने लगता। मेरा दम घुटने लगता। मैंने मन में फिर कहा—दरिद्रों के लिये कानून क्यों नहीं बनाया जाता कि उनको फाँसी दे दी जाय, बस उनके कष्टों का एक साथ ही अंत हो जाय। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं ही उनकी हत्या करके उनको कष्टों से छुड़ा दूँगा और अंत में इसी अपराध में अपने को भी सांसारिक दुखों से मुक्त कर सकूँगा।

दूसरे दिन मैंने अपनी स्त्री से कहा—तुमको मेरे कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ा है। सचमुच तुम्हारा अभाग्य था जो मेरे साथ तुम्हारा विवाह हुआ। तुम देवी हो, मैं तुम्हारे योग्य न था।

मेरी आँखें छलछला उठीं।

उसने आश्चर्य से मेरी ओर देखते हुए कहा—आप ऐसी बातें क्यों करते हैं ?

वह रोने लगी।

दिन बीत गया। रात हो चली थी। मैं घर से निकला। वह सो रही थी। मैं जी भर कर उसके सरल सौंदर्य को देख लेने की चेष्टा कर रहा था। अंतिम भेंट की कल्पना थी। हाथ में छुरा लेकर घर से निकला। सन्नाटे में भटक रहा था।

गंगा तट पर आया। देखा, एक भिखारी पड़ा था। मैं वहीं खड़ा हो गया। मेरी नस नस में उन्माद का संचार हो रहा था। वह पड़ा हुआ कराहता था।

मैंने पूछा—क्या चाहते हो ? क्या सुख चाहिये ?

उसने बड़े धीमे स्वर में कहा—बाबू मर रहा हूँ, जान भी नहीं निकलती !

मैंने तीखे स्वर में पूछा—जान देना चाहते हो ?

उसने कहा—हाँ......न......हीं।

जान दे देने ही पर तुम्हें सुख मिलेगा—कहते हुए मैंने छुरे को उसकी छाती के पार कर दिया। वहाँ से, खून से लथपथ हाथों से, आकर थाने में बयान दिया, जो आपके सामने है। मैं अपने अपराध को स्वीकार करता हूँ, मुझे इससे अधिक कुछ नहीं कहना है। मुझे फाँसी चाहिये, इसी में मुझे शांति मिलेगी।

हाँ, एक बात के लिये मैं कोर्ट से प्रार्थना करता हूँ कि वह मेरे बच्चे और स्त्री को भी फाँसी देकर मेरी अंतिम अभिलाषा पूर्ण करे। संसार में मृत्यु से बढ़कर हम लोगों के लिये कोई सुख नहीं है। अतएव शीघ्र से शीघ्र हमारा निर्णय हो।

—शांतिप्रकाश, बी० ए०

× × × ×

जज ने ध्यान से उसके लिखित बयान को पढ़ा ? उसने बार बार अपनी बड़ी बड़ी गंभीर आँखों से अपराधी की ओर देखा। सरकारी वकील खड़ा था। कोर्ट शांत था। प्रश्न आरंभ हुए। दर्शक उत्सुकता से आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे।

जज ने पूछा—हाँ, तो तुम मरना चाहते थे ? क्यों ?

और अब भी चाहता हूँ।

मरने के लिये क्या यही सर्वोत्तम उपाय तुमने सोचा था ? मरने के और भी ढंग थे।—जज ने शासन की आँखों से देखते हुए कहा।

अभियुक्त चुपचाप अपनी खूनी आँखों से जज की तरफ देख रहा था; उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

क्या तुम उत्तर नहीं दोगे ?—जज ने फिर पूछा।

मैं अपने बयान से कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। मैं मृत्यु दंड चाहता हूँ, मुझे फाँसी चाहिये, फाँसी ! जीते जागते कठपुतलो ! मुझे व्यर्थ क्यों छेड़ते हो ? धन की लालसा में रक्त की धारा बहा देनेवालो ! मुझसे बहस न करो। ऐश्वर्य के कुंज में विहार करनेवाले धनिको ! तुम्हें क्या मालूम, कंकड़ों पर सोने में कितनी व्यथा है—भूखे पेट की क्या हालत होती है ? बस, बस, अब विलंब न करो। शांति से मुझे मरने दो। मेरा निर्णय करो।

सब आश्चर्य से इस विचित्र अभियुक्त को देख रहे थे।

जज आँखें गुरेरता हुआ देख रहा था। सरकारी वकील ने धीरे से कहा—हुजूर, यह बड़ा भयानक मालूम पड़ता है।

प्रश्न बंद हुए। जूरियों से जज ने संमति ली। अपने कमरे में जाकर फैसला लिखा – बीस वर्ष के लिये कालापानी !

फाँसी नहीं हुई !!

अभियुक्त ने फैसला सुनकर कर्कश स्वर में कहा—तड़पा तड़पाकर मारने से अच्छा है कि एक ही बार मार डालो।

जज ने शेर की तरह गरजकर कहा—वहाँ तुम्हारे भोजन का प्रबंध सरकार कर देगी। चुप रहो।

सिपाहियों की ओर देखते हुए जज ने संकेत किया—ले जाओ इसे यहाँ से।

बेड़ी खनखनाई। सिपाहियों ने गर्दन पर झटका देते हुए कहा—चल !

(३)

दस वर्ष के बाद—

शांतिप्रकाश पोर्ट ब्लेयर के पास, समुद्र तट पर, पत्थरों के बाँध बना रहा था। फावड़ा रखकर, पसीना पोंछते हुए, उसने एक बार समुद्र का भीषण हाहाकार देखा। किरणें डूब रही थीं। उस जगह और कोई कैदी न था। अंधकार हो चला था। सब अपने झोपड़ों की तरफ लौटने लगे। सहसा पास के झुरमुट से चिल्लाने का स्वर सुन पड़ा।

शांतिप्रकाश उधर दौड़ा। उसने देखा कि एक कुली एक स्त्री पर अत्याचार किया ही चाहता है। न जाने क्यों, उसका फावड़ा वेग से चल पड़ा। बेचारी स्त्री उस कुली के अत्याचार से मुक्त होकर शांतिप्रकाश को देखने लगी—और वह उसे देखने लगा।

दूसरे ही क्षण स्त्री ने कहा—मेरे नाथ! मेरे स्वामी!!

शांतिप्रकाश ने पूछा—गोमती! तुम हो? और किशोर कहाँ है?

स्त्री ने कहा—किशोर भूख से तड़पकर मर गया। उसका अंतिम संस्कार कैसे किया जाता, इसलिये उसके शव को झोपड़ी में ही रखकर मैंने आग लगा दी। मैं उसी अपराध के कारण द्वीपांतर का दंड पाकर आई हूँ।

शांतिप्रकाश और गोमती की आँखों में जैसे आँसू सूख गये थे। वह भयानक मिलन बड़ा ही कठोर था।

शांतिप्रकाश ने विचार करते हुए कहा—अच्छा, चलो, हम लोगों को भागना पड़ेगा। संभवतः यह आदमी मर गया। तुम्हारी और किशोर की कथा बाद में सुनूँगा, पहले जीते रहने का प्रबंध करना पड़ेगा।

दोनों को उस धुँधले में किसी के आने का संदेह होने लगा। वे भाग चले। वे भागते भागते फिर उसी समुद्र तट पर आये।

दोनों हाँफ रहे थे। अब उनका पकड़ा जाना निश्चित था; क्योंकि पुलिस पास पहुँच चुकी थी।

शांतिप्रकाश ने निराशदृष्टि से एक बार गोमती की ओर देखा।

उसने भी आँखों की भाषा में कहा—हाँ!

दोनों, हाथ में हाथ मिलाकर, समुद्र में कूद पड़े।

दीपदान

चाची विधवा थीं। धर्म कर्म में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। दिन रात ईश्वर में लीन रहतीं। पड़ोस के लड़के उन्हें 'चाची' ही कहा करते थे। वह उन्हें कृष्ण भगवान की कहानी सुनाया करतीं, प्रसाद देतीं; इसीलिये सब उन्हें घेरे रहते।

अन्नपूर्णा पर चाची का बड़ा स्नेह था। उनके घर का बहुत सा काम वह कर जाया करती। प्रकाश भी स्कूल से पढ़कर उनके यहाँ खेलने आया करता। वहीं सायंकाल में बालक बालिकाओं का अच्छा जमाव होता था। उनके कोई संतान न थी इसलिये सब बालक उन्हीं के थे। यह बाललीला देखकर भगवान का स्मरण करती थीं।

कार्तिक में चाची एक मास नित्य गंगा स्नान करने जाया करती थीं। अन्नपूर्णा और प्रकाश भी कभी कभी उनके साथ जाते थे। उनके उठने के पहले ही, तीन बजे शिवमंदिर के घंटे की ध्वनि सुनकर, प्रकाश को अन्नपूर्णा उठा देती और कहती—जल्दी उठो, नहीं तो चाची चली जाएँगी।

स्नान करने के बाद चाची दीपदान करती थीं। प्रकाश और अन्नपूर्णा भी दीये जलाकर गंगा में प्रवाहित करते थे, और अपने अपने दीपक पर कुछ चिह्न लगाकर उसे अंत तक देखा करते थे।

प्रकाश ने कहा—देखो अनू, मेरा दीपक आगे चला गया, वह देखो, तुम्हारा दीपक डूब रहा है।

गंगाजी की लहरें दीपकों से किलोल कर रही थीं।

अनू कहती—लो, तुम्हारा दीपक भी बुझ रहा है। वह देखो, कितनी दूर चला गया!

प्रकाश देखता ही रहा। उसका दीपक आँखों से ओझल हो गया था।

चाची यह दृश्य देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होती थीं और दोनों भाई बहन को साथ लेकर घर लौट आती थीं।

(२)

दस वर्ष समाप्त हो गये थे।

पड़ोस के कई मकान गिरकर अब खँड़हर हो गए थे। अन्नपूर्णा का विवाह हुआ, फिर प्रकाश का भी विवाह हुआ। सब संसार की चर्खी पर झूल रहे थे।

प्रकाश ने अब विद्वान् और गृहस्थ होकर संसार में प्रवेश किया था। प्रकाश की स्त्री बड़ी सुंदरी और सुशीला थी। कई वर्षों के बाद एक पुत्र भी हुआ।

बड़े आनंद से दिन कट रहे थे।

अनू भी साल छः महीने में आती और कुछ दिनों के लिये मेहमान होकर चली जाती थी।

दैव की लीला! प्रकाश बीमार पड़ा, फिर रोगशय्या से न उठा। भरी जवानी में चल बसा! सब उसके लिये आँसू बहाते।

वह सरल था, नम्र था और होनहार था; इसीलिये उसका अभाव खटकता था।

(३)

बहुत समय बीत गया।

अन्नपूर्णा घर आई थी। कार्तिक मास था। चाची अब बहुत वृद्धा हो गई थीं; पर गंगास्नान करने जाया करती थीं। एक दिन अन्नपूर्णा उनके घर गई थी। विगत जीवन का वार्तालाप होता रहा।

चाची ने कहा—अनू, तेरे साथ स्नान किए हुए कितने वर्ष हो गए—तुझे याद है?

अनू ने आह भरते हुए कहा—वे दिन चाची, क्या भूलेंगे? कितना मधुर समय था!

अच्छा, चल एक दिन मेरे साथ फिर स्नान तो कर ले। कल एकादशी है।—चाची ने आश्वासन देते हुए कहा।

दूसरे दिन अन्नपूर्णा अपने भाई के लड़के अरुण को लेकर चाची के साथ स्नान करने गई। घाट अब भी वैसा ही था। आकाश दीपक अब भी उसी तरह टँगे थे। गंगातट पर एक स्त्री दीपदान के लिये सजाया हुआ दीपक बेच रही थी।

चाची ने सदा की भाँति दीपदान के लिये दीपक ले लिया। बालक अरुण आश्चर्य से पूछने लगा—यह क्या है चाची?

दीपदान के लिये दीपक है बेटा !

क्या होगा ?

चलो देख लेना, गंगाजी में बहाया जायगा ।

अन्नपूर्णा मूर्ति के समान खड़ी थी । किसी पीड़ा ने कुछ देर के लिये उसके हृदय में डेरा डाला । उसका दम घुटने लगा । बहुत साहस करके उसने भी एक दीपक लेते हुए कहा—चाची, मैं भी दीपदान करूँगी ।

स्नान करने के पश्चात् अनू ने दीपक का प्रवाह किया । अरुण कौतूहल से देख रहा था ।

तारे आकाश से एक एक कर नष्ट हो रहे थे । दीपक बड़े वेग से बहे जा रहे थे । अनू चुप थी, उसे दीपक की मलिन ज्योति से दिखलाई दिया—जैसे प्रकाश का छायाचित्र आकाश की तरफ उठ रहा है ।

सहसा अरुण ने आश्चर्य से कहा—बुआ, वो देखो तुम्हारा दीपक डूब रहा है ।

अनू ने देखा, दीपक दूर श्मशान के सामने तक पहुँच गया था और एक लहर ने दीपक को छिपा लिया ।

दीपक का मंद प्रकाश श्मशान की अग्नि की लपटों में विलीन हो गया ।

अन्नपूर्णा को चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश दिखलाई दिया ।

दीपक राग

सब तरफ युद्ध का आतंक छाया हुआ था। रावलपिंडी से श्रीनगर जाने वाली सड़क पर फौजी ट्रकों का ताँता लगा हुआ था।

इतने लंबे टेढ़े मेढ़े मार्ग को पार करने के बाद बारामूला के घने कुंज में जब सैनिकों से भरी लारी प्रवेश करती तो प्रत्येक सैनिक में नवीन स्फूर्ति झलकने लगती। सड़क के दोनों ओर चनार के विशाल वृक्ष लगे थे। जड़ और शाखाओं से अलग होते हुए भी ऊपर जाकर वे एक दूसरे से इतने मिले हुए थे कि उनकी शाखायें अलग करना कठिन था। बरगद के वृक्ष की भाँति उनकी शाखाएँ और पत्तियाँ उलझी हुई थीं। उनकी पत्तियों की आकृति हथेली में लगी पाँच उँगलियों की भाँति दिखाई पड़ती थी। इन वृक्षों से छन कर जो हवा आती उसमें चैतन्यता भरी रहती। ऐसा प्रतीत होता कि यात्री अपनी सब थकावट और कष्टों को भूलकर स्वर्गीय सुख की गोद में बैठा कल्पना कर रहा है।

मार्ग की विशेषताओं के करण लारी की गति तीव्र हो रही थी।

किसी ने ड्राइवर से पूछा—सरदार जी श्रीनगर अब कितनी दूर है?

भाई जी सिर्फ एक घंटे में आप वहाँ पहुँच जायँगे—उत्तर मिला।

पर्वतों की रेखाएँ आकाश में बिखरी हुई थीं मध्याह्न के सूर्य की किरणें कुंज वाली सड़क पर कहीं कहीं घुस कर प्रकाश फैला रही थीं। सब मौन थे। मोटर की गड़गड़ाहट और गर्द के कारण किसी को बोलने का साहस नहीं होता था। श्रीनगर पहुँचने की प्रतीक्षा में सब चुपचाप बैठे थे।

श्रीनगर फौजी कैंप के संमुख ट्रक खड़ी हो जाती। सैनिकों का दल अपना समान लेकर अपने अफसर की आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा था।

रणजीत को आज्ञा मिल चुकी थी—अगले दिन उसे फ्रंट लाइन (प्रथम पंक्ति) पर जाना होगा। इतने दिनों से स्वदेश के स्वर्ग कश्मीर के संबंध में जो कुछ वह सुन चुका था, आज प्रत्यक्ष उसे देखने की लालसा प्रबल हो उठी। अभी दो बजे हैं, छः बजे तक उसे कैंप में दाखिल हो जाना है। केवल चार घंटे का समय है। इतनी देर में वह क्या देख सकेगा लेकिन इस

देखने से आवश्यक उसका स्नान करना है। दो दिन जगते कटे। राह की गर्द, गुबार और पसीने से उसका शरीर चुनचुना रहा था। एक बार स्नान कर लेने पर वह हलका हो जायगा। अभी आगे चल कर कितने दिन ऐसे मिलेंगे जब उसे नहाने खाने तक का अवकाश नहीं मिलेगा। युद्ध में जीवन मरण का प्रश्न रहता है। प्रतिदिन के नियमित कृत्यों के लिए समय और स्थान दोनों का अभाव रहता है।

झोले में साबुन और तौलिया रख कर वह मैदान में आया। अपने दो एक साथियों से उसने साथ चलने को कहा। वे हँसे और कहने लगे – अरे यार स्नान करके जान देनी है क्या ? फौरन निमोनिया पकड़ लेगा।

रणजीत अकेला ही आगे बढ़ा। रास्ते में एक ताँगे वाले से भेंट हुई। रणजीत ने उसे बतलाया कि पहले स्नान करने के बाद वह स्वामी शंकराचार्य के मठ जायगा और फिर निशात बाग देखेगा।

ताँगे वाले ने बड़ी नम्रता से कहा—हजूर बैठें।

डल झील के एक घाट के समीप ताँगे वाले ने नहाने के लिए स्थान बतलाया। उसे स्वयं सैनिक के इस दुस्साहस पर आश्चर्य था क्योंकि काश्मीर के लोग ६-६ मास पर नहाते हैं।

तौलिया के सहारे बर्फीले पानी से स्नान करने पर रणजीत ने फौरन कपड़े पहन लिये। संपूर्ण शिथिलता नष्ट हो गयी और बड़े उत्साह से ताँगे पर बैठते हुए उसने कहा—चलो।

रणजीत की आँखें इधर उधर दौड़ रही थीं। उसने श्रीनगर आकर कुछ नवीन बातें देखीं जैसे लकड़ी के तख्तों पर तरकारियों की खेती। काठ के मकान और लकड़ी का हाउस बोट जिसमें अधिकांश लोग रहते थे।

रणजीत एक छोटी पहाड़ी के समीप आ गया था। ताँगे वाले के कहने पर वह उतरा। स्वामी शंकराचार्य का मठ उस पहाड़ी की चोटी पर था। मार्ग बड़ा सुडौल था। कुछ यात्री और भी चढ़ रहे थे। रणजीत भी चलने लगा बर्फीले पानी से जमा हुआ उसका रक्त पिघलने लगा था। वह निश्चित स्थान पर पहुँचा। मस्तक झुका कर उसने वंदना की। एक बार खड़े होकर उसने नगर की ओर दृष्टि डाली। नगर झीलों से ऐसा घिरा हुआ था जैसे किसी प्रतिमा को फूलों का हार पहना दे। चारो तरफ हरा भरा दिखाई

पड़ता था। कितना मनोरम दृश्य था। रणजीत तन्मय हो उठा। अभी उसे बहुत कुछ देखना है। वह नीचे उतरा।

निशात बाग में टहलते हुए वह विचार करने लगा कि आज जो कुछ मैंने देखा वह सचमुच दर्शनीय और अनोखी वस्तु है। उसने गत ६-७ वर्षों में बहुत कुछ देखा है। विदेशों में युद्ध करते हुए उसने अगणित चकित करने वाली चीजें देखी हैं। पृथ्वी, आकाश और समुद्र पर असंभव को संभव करनेवाले मानव ने अपने आविष्कारों का जाल बिछा रखा है। रणजीत ने सब कुछ ध्यान और कौतूहल से देखा है। अनहोनी और असंभव बात मनुष्य के लिए नहीं है। ऐसी धारणा उसकी हो गयी थी!

मखमली घास पर वह बैठा हुआ चिंतन कर रहा था। सामने चश्मे से गिरनेवाली धार के सहारे फव्वारे चल रहे थे। पेड़ों की कतार कितनी सुंदर प्रतीत हो रही थी। सेव, अखरोट, चीड़ और चनार के वृक्षों को स्पर्श करता हुआ पवन गंधमय हो रहा था।

एक तरफ विज्ञान के आविष्कार और दूसरी ओर विधाता और प्रकृति की श्रृंगारमयी रचना। रणजीत दोनों की तुलना कर रहा था। लोहे, लकड़ी की भूमि पर मनुष्य मशीन की खटखट के साथ हृदयहीन और कठोर बन गया है। वह खून का प्यासा साम्राज्य बनाने की धुन में पागल हो रहा है। उसे अवकाश कहाँ जो प्रकृति की पहेलियों को बूझ सके!

अस्ताचल पर फ्रंट लाइन का युद्ध चल रहा था। इतना रक्तपात— इतनी लालिमा के साथ दिनकर का अवसान होगा। रणजीत उठा। उसे अपने कर्तव्यों का ध्यान हुआ। ताँगे पर चढ़ कर वह फौजी कैंप में पहुँचा।

(२)

फौजी नियमों का पालन न करके दुश्मन धोखे से हमला करता था। चार सौ कबीलों का दल सहसा टूट पड़ता। वे गाँव लूटते, स्त्रियों के आभूषण और मान लूटते, घरों मे आग लगाकर निकल भागते। यही क्रम चलता रहा। उनके अस्त्र पुराने थे वे खंजर और तलवारों के खिलाड़ी थे। कतलेआम में उन्हें आनंद आता था।

इधर से उचित उत्तर भी नहीं मिलता था कारण सैनिक संघटन साधारण था। कुशल सैनिक और अस्त्र शस्त्र का अभाव था।

जब से पंडित जवाहरलाल ने शेरे काश्मीर को आगे बढ़ाया है तब से युद्ध की तसवीर ही बदल गयी है। लोगों को निराशा, आतंक और मृत्यु के भय का लोप हो चला है। आधुनिक अस्त्र शस्त्र के साथ कुशल सैनिक मैदान में आये। राजा को सरकार ने सहयोग दिया। हवाई जहाज और ट्रकों का आवागमन हुआ।

अब फ्रंट पर विदेशों से लौटे दक्ष और निपुण सैनिक आज्ञाओं का पालन कर रहे थे। युद्ध में भीषणता बढ़ गयी थी।

कबीलों के पतन के साथ पाकिस्तान ने मोर्चा सँहाला। खुलकर जवाब दिया जाने लगा।

फ्रंट लाइन पर लड़ते लड़ते सैनिकों का दल आगे बढ़ गया था। शत्रु गहरी मार के कारण भाग रहे थे। इस भागने में भी कितनों का सफाया हो गया। घास की तरह कट रहे थे।

रणजीत एक पेड़ के सहारे छिप कर गोली चला रहा था। उसका निशाना ठीक बैठ रहा था। विजय की प्रसन्नता थी। सहसा एक गोली आकर उसकी जाँघ में लग गयीं। वह भूमि पर गिर पड़ा। आँखों के आगे चिन-गारियाँ छूटकने लगी। वह अचेत पड़ा रहा। सब सैनिक मैदान से चले गये थे। रात बड़ी डरावनी लग रही थी। जंगली जंतुओं की आवाज रात्रि की निस्तब्धता भंग करती थी। पवन के थपेड़ों से वृक्ष काँप उठते थे। रणजीत की आँखें खुलीं। उसने देखा आकाश में तारे झलमला रहे हैं। शीत के कारण उसका शरीर ठिठुर रहा था। खून काफी निकल चुका था। भयानक पीड़ा हो रही थी। बड़े साहस से उसने झोले में से तौलिया निकाल कर बाँधा। फिर अचेत होकर वह पड़ा रहा। उसके पैरों के पास कुछ आहट हुई। उसे भय था कि कोई शत्रु तो नहीं आ गया है। झलमला हो रहा था। उसने अपनी साँस खींच ली। मृतक की भाँति वह पड़ा रहा। उसके तलवे पर किसी ने हाथ फेरा। दबी आँखों से जो उसने देखा तो रोमांच हो उठा। अब क्या करे? जीवन का छुटकारा कठिन था। पास में जंगली भालू बैठा उसकी ओर देख रहा था।

उसने क्षण भर में ही जेब में हाथ डाला। रिवाल्वर निकाल कर पड़े पड़े इस तरह निशाना लगाया कि गोली भालू के पेट में लगी। वह चीत्कार करके आगे झपटा वैसे ही दूसरा वार हुआ। इस तरह भालू से रणजीत की जान बची।

वह घंटों उसी तरह पड़ा रहा। भूख और प्यास से व्याकुल था। उसने विचार किया कि इस तरह तो पड़े पड़े ही जीवन समाप्त हो जायगा। उसने उठने का प्रयत्न किया, लेकिन इतनी कमजोरी आ गयी थी कि उठते ही पैर लड़खड़ा पड़ते थे।

पास में पड़ी हुई एक लकड़ी की छड़ी के सहारे वह चलने लगा। उसे कोई रास्ता नहीं मालूम। कैंप दूर था। वह चलता, बैठता फिर भटकता हुआ चला जा रहा था। एक स्थान पर सोता दिखाई पड़ा। उसने झोले से कुछ बिस्कुट निकाल कर खाया और पानी पीकर वहीं विश्राम करने लगा। कोई दिखलाई पड़ता तो कितना अच्छा होता। अगर कोई शत्रु सामने आ जाय तो वह क्या करेगा? रिवालवर में पाँच गोलियाँ शेष हैं, वह हर तरह से उनका सामना करेगा। किसी तरह आत्म समर्पण नहीं करेगा। उसे एक दैवी शक्ति मिली। वह उत्साह से फिर आगे बढ़ा। सूर्य की प्रखरता से उसे उसे कष्ट हो रहा था। एक करारे पर चढ़ते हुए उसका पैर फिसल गया था। नीचे अथाह जल राशि चट्टानों से टकरा रही थी। एक हाथ पेड़ की शाखा पर और दूसरा लकड़ी के सहारे। किसी तरह सँहल गया नहीं तो चणभर में जीवन का अंत था।

रणजीत ने देखा कि पग पग पर मृत्यु मँडरा रही है लेकिन अभी तक वह उससे बचता ही चला जा रहा है।

एक जगह अखरोट के पेड़ के नीचे वह अपनी क्षुधा शांत कर रहा था। मार्ग में कुछ खट्टे जंगली सेव भी उसने खाया था। पेट में ज्वाला जल रही थी। संध्या हो चली है, कोई आश्रय नहीं मिला। आज की रात भी ऐसे ही कटेगी।

रणजीत ने दूर पर एक धुँधली छाया देखी। वह ध्यान से देखने लगा। एक काली आकृति सिर पर गठरी लिये चली जा रही थी। वह धीरे धीरे उसी जगह पहुँचने का प्रयत्न करने लगा। सूर्य पेड़ों की कतार के पीछे मलिन पड़ रहा था। उस जगह पहुँचने पर रणजीत ने देखा कि पहाड़ में एक गुफा सी है और उसमें लकड़ी का एक किवाड़ लगा है। उसने सोचा अवश्य ही इसमें कोई रहता होगा।

वह चुपचाप वहीं पड़ा रहा। कुछ देर के बाद एक बूढ़ी स्त्री काली पोशाक में भीतर से निकली, रणजीत चौंक उठा। वह पतली दुबली औरत बड़ी डरावनी मालूम पड़ती थी।

रणजीत की ओर उसकी दृष्टि गई। देखते ही उसने पूछा—कौन ?

सैनिक हूँ—उत्तर मिला।

क्या चाहते हो। यहाँ क्यों आये !

गोली से घायल हूँ—कैंप तक पहुँचने का सहारा चाहता हूँ।

स्त्री ने समीप आकर देखा। उसे विश्वास हो गया। उसने सहानुभूति-पूर्वक कहा—अच्छा चले आओ।

रणजीत को अपने हाथ के सहारे वह गुफा में ले गई। भीतर अंधकार था। कई जगह बड़े बड़े गोलाकार बने थे, जिससे उसमें हवा आ सके। गुफा के भीतर बड़े बड़े मिट्टी के गगरे और घड़े रखे थे। दूसरी तरफ जंगली जड़ी बूटियों का ढेर लगा हुआ था। स्त्री ने ध्यान से उसकी ओर देखा। उसने कुछ सामान लेकर एक खल में घोंटा। इसके बाद रणजीत के घायल स्थान पर उसका लेप चढ़ाया और कपड़े से बाँध दिया।

वह रणजीत के सामने बैठकर बड़े ध्यान से उसे देख रही थी। उसने पूछा—कुछ खाओगे ?

हाँ—

स्त्री ने मिट्टी के एक पात्र में दूध और दो मोटी रोटियाँ उसके सामने रखीं।

रणजीत खाने लगा। जीवन में इतना स्वाद किसी भी भोजन के पदार्थ में नहीं मिला था। इस मकई की रोटी में अमृत का सा स्वाद भरा है।

बूढ़ी ने पुआल का एक गद्दा बनाकर उसके सोने के लिए जगह बना दी। उसे ओढ़ने के लिए एक कंबल दिया।

सब व्यवस्था समाप्त करने पर वह रणजीत से घंटों बातें करती रही। रणजीत घोर निद्रा में सो रहा था। सुबह जब उसकी आँखें खुलीं तो उसने देखा गुफा में वह स्त्री नहीं थी। वह उठा, शरीर में पीड़ा नहीं थी। बाहर आया। घंटों मैदान में बैठा रहा। वह बूढ़ी घास पात की टोकरी लेकर आई। उसने पूछा—कैसा हाल है ?

ठीक है।—रणजीत ने कहा।

दर्द कम है ?

हाँ—

थोड़ी देर में बूढ़ी ने एक प्याला उसे पीने के लिए दिया। उसे पीकर रणजीत ने समझा कि कोई दवा की तरह काढ़ा है। पीते ही उसके शरीर में बिजली दौड़ने लगी।

कई दिन बीत गये। रणजीत अब बड़ी सरलता से चल फिर सकता था। वृद्धा के प्रयत्न से वह इतनी जल्दी अच्छा हो गया। अस्पताल में पड़ा रहता तो महीनों लगते। वृद्धा की औषधि पर उसे आश्चर्य था।

कई दिनों में रणजीत ने बूढ़ी के संबंध में जो जानकारी प्राप्त की उससे उसे ज्ञात हुआ कि लड़ाई के आरंभ में उसका लड़का मुहम्मद कबीलों द्वारा मारा गया था। उसके दो बच्चे और पत्नी श्रीनगर में ही रहती हैं।

रणजीत देखता बूढ़ी कार्य में व्यस्त रहती। कभी कभी कोई दूर से दवा के लिए उसके पास आता। इस तरह वह अपने जीवन का निर्वाह स्वतंत्रता से करती थी।

एक दिन रणजीत ने बूढ़ी से कहा—अब मैं जाना चाहता हूँ।

कहाँ जाओगे?

अभी तो श्रीनगर जाऊँगा वहाँ से छुट्टी लेकर घर जाने का विचार है।

घर पर कौन कौन है?

माँ, बाप, भाई।

औरत, बच्चे?

नहीं—

क्यों विवाह नहीं किया?

नहीं।

तब तुम स्वतंत्र हो।

फिर क्या माँ को देखने घर जाना चाहते हो?—पूछते हुए उसकी आँखें बरस पड़ीं।

रणजीत के सामने मुहम्मद की कल्पित आकृति आकर खड़ी हो गई।

दोनों एक दूसरे को मौन देख रहे थे।

× × × ×

गमकश
सबज़ार
गमकश
गुलजार

रणजीत झील के किनारे बैठा था। उसके कानों में ये शब्द भर उठे थे। उसने देखा माझियों का एक दल एक हाउस बोट खींचता चला आ रहा है। परिश्रम के समय उनके मुख से निकल रहा है गमकश जिसका तात्पर्य है गम से दूर रहो या गम को खींच लो। सचमुच इस दुनिया में जो गम से अलग हैं वे ही भाग्यशाली हैं।

रणजीत ने माझियों को संबोधित करते हुए पूछा—भाई तुम लोग कहाँ जा रहे हो?

हम लोग श्रीनगर जा रहे है।

क्या मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ।

चलो।

अच्छा ठहरो मैं सामान लेकर आता हूँ—कहते हुए रणजीत गुफा में गया। उसने सब हाल कहा। वृद्धा उसे पहुँचाने वहाँ तक आयी। चलते समय वह फूट कर रोने लगी जैसे स्वयं उसका मुहम्मद बिदा हो रहा हो।

साहब को पहुँचा कर हाउस वोट वापस लौट रही थी। रणजीत को पूर्ण सुविधा थी। कमरे में पलंग पर लेटा हुआ वह माझियों के स्वर में स्वर मिला रहा था।

गमकश

(३)

उस दिन श्रीनगर में सभा थी। बड़ा समारोह था। जनता उमड़ पड़ी थी दूर दूर से लोग आये थे। जनता में जागृति और उत्साह भरा था।

पं० नेहरू और शेख अबदुल्ला का भाषण हुआ। सभी मंत्रमुग्ध थे। जीवन में एक नई लहर दौड़ रही थी। आज अपने परम प्रिय नेता नेहरू के संकेत पर लाखों जाने निछावर होने के लिये प्रस्तुत हैं।

रणजीत सभा में बैठा ध्यान से भाषण सुन रहा था। उसके कानों में वे ही स्वर गूँज रहे थे। पहले हम गुलाम थे दूसरों के लिए युद्ध करते थे

अब हम स्वतंत्र हैं अपनी जन्मभूमि के लिए हँसते हँसते प्राण उत्सर्ग कर देंगे। हम दुनिया को दिखला देंगे कि हम कायर नहीं हैं, हमें अपने देश और संस्कृति पर अभिमान है !

रणजीत छुट्टी लेकर घर जाना चाहता था लेकिन आज भाषण सुनकर फिर फ्रंट लाइन पर जाने का उसने निश्चय कर लिया ! वह सीधे दफ्तर गया और उसने अपना विचार प्रकट किया। मेडिकल हुआ। डाक्टर ने कुछ कमजोर बतलाया। लेकिन रणजीत दृढ़ था उसने आग्रह किया। रणजीत मोर्चे पर धुँआधार गोलियों की वर्षा करता, उसे बड़ा आनंद आता। प्रतिदिन वह बड़ी तन्मयता से अपना कर्तव्य पालन करता। युद्ध का रूप बदल गया था। शत्रु पराजित होकर भाग गये थे। प्रायः एक नया दल पाकिस्तान से आता और छिन्न भिन्न हो जाता।

सहसा एक दिन कैंप में शोक छा गया। दुर्भाग्य से ब्रिगेडियर उस्मान वीरगति को प्राप्त हुए। उनके अंतिम शब्द प्रत्येक सैनिक के हृदय पर अंकित हो उठे।

'मैं तो चला लेकिन मेरे बाद बहादुरो कभी पीछे नहीं हटना।'

रणजीत उसी फौज का सिपाही था और विदेशों में भी ब्रिगेडियर उस्मान के आज्ञा पालन करने का सौभाग्य उसे प्राप्त था। अपने चिर परिचित अफसर का साथ छूटते हुए उसे हार्दिक क्लेश था। उसका हृदय व्यथित था। उसने सोचा कि एक सैनिक के कर्त्तव्य और भाग्य का लेखा विधाता ने यही तो लिखा है फिर चिंता क्यों ?

बदले की प्रवृत्ति भीषण हो उठी थी। प्रत्येक सैनिक अधिक शक्तिशाली दिखाई पड़ता था। आर्डर मिलते ही सैनिक शेर की भाँति टूट पड़ते थे। समस्त जंगल, पहाड़, और नदी भूकंप की तरह काँप उठती थी।

दोनों तरफ से प्रहार होते रहे। एक दिन शत्रु की ओर से हमला प्रबल हो उठा। आज विलक्षण गोले गिर रहे थे। पाकिस्तान की जैसे संपूर्ण शक्ति टूट पड़ी थी।

रणजीत अपनी आँखों से अपने साथियों का विध्वंस देख रहा था। वह विचलित नहीं हुआ, आगे बढ़ता ही गया।

कुछ देर में एक बहुत बड़ा धमाका हुआ। पहाड़ हिल उठा। चारों ओर से गर्जना हो रही थी। पशु-पक्षी झुलस उठे। नदी का पानी खौलने लगा। पत्ते पत्ते थर्रा उठे। क्षणभर में ही रणजीत के शरीर का कण कण वायु, जल, आकाश और मिट्टी से मिल चुका था। उसके शव को फौजी सलामी मिलने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। वहाँ तो स्वयं प्रकृति दीपक-राग अलाप रही थी।

दृष्टिकोण

रमिया की चाल चलन पर संदेह होते हुए भी सुधुवा कुछ नहीं बोलता था। जब कोई कुछ कहता भी तो वह अनसुनी कर जाता। रमिया से संकेत द्वारा उसने कई बार समझाने का प्रयत्न किया; किंतु तनककर जब वह उत्तर देती तो वह चुपचाप रह जाता। रमिया को वह रुष्ट करके नहीं रहना चाहता था।

रमिया उसकी सरलता का लाभ उठाती थी। वह दूसरों के यहाँ बर्तन माँजती, लेकिन उसकी गृहस्थी का कार्य सुधुवा ही करता। वह घर घर पानी भरता था और अपनी खेती पर बैल की तरह जुता रहता था।

सरसों और मटर के फूलों को बिखेरकर बसंती बयार ने सुधुवा के हृदय में कुछ गुनगुना दिया। वह बिरहा गाता हुआ अपने खेत से लौट रहा था। उसने दूर से रमिया को पहचान लिया। रमिया किसी से बातें करती हुई झोपड़ी की ओर जा रही थी। सुधुवा को कौतूहल हुआ। वह जैसे उन दोनों की बातों को सुन लेना चाहता था। रहर के खेत के बीच में अपने को छिपाता हुआ वह समीप पहुँचा। अपने आवेग को रोककर वह सब देखता रहा—सुनता रहा!

रमिया जब झोपड़ी की ओर चली गई और उसका साथी लौट गया तो सुधुवा कुएँ के पास बैठ कर कुछ विचार करने लगा। राख के अंदर छिपी हुई चिनगारी ने सुलगकर अपना रूप दिखलाया। वह उठा। झोपड़ी में आकर रमिया के प्रति उसने कुछ अपशब्द का प्रयोग किया।

रमिया भी उत्तेजित हो उठी। सुधुवा भी अपने को न सँहाल सका। उसका हाथ छूट पड़ा। दो चार घूँसे में ही रमिया मूर्च्छित हो गयी। उसकी नाक से खून निकला।

शांत होने पर सुधुवा ने पानी छिड़क कर उसे चैतन्य किया। रमिया को सुधुवा की पशुता पर आश्चर्य था।

सुधुवा की सज्जनता की प्रतिमा का विसर्जन हो चुका था। रमिया का साहस खुल गया। अभी तक जिन बातों को वह गुप्त रखना चाहती था,

उन्हें अब उसने स्पष्ट कर दिया। वह अधिक रात बीते अपनी झोपड़ी में वापस आती।

सुखुवा का जीवन पहाड़ हो गया। वह दिनभर परिश्रम करके भी रात में चैन की नींद नहीं सो पाता था। वह चुटकियों से अपने मन को मसलकर रह जाता था गाँव के ठाकुर बलवान थे। रमिया के प्रश्न पर उसका कुछ वहाँ न चल सकता था। उसकी अपनी पत्नी गाँव के मनोरंजन की सामग्री बनी।

एक दिन रमिया को छेड़कर उसने पूछा—क्यों रे; क्या तेरी चाल न बदलेगी ?

उसने रूखे स्वर में कहा—कैसी चाल ?

ज्यादा मत कहला, जो पूछता हूँ उसका उत्तर दे।

क्या चाहता है कि झोपड़ी में आना भी छोड़ दूँ।

मेरी बातों का यही मतलब है ?

और क्या है !

तब तू नहीं मानेगी ?

जैसा तू समझ।

सुखुवा की विकराल आकृति देखकर रमिया झोपड़ी से बाहर चिल्लाती हुई भाग रही थी—अरे, मार डालेगा। कोई जान बचा दे।

सुखुवा उसके पीछे दौड़ रहा था। क्रोध के कारण वह अपने को संहाल न सका, एक जगह ठोकर खाकर गिर पड़ा। रमिया को अवसर मिला। वह वह ठाकुरों के पुरे में पहुँचकर सुरक्षित हुई।

सुखुवा वहाँ पहुँचकर जब उसे पुकारने लगा तब दो चार लाठियों से उसका उत्तर मिला।

आज रमिमा की जान लूँगा और अपनी दूँगा। वह यही निश्चित कर चुका था, लेकिन पुरे के कुछ बूढ़ों ने समझाते हुए उसे उसकी झोपड़ी में पहुँचवा दिया।

(२)

गाँव के चौकीदार को उस घटना की सूचना मिली। दिन फटते ही वह सुखुवा के यहाँ पहुँचा। सुखुवा ने सब बाते दिल खोलकर कही। गाँव के

ठाकुरों की धाँधली से चौकीदार भी अप्रसन्न रहता था! चौकीदार ने उसे बदला का पूर्ण विश्वास दिलाते हुए थाना चलने के लिए उत्साहित किया।

सुधुवा किसी तरह चौकीदार के सहारे थाना गया। दारोगा ने सब सुन कर चौकीदार से संकेत किया। कुछ निश्चित हुआ। रपट लिखी गई।

पुलिस ने अपना कौशल दिखलाया। जमानत हुई। मुकदमा चला।

उस दिन से रमिया फिर झोपड़ी में नहीं आयी। सुधुवा का रोष दूना हो गया। इस दुर्घटना के कारण सुधुवा को अपनी चार बीघा भूमि भी रेहन रखनी पड़ी।

गवाह और सहानुभूति प्रकट करनेवालों का संघटन होने लगा। गाँव भर में इस मुकदमे के कारण चहल पहल मच गयी। सुधुवा ने दिल खोल कर गाँजे की पुड़िया खोली, किंतु कचहरी में कुछ नशे के कारण और कुछ ठाकुरों के भय से सुधुवा का प्रत्यक्ष साथ न दे सके।

बहुत प्रयत्न करने पर भी सुधुवा का मुकदमा खारिज हो गया। वह निराश होकर झोपड़ी में लौटा। ठाकुरों से बैर करके अब वह गाँव में कैसे रहेगा? यही समस्या उसके संमुख थी।

गाँव के कुछ बूढ़ों ने उसे परामर्श दिया कि इस आपत्तिकाल में कुछ समय के लिए गाँव छोड़कर कहीं चले जाना ही सुधुवा को उचित है।

कई दिनों तक सुधुवा अपनी झोपड़ी से बाहर नहीं निकला। रमिया के इस तरह चले जाने का कारण वह अपनी दरिद्रता ही समझता था। यदि उसके पास धन होता तो रमिया दूसरों का जूठा क्यों उठाती? धन उपार्जन की उसकी प्रवृत्ति जाग्रत हो उठी। आकांक्षाओं के आकाश में वह सुनहली किरणें देख रहा था। कलकत्ता की कमाई पर उसे भरोसा था।

गाँव छोड़कर जिस दिन सुधुवा रेलगाड़ी पर चढ़ा, उस समय चेतना उसके कान में कह रही थी—रमिया भी गई और जमीन भी रेहन हुई। दोनों ओर अंधकार है।

(३)

जमींदारों का आतंक समाप्त हो चुका था। हरी, बेगारी, नजर और चंदे कानूनी फंदे में फँसे हुए थे। भूमि का स्वामी रुष्ट और किसान प्रसन्न थे।

न्याय के संमुख अन्याय की उलझन उपस्थित की गई। व्यापार के शिकंजे में न्याय परास्त हो गया। कानून के पुतलों ने दफा १७१ (कानून माल) खोज निकाली। जमींदारों को तिनके का सहारा मिला।

सुधुवा को झोपड़ी को छोड़े हुए तीन वर्ष समाप्त हो चुके थे; किंतु रमिया और गाँव का कोई समाचार नहीं मिला। उसने जवाबी कार्ड तक भेजा। कोई उत्तर देनेवाला न था। सुधुवा सदैव रमिया का स्वप्न देखता। इतने दिनों नौकरी करके सुधुवा कुछ एकत्रित न कर सका। बड़े शहरों के खर्च से वह भयभीत हो उठा था। खाने पीने में ही तलब निकल जाती थी। उसे विलासिता के केंद्र इस महानगर से अपना गाँव ही प्यारा मालूम पड़ता था।

अकस्मात् उस दिन उसे अपनी भूमि के रेहनदार का पत्र मिला। उसका सारांश था—जमींदार ने भूमि बेदखल करा ली है। अब वह न उसकी रही न सुधुवा की ही रही।

शीघ्र ही वापस आने की प्रतिज्ञा पर कहीं सेठजी से पूरा वेतन प्राप्त हुआ। सुधुवा उड़ कर गाँव पहुँच जाना चाहता था। रमिया और अपनी भूमि को देखने के लिए वह चंचल हो उठा।

संध्या समय जब उसने गाँव के मेड़ को पार किया तो बरगद के पेड़ के नीचे उसे एक छोटी सी झोपड़ी दिखलाई पड़ी उसके समय में यह झोपड़ी न थी। उसे एक नवीन चिह्न मालूम पड़ा। प्यास लगी थी, सुधुवा झोपड़ी के सामने खड़ा होकर देखने लगा। अपने आप उसके पैर द्वार पर पहुँच गये। उसने देखा रमिया एक बच्चे को दूध पिला रही है।

सुधुवा ने आश्चर्य से कहा —रमिया !

उसने आँखें उठाकर देखा। बच्चे को खाट पर छोड़कर वह सुधुवा की की छाती में सिर लगाकर आँसुओं का हार पहिनाने लगी। सुधुवा का हृदय शीतल हुआ।

शांत होने पर रमिया ने सुधुवा से कहा—मुझे पूर्ण विश्वास था कि तुम अवश्य ही आओगे।

सुधुवा ने उत्सुकता से पूछा—जमीन कैसे बेदखल हुई ?

रमिया ने उसे बतलाया कि कारिंदा ने खेत बेदखल कराकर बंदोबस्त अपने एक संबंधी के हाथ कर दिया है।

किस दफा में और कैसे जमीन निकल गई, यह तो सुधुवा को समझने की सामर्थ्य नहीं, लेकिन इतना वह अवश्य जानता है कि रमिया के कारण खेत रेहन रखना पड़ा था।

उसने पूछा—यह बच्चा किसका है रे ?

रमिया ने कहा—तेरा।

सुधुवा खिल उठा। उसने अपने मन को समझाया—रमिया मिल गई, भूमि हाथ से निकल गई। कोई चिंता नहीं, किसी तरह दिन कट जायँगे। अपना पौरुष रहेगा तो गुजर बसर हो ही जायगी।

सुधुवा को विश्वास था, वह पंचों और जात के लोगों को भोज भात देकर मना लेगा। भूमि से अधिक उसे रमिया की आवश्यकता थी।

धूप छाँह

अगणित आकांक्षाओं की रेखाएँ कल्पना की कसौटी पर घिसकर जब धुँधली हो जाती हैं, तब चंचल मन स्थिरता के आँचल में लुक छिप कर रहना चाहता है।

वह उल्लास से भरी चाँदनी रातें अमावस्या की अँधेरी में परिणत होकर तारों से अपने जीवन की कटुता का विवरण देना चाहती हैं, किंतु प्रकृति का शांत वातावरण उन्हें मौन बनाकर उन टूटे हुए तारों की ओर संकेत करता है, जो क्षणभर के लिए उज्ज्वलता उड़ेलकर अपना अस्तित्व मिटा जाते हैं।

वैभव और सुख की गोद में पला हुआ यौवन अपनी समस्त विभूति लुटा देने के बाद निराशा की हँसी हँस कर स्वप्न चित्रों को एकत्रित करने लगता है।

कालिंदी मन ही मन रोती है, गाती है। वह उपवन के पुष्पों से गुन-गुनाती हुई अपनी जीवन गाथा सुनाती है।

ओस की बूँदें पँखुड़ियों से छलककर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करती हैं।

कल रात में रजनीगंधा खिली थी। कालिंदी के हृदय में भावुकता का संचार हुआ। उसकी भावनाएँ जाग्रत हुईं।

दो युग पूर्व की घटनाएँ उसकी आँखों के संमुख आकर खड़ी हो गयीं। उस विशाल अट्टालिका के एक बड़े कमरे में झाँड़ फानूस लगे हुए बेलजियम के शीशे, मुगल और राजपूत कलम के कलापूर्ण चित्रों से कमरा जगमगा रहा था। विलासिता की सभी आवश्यक सामग्री प्रस्तुत थी। कालिंदी गुलदस्तों में रजनी गंधा और अन्य पुष्पों के गुच्छों को सावधानी से सजा रही थी।

'जरा यहाँ आओ कलिंदे'—कमलाकांत पीने में व्यस्त थे।

'आती हूँ।'—कालिंदी अपने कार्य में तन्मय थी।

कमलाकांत उस बड़े शीशे में ध्यान से उसकी आकृति देख रहा था। आबरवें की फिरोजी साड़ी में कालिंदी का छरहरा शरीर उसे मुग्ध किये हुए था।

कालिंदी उसके समीप पहुँची। कमलाकांत ने पूछा—'तुम्हें यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है ?'

सरकार के साथ भला कष्ट हो सकता है ?

कालिंदी के उत्तर से कमलाकांत को संतोष हुआ। उसने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—बैठो, मेरी फूलो की रानी !

समय उड़ते हुए पत्ती की भाँति चला गया।

प्रतिदिन का वासनामय जीवन खीझ उठा। आकर्षण शिथिल हुआ। आपस में अनबन चलने लगी।

एक दिन कमलाकांत ने रोष में आकर कहा—अरे तू मालिन की बच्ची, इस योग्य नहीं थी कि यहाँ तुझे स्थान मिलता।

कालिंदी ने भी उत्तेजित होकर कहा—तो मेरी प्रार्थना नहीं थी कि आप आश्रय दें। आपके भुलावे में आकर अपने बूढ़े पिता को भी छोड़ बैठी। सब कुछ त्याग देने पर यही पुरस्कार मिला।

उस दिन की बातें घुन की भाँति कालिंदी की हृदय को चालने लगीं। उसने सोचा मैं जिस समुदाय की हूँ उसी में रहती तो यह व्यंग्य न सुनना पड़ता। तुच्छता के मस्तक पर ठेस लगी।

अकस्मात् एक दिन बिना कुछ लिये हुए उस विशाल भवन से कालिंदी खिसक गयी।

यौवन के मद में भरी कालिंदी स्वतंत्रता के मार्ग पर बे रोकटोक चलने लगी। कोई कहने वाला न था। जो चाहती करती।

परिवर्तन ही उसका लक्ष्य बन गया। कमलाकांत के बाद वह किसी से संतुष्ट न हुई। यौवन पथभ्रष्ट होकर अपना सर्वस्व खो बैठा। कोई उसका साथी न बना।

दृश्य पलकों से ओझल हो गये।

इतने समय के बाद विस्तृत घटनाएँ जैसे सजीव होकर बोलने लगीं। कालिंदी के मन में एक भीषण तूफान उठा। वह अपने एकाकी जीवन से

ऊब उठी थी। कमलाकांत को एक बार फिर देखने को उसकी लालसा प्रबल हो उठी।

कालिंदी फूलों का व्यवसाय करती है। प्रातःकाल पुष्पों से भरी टोकरी लेकर वह गंगा तट पर आती। भक्त और गंगा स्नान करने वाले ही उसके ग्राहक बने। बहूजी और सेठानियों से अधिक पैसे उसे मनचले भक्तों से ही प्राप्त होते थे। इसलिए वह दूर अकेली अपनी टोकरी बिछाये हुए बैठी रहती।

पैसों के साथ मुस्कराहट उसकी कुशलता थी। उसने फूलों से रूप का गठबंधन जोड़ा था। दोपहर की गरमी में मुरझाये हुए सुमनों से वह अपने यौवन के खंडहर में लौटती हुई प्रतिध्वनि की तुलना करती।

प्रतिदिन उसे कितने ही रंग बिरंगे पशु और नरनारियों का सामना करना पड़ता। दिवाकर जब अपनी यात्रा का आधा मार्ग पार कर जाते हैं तब अपनी खाली टोकरी लेकर वह तट पर जाती है। मिट्टी से दाँत साफ कर, दो डुबकियाँ लगाकर वह वापस लौटती है।

उसके जीवन में अब कोई नवीनता नहीं दिखलाई पड़ती। किंतु स्थिर होकर दो रोटियों पर संतोष करना उसकी मनोवृत्ति के अनुकूल न था। उस दिन कालिंदी को उस अट्टालिका के एक सेवक से सरकार जी के पतन का विवरण मिला था। प्रतिहिंसा की प्रसन्नता छलक पड़ी। कालिंदी अपनी आँखों से एक बार फिर कमलाकांत को देखना चाहती थी; किंतु पता नहीं क्यों उसका साहस उस ओर जाने के लिए रोकता रहा। अंत में उसने मन को दृढ़ता की डोर में बाँधकर उस विशाल भवन में प्रवेश किया।

बहुत देर के बाद कहीं सरकार जी को सूचना मिली थी।

कालिंदी कमलाकांत के संमुख खड़ी थी।

चित्रपट के रंगमंच पर सफल अभिनेत्री की भाँति कालिंदी ने अपना वार्तालाप पूर्ण किया।

कमलाकांत गंभीर होकर सुनता रहा। कालिंदी ने अपने जीवन को छिन्न भिन्न करने का अपराध उस पर लगाया था।

कमलाकांत उत्तर देकर तर्क को अधिक बढ़ाना नहीं चाहता था।

चलते समय जब कमलाकांत ने इस का भेंट का तात्पर्य पूछा तो कालिंदी ने केवल एक बार देख लेने का अभिप्राय ही बतलाया। कमलाकांत

की आर्थिक स्थिति देखते हुए उसे साहस नहीं हुआ कि अपनी सहायता का प्रश्न वह उपस्थित करे।

+ + +

कमलाकांत से मिलने के पश्चात् कालिंदी का मन फूलों के व्यवसाय से उचट गया। उसने फिर दासी बनकर उसी स्थान पर अपना जीवन निर्वाह करने की इच्छा की। अपनी लालसा को छिपाये हुए वह अवसर ढूँढ़ रही थी।

उस दिन निर्जला एकादशी थी। कालिंदी दिनभर व्यस्त थी। ग्रहकों की भीड़ उमड़ पड़ती थी।

दिनभर की थकी कालिंदी अपने पैसों को जोड़ रही थी उसने देखा कमलाकांत उसे देखता हुआ आगे बढ़ गया। लौटकर फिर इधर से साक्षात् होगा ऐसा उसका विश्वास था। उसकी टोकरी खाली थी। कमलाकांत को भेंट में देने के लिए कुछ भी न बचा था।

लौटते हुए कमलाकांत ने पूछा—माला फूल दोगी?

सब बेंच चुकी हूँ। अब कुछ भी शेष नहीं बचा है।—कहते हुए कालिंदी की आँखें चार हुईं।

कमलाकांत ने फिर कहा—यहीं बैठती हो?

साहस बटोरकर कालिंदी ने कहा—हाँ, पर यदि एक दासी का स्थान भी मिल जाय तो इस धंधे से छुटकारा मिले।

कमलाकांत खड़ा था? उसने कहा—बहुत देर हो गयी। जीवन का क्रम जैसे चल रहा है, वही ठीक है।

कालिंदी ने देखा बरसाती बादल उस पार धूप छाँह की दौड़ लगा रहे हैं। कोई किसी का नहीं है जीवन में यह धूप छाँह का क्रम बनता बिगड़ता रहेगा।

———

न घर का न घाट का

प्रभात के समय दांतों पर नीम की दातुन घसते हुए मैं अपनी छत पर जब टहलता रहता, उसी समय परदेसी अपना गदहा लाकर खड़ा करता। उस पर कपड़ों का एक बड़ा गट्ठा लादता और उसके ऊपर अपनी लड़की निहोरी को बैठा देता। इसके बाद तत्काल ही गदहा अपने आप चल पड़ता था।

प्रतिदिन निश्चित समय पर परदेसी का कार्यक्रम आरंभ होता था। मैं उसकी नियमित गति को देखकर मन ही मन विचार करने लगता कि इस संसार में पेट की समस्या ने सभी को व्यस्त बना दिया है, यह कोई नई बात नहीं है, किंतु परदेसी को देखकर मेरे मन में यह भावना उठती, जैसे परदेसी ही संसार के श्रम का प्रतिनिधित्व करता था।

लोकोक्ति प्रसिद्ध है, धोबी का कुत्ता न घर का, न घाट का। श्रम के साकार प्रतिनिधि परदेशी के पहरों का प्रहरी जब मर गया तो वह भी फिर अधिक न जीवित रह सका। जीवन की एक कारुणिक कथा जो पग पग पर साकार होती है।

परदेसी मेरे पड़ोस में ही रहता था। उससे कपड़ा धुलवाने में सुविधा यह थी कि जब चाहे कपड़ा धुलकर आ गया, लेकिन वह स्वभाव का बड़ा अक्खड़ था। पहले पहल तो वह सीधे मुँह बात भी नहीं करता था, उसे अपनी कला का गर्व था। दो रुपये कोड़ी से कम कपड़ा धोता ही नहीं था, मँहगी का युग था, साबुन, सोडा, रेह सब कुछ मँहगा, चावल खाने को मिलता नहीं, कपड़ों में कलफ के लिए कहाँ से लाये?

उस दिन मैं बड़े ध्यान से कोई पुस्तक पढ़ रहा था, परदेसी मेरे कमरे के द्वार पर कुछ देर से खड़ा था, मुझे पता नहीं था, उसने बड़ी उत्सुकता से कहा—बाबू जी!

मैं चौक उठा। उसे देखकर मैंने पूछा—क्या है?

कोई चीज क्या आप भूल गये? उसकी आँखों में रहस्य की छाया छिपी हुई थी।

कौन सी चीज ?—मैंने पूछा।

आप बतलाइये ?—उसने कहा।

साफ साफ क्यों नहीं कहता ?—झुँझलाते हुए मैंने कहा।

एक दस रुपये का नोट मेरे पलंग पर उसने रख दिया।

मैंने पूछा यह कैसा ?

आपके कुरते में था—कहते हुए मेरी दृष्टि का अध्ययन कर रहा था।

कुरते की जेब से निकालना भूल गया।—कहकर मैं अपनी पुस्तक पढ़ने लगा। अपनी प्रशंसा न सुनकर संभवतः वह उदास लौट गया था।

उसी दिन परदेसी के प्रति मेरे हृदय में सद्भाव उत्पन्न हो गया था।

कपड़ा लेने और देने के अतिरिक्त भी प्रायः परदेसी मेरे यहाँ आकर घंटों बैठा रहता। वह तरह तरह की बातें करता। जिज्ञासा और कौतूहल की प्यास उसकी बुझती नहीं। मैं उसके प्रश्नों से कभी ऊब उठता था। अनेकों बार उसे हटाने की चेष्टा करने पर वह हटता नहीं था बल्कि पलंग के और समीप आकर बैठ जाता था।

जब कभी रुखे स्वर में मैं कहता—'अबे सुराही छू लेगा क्या ?

वह बड़े अभिमान से कहता मैं भी आदमी हूँ बाबू जी !

वह खूब बातें करता। उसकी बातों पर मुझे कभी हँसी आ जाती। मैं कहता—इतने छोटे जानवर पर खुद बैठकर जब तू टिक टिक करता है तब अपने को क्या समझता है ?······सचमुच उसकी। बातों में मुझे बड़ा आनंद मिलता। वह एक उपन्यास की भाँति आकर्षक हो जाता था। दूसरी ओर कभी उसकी घरेलू चर्चा बड़ी दुःखद बन खड़ी हो जाती। वह अपनी पत्नी बुधिया से तंग था। अकस्मात् जैसे तूफान आता और वह चुप चाप अपनी कोठरी के कोने में पड़ जाती। दिन रात वैसे ही पड़ी रहती, कोई काम नहीं करती। अकेले बेचारे परदेशी को गदहे के दाना पानी से लेकर अपना चूल्हा चौका तक सब कुछ करना पड़ता था। दिन भर घाट से थककर लौटने पर यह समस्या उसके सामने आ जाती थी। उस समय उसकी समस्त प्रसन्नता और हँसमुख स्वभाव ठोकर खाकर पराजित हो जाता था।

भूत और चुड़ैल के आक्रमण से वह भयभीत हो उठता था। उसका विश्वास था कि किसी विकट चुड़ैल के चक्र में बुधिया पड़ गई थी जो समय

समय पर आकर उसको बौखला देती थी। मुँहमाँगी वस्तुओं से सत्कार होने पर भी वह बुधिया का पिंड नहीं छोड़ती थी और रात में जिस समय ओझा आकर चुड़ैल के 'कबुलवाने' आदि की प्रणालियों का प्रयोग करता वह पूरा पड़ोस उस अभिनय का आनंद लेता।

परदेसी इसमें बुधिया का कोई दोष नहीं समझता था। यह सब उसकी भौजाई की करमात थी। उसी ने ऊपरी फेर रचा था, उसी के कारण परदेसी ने अपना बाप दादे का मकान छोड़ा। भाई से अलग होकर किराये के घर में चला आया था। इसी बुधिया के लिए उसने कोई बात उठा नहीं रखी थी लेकिन चुड़ैल पीछा नहीं छोड़ती थी।

मैंने देखा कि दिन पर दिन परिस्थितियों में उलझकर परदेसी दुर्बल होता जा रहा था। उसका लंबा छरहरा दैत्य की भाँति बलिष्ट शरीर मोम-बत्ती की तरह गलता जा रहा था।

मेरे समझाने पर उसने जिन जिन बातों का वर्णन किया उसका पूरा विवरण देना यहाँ व्यर्थ होगा क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से देश में जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उससे निम्न और मध्यम श्रेणी के लोग भली-भाँति परिचित हैं। पेट भर अन्न की व्यवस्था करना कितना कठिन समस्या है? इसे सभी जानते हैं। ऐसी स्थिति में परदेसी, बुधिया, निहोरी और एक गदहा। चार जीवों के पेट की ज्वाला शांत करना साधारण बात नहीं थी। इन सब प्रश्नों के मध्य में जब ग्राहक पैसा देने में बहाना करते तब परदेसी विचलित होकर अपने भाग्य को दोष देता।

उस दिन सवेरे दरवाजा खुलते ही परदेसी दालान में आकर बैठा था। मैंने उसे देखकर पूछा—'क्या बात है? इतने सवेरे कैसे आया?'

उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। बड़े व्याकुल स्वर में उसने कहा—'बड़ा अंधेर हो रहा है, देखिये रात में कलुआ ने मेरे गदहे को ऐसा मारा कि तब से वह जमीन से उठा नहीं।'

कलुआ, तिलकधारी सिंह का नौकर था। वह अपने मालिक का बहुत मुँहचढ़ा था। कई महीने हुए उसने एक बछड़े को अस्तबल में घास खाने के अपराध में डंडे से ऐसा मारा था कि एक टाँग ही उसकी टूट गई थी। उस मूक पशु को जब सड़क पर लँगड़ाते हुए जाते मैं देखता तब

कलुआ की क्रूरता का स्मरण हो जाता था, मैंने कहा—'तूने उसके मालिक से जाकर नहीं कहा ?

अभी वहीं से आ रहा हूँ, वह कहते थे कि, तू अपना गदहा बाँधता क्यों नहीं। हाते में आकर यह रात में सोना हराम कर देता है, कलुआ ने ठीक किया।—एक साँस में परदेसी ने कहा—

'इससे मालूम पड़ता है कि मालिक के हुक्म से ही उसने मारा—मैं तिलकधारी की गतिविधि से भलीभाँति परिचित था।

परदेसी ने पूछा—इसके लिए कुछ हो नहीं सकता बाबू जी ? थाने पर जाऊँ ?

मैंने कहा—कुछ नहीं होगा।

हताश होकर परदेसी चला गया, तीन दिनों तक पहरों का वह प्रहरी पशु परदेसी की कोठरी के सामने पड़ा रहा, अंत में वह उठ कर खड़ा न हो सका और सदैव के लिए अपने स्वामी का साथ छोड़ कर चला गया।

परदेसी को गदहे की जान जाने का उतना दुःख नहीं था, उसे अपने साठ रुपये की हानि की विशेष चिंता थी।

(३)

संध्या समय परदेसी कपड़ा धोकर लाया था वह सिर से चादर ओढ़े था,—उसकी आँखें चढ़ी थीं, मैंने पूछा—क्या हाल है ?

बुखार बराबर रहता है खांसी से बड़ा कष्ट है—उसने कहा—

अपनी जान देगा क्या ? मैंने इतना समझाया लेकिन तू कुछ समझता नहीं।—मैंने कहा।

न करने पर चलेगा कैसे बाबूजी !

जब न रहेगा तब कैसे चलेगा ?

भगवान गरीबों की नहीं सुनता, ये पैसेवाले अपने धन के बल पर आनंद लेते हैं और यहाँ दिन रात खटने पर भी दाना नसीब नहीं होता।'

उस दिन के बाद फिर परदेशी कपड़ा लेने नहीं आया। उसके स्थान पर अब बुधिया ही आती थी। उससे परदेशी का सब हाल मालूम होता।

डाक्टर, वैद्य सबका इलाज हुआ लेकिन कोई लाभ न हुआ। दिन पर दिन परदेशी का रोग बढ़ता ही गया। बुधिया ने बतलाया था कि परदेशी की भौजाई ने ओझा को बहुत पैसा देकर कारण कराया है।

अंत में इसी कारण ने परदेशी के जीवन का अंत कर दिया। बुधिया का यही विश्वास है। उसने अपनी विगत करनी पर कभी विचार नहीं किया।

बुधिया के साथ निहोरी आई तब मैंने उससे पूछा—'तेरा बाबा कहाँ है ?

उसने तुतलाते हुए कहा—घात।

मैंने पूछा—कब आवेगा ?

वह चुपचाप मेरी ओर देख रही थी। बुधिया विलाप करने लगी। रोते रोते उसके आँसू सूख गये थे।

अंधेरी रात में सन्नाटे को चीरती हुई बुधिया की रुदन गाथा अब भी कभी कभी सुनाई पड़ती है।

उस गुणावली में परदेशी के जीवन की समस्त बिखरी हुई घटनाओं का संकलित इतिहास रहता है।

नागरिक अधिकार

दो आने लेगा ?

नहीं बाबूजी, चार आने ।

अच्छा तीन आने दूँगा ।

फिर दूसरी सवारी बैठा लूँगा ?

हाँ, हाँ, बैठा लेना ।

एक चौदह वर्ष का बालक रिक्शे पर बाबूजी को बैठाकर आगे बढ़ा । वह रिक्शे की दोनों हैंडिल पर झुका हुआ अपनी दृष्टि दूसरी सवारी की खोज में दौड़ा रहा था; किंतु कोई आता दिखाई नहीं पड़ा । अंत में वह गांधी चौराहा और जवाहरनगर की आवाज लगता हुआ धीरे धीरे जा रहा था, लेकिन कोई सवारी नहीं मिली । रिक्शेवाला एक चौमुहानी पर खड़ा होकर कुछ देर प्रतीक्षा करने लगा ।

सामने नल की बदबू से घबड़ाकर बाबूजी ने कहा—अबे, चलता है कि यहीं घंटों लगा देगा ?

अभी चला बाबू जी, उतनी दूर अकेले ले चलने में पेट नहीं भरेगा ।

छोटा सा तो तेरा पेट है ! कितना खायेगा ?

घर में माँ भी है बाबूजी !

और कोई पैदा करनेवाला नहीं है ?

नहीं बाबूजी माँ बीड़ी बनाती थी, लेकिन बेचारी बहुत दिनों से खटिया पर पड़ी है ।

उसकी करुण वार्ता का कोई प्रभाव बाबू साहब पर नहीं पड़ा । कुछ पैसे और देकर अकेले ही ले चलने की आज्ञा उन्होंने नहीं दी ।

इतने में एक मोटी तोंद वाले मारवाड़ी सज्जन रिक्शे के पास आकर पूछने लगे—जवाहर नगर का क्या लेगा ?

तीन आने सेठजी !

दो आने ।

छ पैसे गांधी चौराहा और तीन आने जवाहर नगर का तो रेट है, मैं ज्यादा नहीं मांग रहा हूँ।

सेठजी रिक्शे पर बैठ तो गये, लेकिन बाबू साहब के सिकुड़ जाने पर भी वह उनके ऊपर लद गये थे। इसके अतिरिक्त सेठजी के पसीने की दुर्गंध से बाबू साहब दाहिनी ओर मुँह फेरकर मुड़ गये।

बोझ भारी था। पैसों की चिंता में बालक रिक्शेवाले ने परिश्रम पर विचार नहीं किया। अब वह अपनी संपूर्णशक्ति का प्रयोग कर रहा था। वर्षा के अंतिम दिन सूर्य के प्रकाश को प्रखर बनाकर मनुष्य को विचलित कर रहे थे।

मार्ग में चलने वाले लोग अपनी दृष्टि गड़ाकर रिक्शेवाले और उस पर बैठने वाले दोनों व्यक्तियों को देख रहे थे। किसी ने खुल कर व्यंग्य किया, किसी ने मौन होकर जनतंत्र की शासनप्रणाली की सराहना की। सचमुच स्वतंत्रता का बड़ा सुंदर उदाहरण था!

गांधी चौराहे को जो सड़क गयी थी वह पहाड़ी ढालुआं मार्ग की भाँति थी और चढ़ाई में शक्ति की आवश्यकता थी। रिक्शेवाले पैदल चलकर सवारी घसीटते थे। यहाँ आकर बालक ने अपने संपूर्ण बल का प्रयोग किया। वह हाँफ रहा था, किंतु बैठनेवालों को तरस नहीं, वे अपने पैसों का रस निचोड़कर चूस जाना चाहते थे।

हाय रे पेट! कहते हुए एक अधेड़ श्रमिक ने बालक को सहयोग दिया। वह पीछे से रिक्शा ठेल रहा था। किसी तरह चढ़ाई समाप्त हुई। इसके बाद जवाहर नगर तक ढालुआँ मार्ग बिना परिश्रम के लुढ़का देने पर पूरा हो जाता था। केवल ब्रेक पर सावधानी रखनी पड़ती थी, किंतु प्रायः दुर्घटना इसी स्थल पर हुआ करती थी। रंगरूट रिक्शेवाले 'रेस' का कौशल यहीं पर दिखाते थे लेकिन बालक रिक्शेवाले ने संयम से कार्य किया।

उस दिन मालिक को 'चार्ज' देने के बाद तेरह आने पैसे उसे बचे थे। आज किसी अच्छे की बोहनी हुई थी जो इतना मिल गया था। नहीं तो किसी किसी दिन 'चारज' का पैसा भी पूरा नहीं पड़ता था और तब उदास और हताश होकर दिनभर की चर्या अपनी माँ को वह सुनाता था।

खाट पर पड़ी उसकी माँ जब पूछती तुलसी आज कितना पैसा मिला, तब तुलसी अपनी मां को सब हिसाब जोड़ाता था। वह एक एक पैसा अपनी मां को दे देता था। मां कुछ देती तो वह वापस कर देता। आटे दाल का ही पूरा हिसाब नहीं बैठता, फिर वह लेता कैसे? बचपन की आपत्तियों और माता के घोर परिश्रम ने उसे गंभीर बना दिया था। अन्य बालकों की भाँति वह खेल कूद में दिलचस्पी नहीं लेता था। स्कूल से लौटनेपर वह अपनी मां के पास बैठकर बीड़ी का पत्ता काटता था।

पति के देहांत के पश्चात् जिस श्रम और सहनशीलता से तुलसी की मां ने अपना दिन काटा, वह पड़ोस के सभी लोग जानते हैं। वह खुद खटकर सब व्यवस्था कर लेती, तुलसी उसकी आँखों की ज्योति था।

माता की अशक्त अवस्था देखकर बाध्य होकर तुलसी को उपार्जन के पथ में दर दर भटकना पड़ा और अंत में रिक्शा चलाने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन उसके संमुख नहीं था।

उस दिन जनतंत्र दिवस था, बाजार बंद था, स्कूल कालेज और सरकारी दफ्तरों में सब जगह छुट्टी थी। संध्या समय तिलक मैदान में सभा हुई। तुलसी ने अपने रिक्शे पर खड़े होकर देशभक्त नेताओं का भाषण सुना, लौटते समय तुलसी को सर्वत्र अंधकार दिखाई पड़ा। आज प्रसन्नता का दिन था। अंग्रेजों से मुक्त हुए ६ वर्ष बीत गये थे। स्वतंत्रता मिलने बाद इस आधे युग में भी जनता फूली फली नहीं। किसी में कोई उत्साह नहीं। निराशा और हाहाकार का आतंक छाया हुआ था।

तुलसी ने अपनी माँ से नेताओं के भाषण का सारांश सुनाया। उसने बतलाया कि अब छोटे बड़े सबको समान अधिकार है। हमारा अपना राज्य है, हम खुद मालिक हैं, गुलाम नहीं।

माँ ने पूछा—बेटा आज तो पैसे तुझे ज्यादा मिले होंगे, भीड़ काफी रही होगी?

तुलसी ने जेब से निकालते हुए सात आने पैसे माँ के सामने रखा।

माँ ने पूछा—बस इतना ही।

हाँ, माँ, सरकारी 'बस' पर ही लोग टूट पड़ते थे। रिक्शेवाले खाली चक्कर काट रहे थे।

सरकार ने गरीबों की जीविका भी छीन ली है। मोटर चलाकर रिक्शे-वालों की रोजी खटाई में डाल दी है।'

सुना है कि सरकार सब रिक्शा बंद कर देगी। दिन पर दिन रिक्शा बढ़ते जा रहे हैं। लोग कहते हैं कि रिक्शा चलाने से आदमी की शक्ति नष्ट''' कहते कहते सहसा तुलसी मौन हो गया। उसे खाँसी आई। उसका दम घुटने लगा इसके बाद कै हुई जिसमें बहुत ज्यादा रक्त निकला।

तुलसी की माँ तत्काल ही चौंक उठी। उसने अपने हाथों से रक्त धोया। उसका कलेजा काँप उठा। थोड़ी देर में डाक्टर आये, उन्होंने देखकर बतलाया कि कलेजे की कोई नस फट गई है। दवा हुई. रात भर में कई बार खून उगलकर सूर्योदय के पूर्व ही तुलसी चल बसा।

नागरिकता का अधिकार प्राप्त करने के पहले ही अभागा तुलसी स्वतंत्रता को अपना अंतिम नमस्कार अर्पण कर गया था।

नागिन

इस संसार में जो कर्म को प्रधान समझकर दिन रात परिश्रम के फरसे चलाकर सुखद परिणाम के हरे भरे खेत में विश्वास की खेती काटना चाहते हैं, वे भी कभी कभी विस्मित होकर भाग्य की अचानक देन पर तरस उठते हैं।

फकीरचंद के भाग्य की कहानी गाँव में दूर दूर तक फैल गई थी। छोटे बड़े सभी को मालूम हो गया था कि फकीर को शाही समय की सुनहली मुहरों से भरा एक हंडा मिला था।

फकीरचंद की ख्याति हवा के साथ फैल गई। जब कभी किसी का विवाह, मालगुजारी अथवा संकट का समय सामने दिखाई पड़ता तो वह सीधे फकीरचंद का द्वार खटखटाता।

फकीरचंद भी किसी को निराश करके वापस नहीं लौटाता था। चार आने में रुपए के माल का सौदा वह खुलेआम करता था। पहले गाँव, फिर तहसील और अंत में जिले में उसके आधिपत्य की सीमा फैल चुकी थी। अपने जीवन में उसने पचीसों मुसल्लम गाँव और पचासों में कई आने के हिस्सा वह हस्तगत कर चुका था। एक बार जो फकीर के चंगुल में फँस जाता, मरने के बाद भी उससे उसको छुटकारा नहीं मिलता था। उसके बाल बच्चे भी उसी में उलझे रहते थे। जो जमीन एक बार उसके यहाँ बंधक पड़ती, वह उसी की होकर रह जाती। यह उसकी विशेषता थी। उसके स्वभाव और प्रणाली से प्रायः लोग परिचित थे फिर भी विवश होकर उसकी शरण में उन्हें जाना पड़ता था।

एक बार तीर्थस्थान से लौट कर एक साधू आया। उसे पता लगा था कि जिले में सबसे बड़ा धनी फकीरचंद है। अतएव दर दर न भटक कर वह एक ही स्थान पर अपना कार्य सिद्ध करना चाहता था।

फकीरचंद का दरबार लगा था। वह एक खाट पर पड़ा सटक से तंबाखू गुड़गुड़ा रहा था। उसने देखा साधू के साथ भीड़ चली आ रही है। सामने आने पर साधू ने पूछा—बच्चा फकीरचंद तेरा ही नाम है ?

लोग कहते तो ऐसा ही हैं—फकीर ने रूखे स्वर में उत्तर दिया।

साधु ने कहा—बच्चा मेरी एक प्रतिज्ञा थी जो आज तेरे द्वार पर पूरी होगी।

फकीर ने पूछा—कौन सी प्रतिज्ञा महाराज ?

मैंने एक प्रण किया था कि जब चारों धाम की यात्रा समाप्त कर लूँगा तो किसी एक ही माई के लाल के यहाँ भंडारा करूँगा जिसमें ग्यारह हजार साधुओं को प्रसाद मिलेगा।

मैं तो बड़ा साधारण आदमी हूँ—बाबा। किसी राजामहाराजा के यहाँ ही आपकी मंशा पूर्ण हो सकती है। मेरे यहाँ तो ग्यारह की व्यवस्था भी कठिन है।

देख बच्चा! राजामहाराजा के यहाँ यह कार्य नहीं हो सकता। यह तेरे ही जैसे आदमी का काम है। जिस तरह आकाश से फटकर तुझे मिला है, उसी तरह पानी की भाँति तू उसे बहा सकता है—साधू को मुहरों के हंडे का विवरण मिल चुका था।

फकीर ने कहा—लोग समझते हैं कि मुफ्त में मुझे हंडा मिल गया है, लेकिन किस तरह सर्प और नागिनों के मुँह से यह सोने का खजाना मैंने निकाला है, यह मैं ही जानता हूँ। अब क्या उसे लुटा दूँ! क्षमा कीजिये दयानिधान! मैं असमर्थ हूँ।

भीड़ के लोगों ने देखा कि फकीर खजाने की बातें स्वीकार करता है वह कल्पित ही नहीं—यथार्थ है। उनका विश्वास जम गया। सचमुच उसके हाथ लंबी रकम लगी है।

साधू ने देखा कि अब सरलता से काम होते दिखाई नहीं पड़ता। उसने दूसरा रूप धारण किया। बड़े उत्तेजित स्वर में उसने कहा—वह हो के ही रहेगा। नहीं तो तेरे इसी स्थान पर मैं अपना प्राण विसर्जित करूँगा।

फकीर ने आवेश में कहा—यह सब किसी दूसरे को समझाइयेगा। मैं इस चकमे में आनेवाला नहीं हूँ। ऐसे साधू मैंने बहुत देखे हैं।

अच्छा देख—कहते हुए साधू वहीं धूनी रमाये जमा रहा। सत्ताईस दिनों तक उसने अन्न जल ग्रहण नहीं किया। इसके बाद गाँववालों को संदेस देकर उसने अपने शरीर से प्राण अलग कर दिया। लोगों ने उसका

अंतिम वाक्य सुना था कि इस फकीरचंद के वंश में इस धन को भोगनेवाला कोई नहीं रहेगा। यह सब राख बनकर मिट्टी में मिल जाएगा।

उस घटना के बाद साधू की समाधि वहीं बनी और ग्यारह हजार साधुओं ने मिलकर उस भंडारे को सफल बनाया। सब हाथों हाथ हो गया। किसी को नहीं मालूम हुआ कि किसने इतना धन इस कार्य के लिये दिया था।

(२)

महीना पूरा भी नहीं बीता था कि फकीरचंद के घर बार के लोग एक एक करके काल के मुख में चल गये। फकीर अपनी आँखों से अपना सर्वनाश देखकर भयभीत हो उठा था। अंत में एकदिन वह भी पड़े पड़ा ही चल बसा। लोगों ने कहा कि उसे नागिन ने डस लिया था। केवल जीवित रह गया था उसका बड़ा लड़का अमरचंद। अमरचंद के संबंध में लोगों की धारणा थी कि साधू की उसने बड़ी सेवा की थी और अनेकों बार उसने उससे अन्न जल ग्रहण करने का अनुरोध किया था।

वर्षों बीत गये।

अमरचंद को कोई संतान न होती; उसकी पत्नी ने अपने निजी खर्च से पश्चिम के बाजार से खरीद कर एक लड़की मँगवाई अमर से विवाह करने के लिये। जिसमें उसकी संतान हो और भविष्य का अंधकार दूर हो।

उसका नाम रत्नावली रखा गया। उसकी सुंदरता अनोखी थी।

अमर के जीवन में उदासीनता छा गई थी। वह सब कामकाज देखता। उसकी संपत्ति अपने आप बढ़ती चली जाती थी।

रत्नावली अमर से संतुष्ट नहीं रहती थी। उसे गाने बजाने का व्यसन था। वह अपने कमरे में बैठी वीणा बजाया करती थी।

पिछली रात रत्नावली के कमरे में छिपकर कोई पुरुष आता है ऐसी सूचना अमर को उसकी पत्नी द्वारा मिली थी। दोनों एक दूसरे की तरफ देखते रहे। कुछ निर्णय नहीं कर सके।

अचानक एक दिन सुनाई पड़ा कि अमर और उसकी पत्नी दोनों एक ही पलंग पर निर्जीव पड़े थे। लोगों ने समझा उन्हें भी नागिन ने डस लिया होगा।

रत्नावली ने भोजन में विष देकर दो काँटों को मार्ग से दूर कर दिया। अब उसके पक्ष में कोई बाधक नहीं रहा। वह निर्भय होकर इतनी संपत्ति की स्वामिनी बनकर सुख का उपभोग करेगी।

रत्नावली का एक मात्र आधिपत्य था। उसके चरणों पर रुपये बरसते थे। देखने और समझने का अवकाश ही नहीं मिलता था। वह एक ही राग में लीन थी—वह था यौवन के उन्माद का राग। वह मदांध होकर मन-मानी करती। प्रबंध की ओर ध्यान न देती। वह सदैव किसी न किसी के संकेत पर चलती रहती। परिवर्तन ही उसके जीवन का लक्ष्य था। उसकी वासना रंग विरंगी की तस्वीरों की आराधना में तन्मय रहती। जवानी की अंतिम सीढ़ियों से उतरते हुए उसने देखा—उसके अगणित धनराशि के साथ उसके अगणित प्रेमी भी खिसक गये थे। अब केवल जमींदारी की आय ही शेष थी। चल संपत्ति सब चल बसी थी।

(३)

रत्नावली सशंक हो गई थी। सब उसे लूटते चले गये। उसका कोई सहारा नहीं था। वह स्वयं शासन-प्रबंध देखने लगी। कर्मचारी अब विशेष सावधानी से कार्य करते। उसकी आज्ञायें कठोर हुआ करतीं।

वीणा के तार टूट गये थे। यौवन का वेग शिथिल हो गया था। रत्नावली पूजा करती, देवी की आराधना करती। भोजन अपने हाथ से बनाती, जिसमें कोई विष न दे सके। उसका नियमित कार्यक्रम रहता था।

उसे यश और कीर्ति की लालसा जागृत हुई। उसने विचार किया—अँग्रेज तो व्यवस्था और नीति के कुशल होते हैं तो फिर क्यों न एक अँग्रेज मैनेजर रखकर रियासत का कार्य व्यवस्थित रूप से चलाया जाय?

उसकी कामना पूर्ण हुई। शासन भार अँग्रेज मैनेजर को देकर वह अपनी सोने और जवाहिरात की खाली तिजोरियों को फिर से भरा देखना चाहती थी।

अँग्रेज के प्रयत्नों से उसे रानी की पदवी भी मिल गई। उसका सितारा बुलंद हो गया। उसकी करतूतों का धब्बा धुल गया था।

बेचारा अँग्रेज बहुत दिनों तक टिक नहीं सका। पर्याप्त रुपया वसूल करने पर भी उसे वही सुनाई पड़ता था कि रुपया नहीं है, कर्मचारियों का वेतन कैसे दिया जाय! अंत में वह ऊबकर चला गया।

उसके बाद कितने देशी मैनेजर आये और चले गये। लेकिन ऊपर भेजे गये नोटों का बंडल फिर नीचे नहीं आया। वह तिजोरियों में ही भरता चला गया। कर्मचारियों के मासिक वेतन के लिये मैनेजर को छावनियों पर दौरा करना पड़ता। यही क्रम चलता रहा।

रानी के पुराने नौकर ने एक दिन पूछा हुजूर यह कागज का नोट रखने से अच्छा है कि सोना खरीद कर रखा जाय।

रानी झुँझलाकर कहा—क्या समझेगा! जब नोट बाहर जायगा तो लोगों की आखों पर चढ़ जायगा। लोगों की आँखों पर चढ़ने के बाद किसी दिन सरकार की आँखो में भी चढ़ सकता है।

नौकर ने स्वर में स्वर मिलाया।

रानी की मनोवृत्ति अवस्था के साथ बदलती गई। चीजें जब नष्ट हो जातीं, सड़ गलकर फेंकने योग्य हो उठतीं तभी वितरण के लिये भेजी जातीं। भोजन की सब सामग्री के साथ कोयला पर्याप्त कभी भी नहीं भेजा जाता था। इसी तरह की बहुत सी विशेषतायें थीं।

रियासत का उत्तराधिकारी कोई नहीं था। दूर के संबंधी आँखें गड़ाये बैठे थे। जब कभी गोद लेने की चर्चा चलती तो रत्नावली को खटका हो जाता—उसे विष देकर कोई कहीं मार न डाले।

उसे जीवन से बड़ी ममता हो गई थी। यह समस्त विश्व प्रलय की लहरों में बह जायगा लेकिन वह चिरकाल तक जीवित रहेगी—अमर रहेगी—ऐसा उसका विश्वास था।

गोदरेज की तिजोरियाँ नोटों से भर कर भूमि में गाड़ी जातीं। रियासत हाथ से निकल जाने पर यह सब काम देगा।

कई युगों के बाद।

रानी की मिट्टी फूँकने के पश्चात् संबंधियों ने सरकार से छिपाकर वह तिजोरी वाला स्थान खोदा। तिजोरी खोलने पर नागिन की एक बड़ी केंचुली के साथ केवल राख का ढ़ेर था।

———

निर्माता

उसके हृदय की सुंदरता जैसे किसी ने छीन ली हो। प्रभात की सुनहली किरणें, आकाश में इंद्रधनुष की रंगामेजी, बादलों के भीतर लुकता, छिपता, हँसता हुआ चाँद! उसे कुछ भी न अच्छा लगता।

बचपन उसका ठोकरें खाकर बीता। जवानी क्रूरता की पगडंडी खोद रही थी। विश्वास उठ जाने पर मनुष्य अपने हृदय की संपूर्ण सुंदर, सरस निधि खो बैठता है। लोग कहते—वह कठोर है, पत्थर नहीं लोहे से भी मजबूत उसका मन है।

वह कहता—युगों बीत गये, किंतु अविश्वास की खाई वैसी की वैसी ही रही। आकाश खोखला, पृथ्वी खोखली, हा''हा'''हा और मनुष्य भी खोखला! सचमुच विधाता ने बड़े खोखले मन से इसका निर्माण किया है। कोलाहल, अशांति और स्वार्थ की धधकती ज्वाला को शांत और चिरसुंदर बनाने के लिए प्रलय होगा और एक दिन यह अखिल विश्व ब्रह्मांड अपने ज्वालामुखी को जलामयी की गोद में समर्पित कर देगा। सृष्टि का विध्वंस होगा। यह निश्चित है, लेकिन मनुष्य के स्वार्थ की सीमा निर्धारित करना प्रलय के अस्तित्व से भी अधिक जटिल है।

वह चाहता था आकाश फट पड़े। सूर्य इतना प्रचंड हो जाय कि यह पृथ्वी जलकर राख हो जाय।

वह सदैव जीवन से द्वंद्व करता रहा। नरमुंड, रक्तपात, भीषण गर्जन यह सब उसके लिए बड़ा सरल था।

लड़ाई के मैदान में गोलियाँ चलता हुआ, वह अपने मन से पूछ बैठता—यह घट घट में बसनेवाला परब्रह्म परमात्मा है कहाँ?

उसे समस्त संसार धुँआधार दिखलाई पड़ता था।

(२)

संधि के पश्चात् देश में जनता की अवस्था अत्यन्त भयानक हो गयी। एक एक रोटी के लिए लोग लालायित हो उठे। चारों ओर दरिद्रता का अलाप सुनाई पड़ता। मानव त्राहि त्राहि कर रहा था।

ऐसे समय वह युद्ध से लौटा हुआ सैनिक नवनिर्माण का भाग्यविधाता बन गया। देश में उसका आतंक फैल गया। वह स्वतंत्रता का देवता, सिंह की तरह गरजनेवाला, प्रतिहिंसा की ज्वाला के लिए ईंधन एकत्र करने लगा। उसके भाषण पर सब मंत्रमुग्ध थे। वह सब कुछ कर सकता था। वह निर्माता था।

उसका शासन कँटीले तारों से घिरा हुआ था। उसकी आज्ञा अटल थी। विरोध और आज्ञा के उल्लंघन का उत्तर प्राण दंड द्वारा मिलता था। राष्ट्र की उन्नति और उत्थान का श्रेय उसके अत्याचारों को मिला।

उस दिन विराट सभा में उसने अपना निर्णय सुना दिया—युद्ध अनिवार्य है। जो हमें कुचलना चाहता है, उसका अस्तित्व नष्ट करके ही हम शांति लेंगे। महायुद्ध में मनुष्यों का बलिदान बहुत ही साधारण बात है। जीवन का लक्ष्य है द्वंद्व। हमें जीने के लिए मरना होगा।

शासन परिषद् का पूर्ण समर्थन मिला। पतझड़ के पवन की भाँति जनता का आवेग उमड़ पड़ा। फिर महायुद्ध के काले बादल आकाश में छा गये। संसार चकित होकर देखने लगा।

अविश्वासी निर्माता राष्ट्र के विश्वास की प्रतिमा बना।

(२)

विध्वंस के महायज्ञ में आहुतियों की संख्या समाप्त नहीं हो रही थी। अनेक देशों को पंगु बनाने में सफलता मिलने लगी। विनाशकारी योजनाओं ने अपना विकराल रूप दिखलाया।

निर्माता की दृढ़ता में नवीन संस्कृति का रक्त रंजित इतिहास बन रहा था। उसे अपने सिद्धांतों पर गर्व था। वह विश्व को अपनी हथेली में मसल देना चाहता था।

हिमालय के शिखर से टकराती हुई प्रतिध्वनि उसे सुनाई पड़ी। उसकी आँखें बिजली की तरह चमक उठीं। उसने रोष में आकर सहयोगियों को समझाया—अहिंसा के प्रयोग केवल खिलवाड़ हैं। दासता की जँजीरों में जकड़ा हुआ देश स्वप्नचित्रों को एकत्र कर रहा है। पराधीनता की मुक्ति में बलिदान की आत्मा को उत्सर्ग करना होगा। स्वतंत्रता इतनी सरल नहीं है।

घोर विरोध रहते हुए भी सहयोगियों ने अनुमोदन किया। किसी में साहस नहीं था कि उसके उन शब्दों में उलटफेर कर सके।

युद्ध के महाश्मशान पर मानव जीवन का अंत एक अनबूझी पहेली की तरह रहस्यमय बना हुआ है; किंतु निर्माता के लिए यह एक महत्वहीन प्रश्न है। वह सबको मिटाकर ही शांति लेगा।

मनुष्य का जीवन उसके संमुख तृणवत् हो गया है; किंतु अपने जीवन की रक्षा में सभी साधनों का उपयोग करते हुए वह सुरक्षित रखना चाहता है। वह यह नहीं सोचता कि जीवन की तुलना की सूची में उसका मानव कहाँ अंकित है? उसकी समझ में यह भी नहीं आता कि मानवता को दानवता की चक्की में पीस डालने के बाद निर्माण मानवी न होकर दानवी होगा।

———

पगली

पगली, ओ पगली !—पगली रे हः हः हः हः, पगली है ? पगली ।—कहते हुए बालकों का झुंड पगली के पीछे दौड़ रहा था ।

चलते चलते पगली एक जगह खड़ी हो गई । एक लड़के ने दूर ही से पगली की ओर एक पत्थर फेंककर कहा—पगली रे ! ओ पगली !!

पगली चोट खाकर उछल गई । उसने भयंकर रूप बनाकर कर्कश स्वर में कहा—दूर—दूर—ह—ट—कहते हुए वह लड़कों के पीछे दौड़ी । लड़ी । लड़के भाग चले ।

लड़कों से पीछा छुड़ाने के लिये पगली एक घर में घुस गई । भीतर से किसी ने कहा—मारो—मारो—पगली आई । एक आदमी ने पगली को मारते हुए घर से बाहर निकाल दिया ।

चोट के कारण पगली के शरीर में कई जगह घाव लग गए थे । उसने आकाश की ओर देखते हुए कहा—ओ—ओ ! देखो, देखो, आकाश फट पड़ा है, पृथ्वी जल रही है—चारों तरफ आग लगी हुई है । देखो—देखो, आग—आग ।

चलते चलते पगली एक विशाल भवन के सामने जाकर खड़ी हो गई । मकान की ओर देखकर उसने कहा—यह ऊँचा मकान भी एक दिन गिर जायगा । कहकर वह नाचने लगी । कभी उँगलियाँ चमकाकर कहती—एक दिन मैं ही सारी दुनिया की रानी बनूँगी, ऐसे ऐसे सैकड़ों मकान बनवाऊँगी, उनमें झूला डालकर झूलूँगी—हः हः हः ह, झूलूँगी—खूब झूलूँगी। कभी मुँह बनाकर कहती—न झूलूँगी, उहुँ न झूलूँगी । एक दिन मेरा मकान भी गिर जायगा, तब ?

(२)

पगली की अवस्था ५० वर्ष से कम न थी । उसके शरीर का सारा मांश सूख गया था, हड्डियों की ठठरी रह गई थी; फिर भी उसके मुख पर बड़ा तेज था । अरुण आभा से उसका मुखमंडल प्रदीप्त हो रहा था !

× × ×

पगली कहीं चली जा रही थी। एक मनुष्य ने निर्भीकता से उसका हाथ पकड़कर कहा—आज भटकते भटकते इधर कहाँ चली आई हो ?

उसने हाथ खींचकर कहा—छोड़ो मुझे बहुत दूर जाना है। छोड़ो, छोड़ते क्यों नहीं ? हटो, मेरी राह छोड़ो…।

उसने पगली का हाथ छोड़ते हुए कहा—आज कुछ खाया है या नहीं ?

पगली ने उनकी तरफ देखते हुए कहा—भूख, भूख, भूख !

उसने एक दूकान से कुछ खरीदकर पगली को खाने को दिया।

पगली एक जगह बैठकर खाने लगी।

एक राह चलते ने पूछा—भाई, यह पागल कैसे हो गई ? देखने से अच्छे घर की मालूम पड़ती है।

उसने कहा—इसका मकान हमारे पड़ोस में था। बड़े धनी घर की थी, बालबच्चों से घर भरा पूरा था। दैव की माया ! कराल काल ने अपनी कुटिल चाल से इसका सब कुछ नष्ट कर दिया। अब न तो कोई इसके आगे है और न पीछे। ग्लानि और चिंता से यह पागल हो गई है। भीख माँगकर अपना दिन काटती है। मुझको पहले यह बहुत मानती थी, अब पहचानती तक नहीं।

बात कहते कहते वह चला गया।

पगली राह में सो गई थी। एक राह चलते ने उसे ठोकर मारते हुए कहा—हट—हट यहाँ से भाग जा।

पगली उठी और आगे बढ़ी।

(३)

दिन पर दिन बीतने लगे। अब पगली को देखकर लोग डर जाते थे।

एक दिन पगली कहीं से आ रही थी—सामने हलवाई की एक दुकान दिखाई पड़ी। वह दूकान पर चढ़ गई। दोनों हाथों में मिठाइयाँ लेकर चली। चलते समय दूकानदार ने पगली को एक हाथ कसकर मारा। बेचारी गिर पड़ी। कुछ देर बाद उठी। खाती चली गई।

कुछ लोगों ने कहा—पगली को पागलखाने में भेज दिया जाय।

× × ×

एक मास हो गया।

अब पगली चल नहीं सकती। मार पड़ते पड़ते उसकी देह बहुत कमजोर पड़ गई थी। वह ज्वर के प्रकोप से सड़क की एक पटरी पर पड़ी हुई थी। रह रहकर कराह रही थी। उसके चारों तरफ भीड़ सी लग गई थी।

उसी भीड़ में से एक ने कहा—राम का नाम ले पगली!—पगली ने तीव्र ध्वनि में कहा—राम! राम! राम! राम! वह देखो, राम आए और चले गए! पकड़ो—पकड़ो! देखो, वह जा रहे हैं।—कहते कहते पगली ने आँखें बंद कर लीं।

ठीक उसी समय पुलिस के दारोगा सिपाहियों को लेकर, पगली को पागलखाने भेजने के लिए आए। किंतु उनके आने से पहले ही, पगली की आत्मा पागल संसार को छोड़कर सदा के लिए कहीं चली गई थी!

पतित

हाय ! घर छूटा, माता पिता छूटे, भाई बंधु छूटे !

यह सब किसके लिए ? केवल तुम्हारे प्रेम के लिए ! किंतु तुम्हीं विचार करो कि तुम्हारा वही पहले जैसा प्रेम है ?

दिवाकर ने कहा—जो कुछ भी हो, अब मेरा यहाँ रहना असंभव है। मेरा जीवन नष्ट हो गया, मैं संसार में मुँह दिखाने लायक न रहा। इस तरह धन के अभाव से और कितने दिन व्यतीत होंगे ?

रागिनी ने कहा—तुम पुरुष हो, जहाँ जाओगे, पैदा कर अपना पेट भर लोगे; किंतु एक निःसहाय अबला का जीवन नष्ट हो रहा है !

दिवाकर—बस, मुझे क्षमा करो, अब मैं तुमसे बिदा होता हूँ। तुम मुझे एकदम भूल जाओ।

रागिनी ने कुछ उत्तर न दिया। उसके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था। जब तक धन, अलंकार आदि थे, तब तक उसे बेचकर खर्च चलाता रहा, और दिवाकर भी बड़ा प्रसन्न था—बड़े प्रेम से बातें करता था। किंतु जब धन, आभूषण समाप्त हो गये, तो भोजन के लाले पड़ गये। फिर कौन किसका है ? आजकल के प्रेम का अंत होते कितनी देर लगती है ? यही दिवाकर जिस समय रागिनी के साथ प्रेम करता था, उस समय दिन रात इसी चिंता में रहता कि रागिनी के दर्शन कैसे होंगे। दिन रात आहें भरता; रागिनी को पत्र लिखने में ही सारा दिन बिता देता; रात को स्वप्न देखता, तो यही कि वह रागिनी से प्रेमपूर्वक बातें कर रहा है।

रागिनी बड़ी सुंदर थी। एक बार उसे देखकर श्रद्धा उत्पन्न होती थी। उसमें देवी की तरह भोलापन था। वह सुशील भी बहुत थी। किंतु दिवाकर के प्रेम ने उस अबोध बालिका का घर छुड़ाया। प्रेम के रंग में रँगे हुए दिवाकर और रागिनी ने अपने भविष्य पर ध्यान न दिया। किंतु क्या रागिनी को स्वप्न में भी यह आशा थी कि दिवाकर उसके साथ ऐसा व्यवहार करेगा। इस समय उसके नेत्रों के संमुख पूर्वकाल के सब दृश्य

आ गये। वह केवल चुपचाप बैठकर रोने लगी। किंतु दिवाकर उसी समय चला गया।

कई दिन रागिनी को उपवास करते बीत गये, भोजन की इच्छा ही न होती थी। रागिनी के पास एक बुढ़िया कभी आया करती थी। वह बराबर दिवाकर की निंदा किया करती। आखिर एक दिन वह बोली—तू व्यर्थ इतना कष्ट उठा रही है; ईश्वर ने तुझे रूप दिया है, मेरे कहने पर चल, तो तेरा जीवन बन जाय।

रागिनी भली भाँति जानती थी कि बुढ़िया बुरे कर्म के लिए उपदेश दे रही है! किंतु वह चुपचाप सब सुनती रही। बुढ़िया ने उसे चुप देखकर पुनः कहा—जब एक बार घर से निकल चुकी, तब लज्जा क्या? आनंद से जीवन व्यतीत करो, ऐसे पचासों दिवाकर आकर पैर चूमेंगे।

रागिनी ने क्रोध से कहा—क्या बक रही हो, व्यर्थ की बातें न करो। मैं अपना बुरा भला खुद समझती हूँ।

रागिनी को क्रोध में देखकर बुढ़िया नम्र हो गई। रागिनी के मन में तरह तरह की बातें उठने लगीं। एक बार वह सोचती—मैं तो इस समय वैसे भी कलंकित हूँ, किसी प्रकार का आश्रय पाना असंभव है; सब घृणा की दृष्टि से देखते हैं; फिर जीवन का कैसे निर्वाह होगा?

इसी तरह नित्य विचार करते करते एक दिन उसके हृदय ने कहा—बुढ़िया ठीक कहती है, अब लज्जा क्या? जब समाज में कलंकित हो चुकी, लोगों की दृष्टि में गिर गई, तब लज्जा कैसी!

इसी सोच-विचार में वह कई दिनों तक लीन रही। अंत में उसने बुढ़िया की बातें स्वीकार कर लीं!

(२)

कितना सुंदर गृह था! झाड़-फानूस आदि से कमरा सजा था। मखमल के गद्दे बिछे थे। वहाँ पर दो पुरुष बैठे थे। गृह के सामने एक नजरबाग था। पूर्णिमा की रात थी। वर्षा के बादल थोड़ी थोड़ी देर पर चंद्रदेव को छिपा लेते थे। अचानक मकान से, बड़े मीठे स्वर में, एक गाना सुन पड़ा।

ज्ञात होता था कि गानेवाले के हृदय में विरह की ज्वाला दहक रही है। गाना समाप्त होते ही किसी ने कहा—वाह वाह! कितना मनमोहक राग है! वाह रे मालती, कमाल कर दिया!

मालती के एक एक भाव पर लोग मोहित थे। उसका ठाट अब एक रानी की तरह था! अब उसकी एक एक चाल में नजाकत भरी थी। पहले उसका जीवन कितना सादा और पवित्र था—छल कपट कुछ भी न था। उसे किसी से बात करने में भी संकोच होता था।

मालती! क्या तू वही रागिनी है? नहीं नहीं, तू वह नहीं है, तुझमें इतना परिवर्तन कहाँ से हो गया? इन चार वर्षों में तूने इतना धन कैसे पैदा किया? तेरे व्यवहार में पहले से अब कितना अंतर है? एक समय था, जब तू भूखों मरती और किसी से याचना न करती थी किंतु आज वह समय है कि तू मीठे मीठे वचनों की छुरी फेरकर लोगों से रुपया ऐंठ लेती है! इतनी चतुरता, इतना कपट, इतना धन का लोभ तुझमें कहाँ से आया? ईश्वर हो जाने!

इस समय मोटर, गाड़ी, नौकर, धन—सभी वस्तुएँ रागिनी—नहीं, मालती—के पास है। उसे अब किसी चीज का अभाव नहीं है। वह कहती—मेरा जीवन अब कितना सुखमय है! अब वह प्रेम को धिक्कारती है। वह कहती—प्रेम क्या है, आजकल सुंदरता देखकर लोग मोहित हो जाते हैं, क्या यही प्रेम है? किंतु हाय! वह प्रेम कितना भीषण था, जब मैं दिवाकर के लिए दिन रात अश्रुपात करती थी। एक बार दिवाकर को देखकर ही नेत्र प्रफुल्लित हो जाते थे। आज कितने सुंदर से सुंदर पुरुष यहाँ आते हैं; किंतु अब मेरे हृदय में उनके प्रति कभी प्रेम नहीं होता। नहीं नहीं, उस समय मेरी कितनी भूल थी! मैं प्रेम की तरंग में सब कुछ भूल गई। और अब समाज में कलंकित हूँ—पापमय मेरा जीवन है फिर भी इस समय मैं सुख से जीवन व्यतीत कर रही हूँ! किंतु हाय! हृदय में शांति नहीं है!

रागिनी कभी रोती—कभी हँसती और कभी विचार में लीन हो जाती। इसी प्रकार उसके सात वर्ष व्यतीत हो गये।

(२)

अभागा दिवाकर बहुत दिनों तक इधर उधर भटकता रहा। उसका जीवन पापमय है। उसने रागिनी को छोड़ कलकत्ते जाकर जूआ खेलना आरंभ किया—धीरे धीरे शराब पीना भी। नित्य नई नई पाप लीला होने लगी। वह पाप पंक में गरदन तक धँस गया। अनेक कष्ट सहते सहते एक दिन उसे आत्मग्लानि हुई। वह मन ही मन कहने लगा—हाय! मैंने अपना जीवन व्यर्थ ही गँवाया, इस संसार में कितनों को दुःखित किया, कितनों का सर्वनाश किया, रागिनी को मैंने निःसहाय छोड़ दिया! बूढ़ी माता की भी—मेरे दुर्व्यवहार और वियोग के कारण—मृत्यु हो गयी। हाय! मैं कितना पापी हूँ; क्या नरक में भी मुझे स्थान मिलेगा?

आज दिवाकर के हृदय में यह भाव कैसे उत्पन्न हुआ, आश्चर्य है! किंतु नहीं, एक बार जो भलीभाँति संसार देख लेता है, वह इस माया जाल का भेद बहुत कुछ समझ जाता है। दिवाकर की भी ठीक यही दशा है। वह बहुत कुछ अनुभव कर चुका। अस्तु, उसकी मनोवृत्ति का बदलना कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

जाह्नवी के तट पर बैठा हुआ दिवाकर इसी विचार में लीन था। चाँदनी रात थी। चंद्रदेव का प्रकाश गंगा की लहरों पर पड़ रहा था। उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। वह आप-ही-आप कहने लगा—हाय! मैंने रागिनी के जीवन को नष्ट कर डाला। उस समय—ओफ! उस समय मेरे हृदय को क्या हो गया था। किंतु करता ही क्या? उसे छोड़ न देता, तो जीवन निर्वाह किस प्रकार होता! मुझमें कोई गुण भी तो नहीं, जिससे धन उपार्जन करता। किंतु यह सब होते भी मैंने रागिनी के साथ बड़ा अन्याय किया। न जाने बेचारी किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करती होगी। प्रभो! अब इस जीवन का अंत कर दो!

बहुत दिनों पर आज दिवाकर के मुख से प्रभो शब्द निकला। ठीक है, आपत्ति काल में ईश्वर अवश्य याद आता है। उस दिन से दिवाकर के हृदय में ईश्वर की भक्ति उत्पन्न हुई। मानव जाति से उसे घृणा हो गई। उसने निश्चय किया कि अब पर्वत और जंगलों में भ्रमण कर, प्रकृति के दृश्यों को देखकर, ईश्वराधन करके, शेष जीवन व्यतीत करूँगा।

(४)

आज रागिनी एक भयंकर स्वप्न देख रही थी। उसने देखा, मानों एक काले रंग का—भयानक सुरतवाला—कोई मनुष्य उसके सामने खड़ा है, और कह रहा है—देख रागिनी, तेरी दशा बड़ी बुरी होगी; किस लिए तू इतना पाप कर रही है। इस पाप के लिए तुझे कितना भीषण दंड मिलेगा, यह तू नहीं जानती। एक बार सँभल जा, नहीं तो पछतायेगी। विचार कर, संसार में एक भी ऐसा व्यक्ति है, जो तेरा अपना हो, या तुझसे सहानुभूति प्रकट करे?

रागिनी चौंक उठी। उसका सारा शरीर रोमांचित हो गया। उसकी नींद खुली। देखा, कुछ भी न था! वह बहुत डरी और विचार करने लगी। उस समय रजनी के तीन पहर बीत चुके थे। फिर उसे नींद नहीं आई।

प्रातःकाल जी बहलाने के लिए वह अपने उपवन में गई। किंतु वहाँ भी उसे शांति नहीं मिली। वह बैठी हुई यह विचार कर रही थी कि मेरा अंत बहुत बुरा होगा। सहसा उसकी दृष्टि एक भ्रमर पर पड़ी, जो आकर एक अधखिली कली पर बैठा उसका रसपान कर रहा था।

रागिनी विचार करने लगी कि भ्रमर कितना स्वार्थी है। जिस समय कली खिलती है, वह आता है और उसका रस ले जाता है; किंतु जब वे कलियाँ खिलकर मुरझा जाती हैं, वह भूलकर भी उनकी ओर नहीं देखता। संसार की भी ऐसी ही दशा है। मैंने जो इतना धन पैदा किया, वह क्या होगा? हाय! मैंने कितनों का गला काटा है; घर नष्ट किया है, तब कहीं इतनी संपत्ति एकत्र हुई है; पर यह सब किसके लिए! परिणाम क्या? वही नरक की दुःसह यंत्रणा!

रागिनी अधीर हो उठी। उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लिया, और फूट फूटकर रोने लगी।

कुछ देर के बाद उसने निश्चय किया कि अब शेष जीवन तीर्थयात्रा तथा भगवद्भजन में ही व्यतीत करूँगी।

नगर में चारों ओर लोगों के मुँह से यही सुनाई देता था कि मालती न जाने कहाँ चली गई। उसके चले जाने से मानों नगर ही सूना हो गया। वह कितना अच्छा गाती थी, कितनी सुंदर थी, एक बार उसे देखकर ही नेत्र प्रफुल्लित हो जाते थे!

(५)

पहाड़ पर अपूर्व शोभा थी। झरना गिर रहा था। उधर हिरन का झुंड जा रहा है, इधर पक्षी कोलाहल मचा रहे हैं। प्रभात का समय था। पूर्व दिशा में कुछ कुछ लाली छा रही थी। पुष्पों की मधुर सुगंध बड़ी ही मनमोहक थी।

झरने के पास बैठी हुई रागिनी प्रकृति का दृश्य देख रही थी! उसने कहा—मानव समाज से अलग रहने में कितना सुख है—न किसी प्रकार की चिंता और न कोई दुःख!

रागिनी के शरीर पर केवल एक सादी धोती थी। किंतु, उसकी सुंदरता अपूर्व थी। मार्ग में जो लोग उसे देखते चकोर की भाँति देखते ही रह जाते। उसको इससे बड़ा दुःख होता था कि यहाँ पर भी उसे छुटकारा नहीं। मानव समाज से उसे घृणा सी हो गई। वह कहती— क्या संसार में सभी स्वार्थी और पापी हैं। वह अपने रूप को नष्ट करना चाहती थी; किंतु यह असंभव था।

कुछ समय के पश्चात् रागिनी झरने के पास से उठी और चल पड़ी। उसे सायंकाल के पहले ही चार कोस चलकर एक स्थान पर पहुँचना था। उसके कोमल पैरों में चलते चलते छाले पड़ गये थे। उस समय आकाश में बादल छा गये। यह भी ज्ञात होता था कि कुछ देर में आँधी आएगी।

सहसा रागिनी की दृष्टि जंगल की एक कुटी पर पड़ी। उसने निश्चय किया कि कुछ देर वहाँ चलकर ठहरूँ; फिर पानी बरस चुकने के बाद वहाँ से चल पड़ूँगी। वह कुटी के पास पहुँची ही थी कि वर्षा जोरों से होने लगी। उसने देखा कि कुटी में एक योगी हैं, जो नेत्र बंद किये ईश्वराधन कर रहे हैं।

योगी के नेत्र जब खुले, तो वह रागिनी को खड़ी देख आश्चर्य करने लगे। रागिनी ने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया। उन्होंने तो रागिनी को पहचान लिया; किंतु रागिनी उनके जटा बढ़ाये दुर्बल शरीर को पहचान न सकी। उन्होंने रागिनी को बैठने के लिए आसन दिया। रागिनी ने बड़े करुण शब्दों में कहा—प्रभो! मैं बड़ी पतिता हूँ, मेरा जीवन पाप से भरा है। संसार से विरक्त—मानव समाज से घृणा—होने के कारण अब मैं तीर्थयात्रा के लिए निकली हूँ। इस पतित वेश्या को आप क्षणभर यहाँ बैठने की आज्ञा दे सकेंगे?

योगी ने एक आह भरकर कहा—देवि ! इस संसार की लीला विचित्र है। यहाँ किसी को किसी बात का डर नहीं है। जो पहले पतित होता है, वास्तव में उसी का जीवन अंत में सुधरता है।

रागिनी कुछ देर तक आश्चर्यचकित हो गई। कारण, यह स्वर तो उसका चिर परिचित था। उसने पूछा—क्या आप 'दिवाकर' तो नहीं हैं ?

योगी ने कहा—हाँ रागिनी, मैं ही तुम्हारा अभागा 'दिवाकर' हूँ !

पूंजी का विज्ञापन

बसंतलाल देखने में एक दम सीधा सादा देहाती मालूम पड़ता था लेकिन उसकी बातें सुनकर आश्चर्य होता था। वह बड़े पते की बातें खोज निकालता था। दफ्तर में उससे उच्च श्रेणी के प्रायः सभी कर्मचारी छेड़छाड़ किया करते थे। उच्च कर्मचारी से यह तात्पर्य कि प्रेस के कंपोजीटर, दफ्तरी, दरवान आदि सभी के ऊपर उसका प्रभाव था। केवल दफ्तर के सहकारी संपादक, मैनेजर आदि ही का साहस होता जो उसकी चुटकियाँ ले सकते।

किसी स्थान से उसे हटा देने के लिए अथवा उसकी बात समाप्त करने के लिए यदि कोई इतना ही कह पड़ता—

सौ में सूर सहस्र में काना,
सवा लाख में ऐंचाताना।

तो बसंतलाल झुँझलाकर उत्तर देता बस एक ही बात तोते की तरह रटो, यह भी कोई मजाक है। और फिर वहाँ से हट जाता।

बसंतलाल रिपोर्टर था। वह दिन भर नगर में अदालत, म्युनिसिपलिटी, सभा, सोसाइटी आदि स्थानों में समाचारों की खोज में व्यस्त रहता। इसमें कोई संदेह नहीं कि कभी कभी बसंत बड़े रहस्य की बातें प्रस्तुत करता, लेकिन उसका लिखित प्रमाण न होने के कारण प्रधान संपादक द्वारा वह अस्वीकृत किया जाता। इसके लिए उसे आंतरिक क्लेश होता। लिखित प्रमाण के कारण ही प्रायः बहुत से समाचारों के प्रति वह विमुख हो जाता।

गुप्त से गुप्त बात का पता लगा लेना बसंत के लिए सरल था। किसी भी नेता, मिनिस्टर, अफसर की घूसखोरी और चरित्र की दुर्बलताओं के संबंध में अगर कोई एकांत में चाय और सिगरेट पिलाकर वसंतलाल से से पूछे तो स्पष्ट कर देता। सचमुच वह रिपोर्टर के उपयुक्त व्यक्ति था।

देश की स्वाधीनता के बाद प्रतिदिन गरीब और पूँजीपतियों का जो द्वंद्व चल रहा है उसमें रिपोर्टर की जिम्मेदारी और बढ़ गयी है।

विकटपुर से सूचना मिली थी कि वहाँ मिल मालिकों के कारण दफ्तर के कर्मचारी उपवास कर रहे हैं। लेकिन अपना मासिक वेतन नहीं लेते। इस संबंध में सरकारी जाँच भी हुई लेकिन परिणाम कुछ भी न निकला।

प्रधान संपादक ने बसंत को बुलाकर कहा कि आप विकटपुर चले जाइये। वहाँ से मालिक; दफ्तर के कर्मचारी और मजदूरों का पूरा विवरण लेकर चले आइये। मुझे इस विषय पर अग्रलेख लिखना है।

बसंतलाल चुपचाप प्रधान जी की ओर देख रहा था।

उन्होंने पूछा—समझ गये न ?

जी हाँ।

आज रात की गाड़ी से चले जाइये।—बसंत खड़ा था।

संपादक ने पूछा—कुछ कहना है ?

यदि आप आज्ञा दें तो कहूँ।

कहिये।

विकटपुर से तो कोई नई बात मालूम नहीं होगी। सब जगह एक ही चक्र चल रहा है। मालिक कर्मचारियों का खून चूसकर भी पूरा वेतन नहीं देना चाहते। यही बात है। हम सब इसी चक्र में पिस रहे हैं। अगर विकट पुर जाऊँ तो भत्ता १) रोज मिलेगा। एक रुपये में तो आजकल एक बार जलपान भर होता है। रिक्शेवाले तिगुना माँगते हैं। इसका मतलब यह है कि अपने पास से खर्च करना पड़ेगा। प्रबंध विभाग कुछ ध्यान नहीं देता। एक साँस में ही बसंत सब कह गया।

संपादक ने उसे समझाते हुए कहा—अच्छा इस संबंध में आपका इस बार विशेष टी० ए० बनवा दूँगा क्योंकि मालिक इस मामले में स्वयं दिलचस्पी रखते हैं।

बसंत संपादक को धन्यवाद देता हुआ चला गया।

× × ×

सुबह भोंपू बजने के पहले ही बसंतलाल मिल के फाटक पर आकर खड़ा हो गया था।

भोंपू बजते ही कतार में मजदूर मिल में प्रवेश करने लगे।

बसंतलाल को मालूम था कि उसके गाँव के बहुत से आदमी यहाँ काम करते हैं। उन लोगों से ठीक ठीक विवरण प्राप्त होगा। ऐसा उसका विश्वास था।

कई परिचित मजदूरों से भेंट हुई। उन्हें अवकाश न था। उनका अफसर कुटिल प्रवृत्ति का था। देर होने के कारण वह उन्हें मिल के बाहर निकाल देता। इस भय से बसंतलाल से सलाम बंदगी के अतिरिक्त कोई बात वे कर न सके। छुट्टी के समय बसंतलाल फिर वहीं आएगा ऐसा निश्चय करके बसंतलाल दफ्तर में गया। मैनेजर ने पहले तो उसकी ओर ध्यान नहीं दिया लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि वह एक विख्यात पत्र का संवाददाता है तब उसे कुर्सी मिली और शिष्टाचार का प्रयोग होने लगा।

मैनेजर की जबानी जो कुछ भी सुनाई पड़ा उसमें मिल मालिकों का दोष न था। उन्होंने कर्मचारियों को सूचना दे दी थी कि महँगी का भत्ता नहीं दिया जायगा, अगर उन्हें काम करना स्वीकार न था तो नौकरी छोड़ देना उचित था।

बसंतलाल ने पूछा कि क्या महँगी मिट गई थी कि महँगी का भत्ता बंद कर दिया गया।

मैनेजर ने कहा—जब मासिक वेतन पर्याप्त दिया जाता है तब कोई आवश्यकता नहीं कि महँगी का भत्ता भी दिया जाय।

बसंतलाल ने समझा कि यहाँ कार्य कुछ होगा नहीं। अतएव उठते हुए उसने कहा—यह घोर अन्याय है! इसके पश्चात् दफ्तर के अनेक कर्मचारियों द्वारा बसंतलाल ने सब विवरण सुना। वह यथार्थ स्थिति से परिचित हुआ। कर्मचारियों को ठीक माह के अंत में सूचित किया गया था कि इस माह से महँगी का भत्ता नहीं दिया जायगा। यह नियम के विरुद्ध है, कोई भी नोटिस एक महीने पहिले दी जाती है। इस पर भी कर्मचारियों ने काम बंद नहीं किया। विरोध प्रदर्शन के लिए उन्होंने केवल अपना मासिक वेतन नहीं लिया। इस पर मालिक रुष्ट हैं और चुन चुनकर कितनों को जवाब मिल रहा है।

बसंतलाल की भेंट ऐसे व्यक्तियों से भी हुई थी जो मिल का रास्ता नापते हैं और बेकारी में चक्कर लगा रहे हैं। वे परदेशी हैं उनका कोई

सहारा नहीं। कई महीनों का किराया बाकी है। घर में बच्चे और स्त्री भूखों दिन काट रहे हैं। लोगों का देना है इसलिए छोड़कर भाग भी नहीं सकते।

एक दयनीय क्लर्क ने बसंतलाल से बतलाया कि हमसे तो अच्छा मिल का एक साधारण कुली है जिसे दो रुपये चौदह आने रोज मिलते हैं और जरा भी अफसर की आँख चढ़ी तो एका इतना है कि सबके सब हड़ताल कर बैठते हैं। उनकी सब बातें सुनी जाती हैं और हम लोग पढ़ लिखकर भी अभागों की भाँति खाक छान रहे हैं।

बसंत भी उसी श्रेणी का व्यक्ति है। अतएव संपूर्ण देश में पढ़े लिखे बाबुओं की जो दुर्गति हो रही है उससे वह भलीभाँति परिचित है।

बसंत ने विचार किया कि अच्छा यह सब तो हो चुका। अब मिल मालिकों के भेद का पता लगाना चाहिए।

कोठी का पता लगाकर बसंत वहाँ पहुँचा। पहरे पर संतरी खड़ा था। उसने उसे अपना कार्ड देते हुए बताया कि वह मालिक से मिलना चाहता है।

इतने में उसे अपने गाँव का सुखुआ कहार दिखाई पड़ा! हाथ जोड़कर उसने पूछा—भैया यहाँ कैसे आये?

बसंत ने उसे अपने यहाँ आने का कारण बता दिया। वह स्वयं आज्ञा ले मालिक के यहाँ उसे ले गया। बहुत देर बातें होती रहीं। चाँदी की तश्तरियों में फल और चाय से उसका सत्कार हुआ। प्रतिष्ठित पत्र के संवाद-दाता होने के कारण वहाँ भी विशेष ध्यान दिया गया।

चलते समय बसंत के कान में सुखुआ ने कहा—मैं सब असली बातें आपको बताऊँगा, मेरा तो कई पुश्त इस दरबार में बीत चुका है।

बसंत ने अपने ठहरने का स्थान और पता उसे बतला दिया।

कोठी का ठाटबाट देखकर बसंत चकित हो गया। संगमर्मर और टाइल्स से जड़ी हुई जमीन पर विशेष ध्यान देकर चलना पड़ता था। वहाँ ऐश्वर्य का समस्त साधन विधाता ने एक ही साथ प्रस्तुत कर दिया था। गरीब के खून और पसीने की कमाई का उपयोग पूँजीपति कितनी सुंदरता से करते हैं। बसंत की आँखें चढ़कर लाल हो गई थीं। बातचीत के सिलसिले में सेठ जी से उसे यह भी विदित हो गया था कि नगर के सभी दैनिक

उसकी सहायता से चलते हैं। किसी का साहस नहीं जो उसका विरोध कर सके।

संध्या समय सुखुआ उसके यहाँ आया। उसने मिल मालिक का कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। उसने अधिकांश ऐसे रहस्य खोले जिनसे बसंत की रिपोर्ट का कोई संबंध न था। सेठ की वंशावली, उनका रहन सहन, किस तरह सूद-दर-सूद और गरीबों का गला काटकर इतनी बड़ी पूँजी एकत्र हुई थी। सेठ के घर में दुराचार, संतान न होने के कारण अनेक विवाह। इस समय जो मिल के मालिक हैं इन दोनों भाइयों की उत्पत्ति कथा आदि सुखुआ ने विवरण के साथ बतायी।

बसंतलाल आश्चर्य के साथ सुनता रहा। सचमुच उसकी रिपोर्ट बड़ी विचित्र और सनसनीखेज होगी।

* * *

संपादक ने बसंतलाल की पूरी रिपोर्ट पढ़ने के बाद कहा—इसमें कोई नवीन बात नहीं मालूम पड़ती। मिल के संबंध में जितनी घटनाएँ स्पष्ट हो चुकी हैं उन्हीं का लेख आपने प्रस्तुत किया है!

बसंतलाल ने संपादक की ओर निराशा से देखते हुए कहा—मैंने तो आप से पहले ही कहा था कि सब पूँजीपतियों के एक ही चक्र में पिस रहे हैं—चक्की तो एक ही है मगर पीसने की प्रणाली भिन्न भिन्न है।

संपादक ने कहा—मेरा तात्पर्य यह है कि मिल के संबंध में ऐसी बातें प्रकट करना, जो लोगों को ज्ञात न हों।

मैंने कुछ रहस्यपूर्ण बातों का भी पता लगाया है। किंतु रिपोर्ट में उसे नहीं लिखा है। यदि आप आज्ञा दें तो उसे भी लिख दूँ।—बसंत ने पूछा।

क्या?—संपादक को उत्सुकता हुई।

विशेष अनुसंधान के बाद मुझे यह मालूम हुआ है कि मिल के दोनों मालिकों की उत्पत्ति, एक रसोई बनानेवाले महाराज और दूसरा दरवान के परिश्रम का परिणाम है।

संपादक ने बसंतलाल की ओर देखकर मुसकराते हुए कहा कि इसका लिखित प्रमाण आपके पास तो होगा नहीं। फिर इस विवरण के कारण मानहानि का प्रश्न उपस्थित हो जायगा। उनकी उत्पत्ति जिस किसी भी तरह हुई हो उससे हमें कोई प्रयोजन नहीं।

कई दिन बीत गये। बसंत का लिखा मैटर प्रेस के फोरमैन को नहीं मिला। उसका इतना परिश्रम व्यर्थ ही जायगा क्या ?

वह प्रबंध विभाग में अपने मार्गव्यय के बिल के वाउचर के लिए गया। बिनी किसी काँट छाँट के पूरी रकम पास हो गयी थी। उसे बड़ा कौतूहल हुआ।

अंत में उसे ज्ञात हुआ कि मिल से एक स्थायी लंबे विज्ञापन का कंट्रैक्ट एवं दो हजार का चेक प्रबंध विभाग को प्राप्त हुआ है।

पूर्णिमा

शरत् पूर्णिमा थी ! क्षितिज में गुब्बारे के समान चंद्रमा ऊपर उठ रहा था । मैं जाह्नवी तट पर बैठा हुआ चंद्रदेव की तरफ एकटक देख रहा था । गंगा चाँदी की बारीक चादर सी हिल रही थी । हिलती हुई लहरों पर चंद्रदेव की किरणें अपूर्व सुंदर दीख पड़ती थीं । कभी कभी प्रकाश में बायस्कोप के दृश्य की तरह छोटी छोटी नावें इधर उधर तैरती हुई दिखाई देती थीं ।

मैं कुछ दुःखी था, एकांत में पत्थर के एक गुंबद पर बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था । संसार की दशा पर, प्रेम पर, सामाजिक बंधनों पर, भावना दौड़ लगा रही थी । एकाएक मुझे एक स्मृति आई—आज भी शरत् पूर्णिमा है, ठीक सात वर्ष हुए ! सब दृश्य मेरी आखों के सामने फिर गये ।

दिन बीतते कितनी देर लगती है ? देखते देखते संसार की सब बातें बदल जाती हैं ! जवानी चली जाती है, बुढ़ापा आ जाता है, रूप नष्ट हो जाता है । मित्र; संबंधी सब छूट जाते हैं, यही इस विश्व की लीला है ।

कृष्णा की स्मृति ने उस समय मुझे व्याकुल बना दिया । मैं अधीर होकर रोने लगा । रोने के पश्चात् हृदय कुछ शांत हुआ । मैं आकाश की ओर देखकर कहने लगा—अभागे कृष्णा ! क्या तुमने धोखा खाया ? तुमने इस संसार को भलीभाँति नहीं देखा ! केवल प्रेम की एक झलक थी, जिसमें पड़कर तुमने अपना सब कुछ खो दिया । किंतु क्या वह वास्तविक न था ?

(२)

कृष्णा बड़े स्वच्छ और शुद्ध हृदय का युवक था । उससे मेरी बड़ी मित्रता थी । वह अपने मन की बात मुझसे कहकर अपने हृदय का बोझ हलका कर लेता था । चाँदनी रात में मैं और कृष्णा इसी पत्थर के गुंबद पर आकर कभी कभी बैठते । वह अपनी प्रेम कहानी सुनाता और मैं चुपचाप सुनता । उसका प्रेम 'हीरा' से कब आरंभ हुआ था, यह तो मुझे मालूम नहीं; किंतु जिन दिनों वह प्रेम में पागल था, उन दिनों वह अपने हृदय की बातें मुझसे नित्य कहा करता था । पहले पहल उस दिन, उसने अपनी कहानी इस तरह कही—देखो, जीवन ! तु मुझसे प्रायः पूछा करते हो कि

तुम उदास क्यों रहते हो। मुझे इस संसार में किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं है, किंतु फिर भी मैं दुखी रहा करता हूँ। मैंने जान बूझकर अपना जीवन दुःखमय बना लिया है। अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। एक तुमसे कभी कभी मिल लेता हूँ; नहीं तो मुझे किसी से मिलना तक पसंद नहीं है।

इतना कहकर वह विचार में लीन हो गया। मैं चुपचाप उसकी तरफ देख रहा था। वह फिर कहने लगा—मैं हीरा को कितना चाहता हूँ, यह मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ? मगर हाँ, इतना कह सकता हूँ कि संसार का सब सुख मैं उसके लिए त्याग सकता हूँ। अभाग्य! उसका मिलना बड़ा कठिन है। किंतु न जाने क्यों, मैं दिन रात उसी के विचार में लीन रहता हूँ।

मैंने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—वह कौन है?

कृष्णा ने कहा—जीवन! वह मेरे हृदय मंदिर की देवी है। यहीं रहती है। उसकी सुंदरता विचित्र है। आँखों में उसके जादू का सा असर है! अच्छा, तुम्हें कभी दिखला दूँगा।

मैंने पूछा—क्या उसका विवाह हो गया है?

कृष्णा ने कहा—हाँ, उसका विवाह हो गया है, किंतु नहीं के बराबर; क्योंकि वह विधवा है!

मैंने कहा—तब तो तुम्हारा अन्याय है।

कृष्णा ने कहा—परंतु मैं······ब्याह करने के लिये प्रस्तुत हूँ।

मैंने कहा—तब तो तुम पक्के सुधारक हो।

कृष्णा ने गंभीर होकर कहा—यह तुम्हारे हँसने की जगह नहीं है; क्योंकि मैं उसे केवल विलास के लिए नहीं चाहता। दिल्लगी करते हो! मेरे ऊपर जो बीत रही है, वह मैं ही जानता हूँ। तुम उस दर्द को क्या जानोगे?

मैंने कहा—अच्छा, हीरा से तुमसे मुलाकात कैसे होती होगी?

उसने कहा—हीरा के मकान के सामने मेरे एक संबंधी रहते हैं। महीने दो महीने पर जब किसी काम से मैं उनके यहाँ जाता हूँ, हीरा को भी देख लेता हूँ। उससे दो चार बात बड़ी कठिनाई से हो जाती है। कारण, उसकी बड़ी देखरेख रहती है। किंतु मैं नित्य ही उसी रास्ते से आता जाता हूँ, और एक बार उसका दर्शन मिल जाता है। उस दिन जब गया था, तो उसने एक दोहा लिखकर फेंक दिया था, जो दिन रात चुभा करता है—

हम पंछी परबस भये, बिके पराये हाथ
हाड़ माँस कतहूँ रहे, प्रान तिहारे साथ

कृष्णा ने इतनी करुण शब्दों में यह दोहा कहा—मानों ज्ञात होता था कि इसका एक एक अक्षर उसके अंतस्तल पर अंकित है। मेरे हृदय में भी यह चुभा ! उसी दिन से हीरा के प्रति मेरी सहानुभूति हुई।

* * * *

संध्या का समय था। सूर्य बादलों की जाली के चिक में से छिपकर चोरी से देख रहा था। कई दिनों के बाद कृष्णा मिला था। मैंने कहा—क्यों, मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों ज्यों दवा की ?

आज उसके मुँह पर हँसी न थी। उसने कहा—भाई, आजकल बड़ी बुरी दशा है। खैर, मैंने तो मान लिया है कि प्रेम ईश्वर है और प्रेम ही स्वर्ग है।

वास्तव में अब कृष्णा की दशा खराब हो चुकी थी एक तो वह दुबला पतला था ही, दूसरे ऊपर से दिन रात की चिंता ! उसने कहा—चलते हो घूमने ? मैंने कहा—चलो !

चलते चलते एक स्थान पर वह रुका; एक तरफ आतुरता से देखने लगा। मैंने देखा, सामनेवाले मकान में एक स्त्री थी। उसकी अवस्था बीस वर्ष के करीब थी। अपूर्व सौंदर्य था। वह कृष्णा की तरफ तृषित नयनों से देख रही थी। कृष्णा वहाँ से आगे बढ़ा। उसने मुझसे कहा—देखो, यही मेरी जीवन सर्वस्व है ! मैं तो चुपचाप चला जा रहा था। मन में हीरा और कृष्णा के प्रेम पर विचार कर रहा था कि बेचारे एक दूसरे के लिए कितने दुःखी हैं।

उस दिन कृष्णा अपने घर चला गया, और मैं अपने घर चला आया। इसी तरह कई मास बीत गये। मैं और कृष्णा प्रायः मिलते और कभी कभी हीरा को दूर से देखने के लिये भी जाते। हीरा मुझे भी अच्छी तरह पहचान गई थी कि यह कृष्णा के मित्र हैं। एक दिन, मैं कृष्णा के घर गया। वह अपने कमरे में एक कुर्सी पर बैठा था। मैं भी उसके पास बैठ गया। उसने कहा—आज अच्छे मौके पर आये। लो, तुम्हारा उपहार आया है। मैंने कहा—कहाँ से ?—कैसा ? उसने एक बंडल मेरे सामने रख दिया—उसमें हाथ के बनाये हुए दो सुंदर रूमाल थे और साथ में एक पत्र था; एक पर

सुई से लिखा था—प्राणनाथ ! और दूसरे पर कुछ नहीं। कृष्णा ने कहा—पत्र को पढ़ो तब मालूम होगा। आरंभ में ही मैंने यह शेर पढ़ा—

छूट जावें ग़म के हाथों से जो निकले दम कहीं
ख़ाक ऐसी जिंदगी पर, हम कहीं औ तुम कहीं

प्राणनाथ ! मैं आपके लिए दिन रात व्याकुल रहती हूँ। मेरी दशा दिन-पर-दिन बिगड़ती जाती है ! घर का कुछ काम काज भी नहीं करती हूँ। मैं आपके लिए सब तरह से तैयार हूँ मैं आप की दासी हूँ। विवाह होना तो असंभव है; क्योंकि मेरे पिता यह कभी स्वकीर न करेंगे। किंतु मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ; अब जैसा आप कहें, मैं करूँ। दो रूमाल अपने हाथ का बनाया हुआ भेजती हूँ—एक आप के लिए और दूसरा आप के मित्र के लिए।

आपकी दासी—हीरा

पत्र पढ़कर मैं कृष्णा की तरफ देखने लगा। उसने कहा—देखो जीवन ! मैं इस तरह हीरा को घर से निकाल कर नहीं ले जाना चाहता। इसमें बदनामी है; उसको कलंकित करना है। और फिर, समाज में उसका मान न रह जायगा। हाँ, यदि विवाह हो जाता, तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उसको ग्रहण करता। किंतु उसके पिता सनातनधर्मी हैं। वह इसे कभी स्वीकार नहीं करेंगे; अतएव अब उसका मिलना असंभव है। खैर, अब मैं किसी तरह अपना जीवन व्यतीत कर लूँगा। पर, हाय ! मैं उसके बिना कैसे रहूँगा। उसका वियोग नहीं सहा जाता। मैं क्या करूँ जीवन ?

मैंने देखा, विचित्र परिस्थिति है ! न तो कृष्णा हीरा के ध्यान को हटा ही सकता है और न उसे स्वेच्छाचारिता से ग्रहण ही कर सकता है ! मैंने कहा—कृष्णा हीरा का विचार त्याग दो, तभी तुम्हें सुख मिलेगा।

कृष्णा ने कहा—जीवन ! तुम मेरी हालत नहीं जानते। तुमने अभी ऐसा दर्द नहीं पाया है; इसलिए तुम ऐसे नहीं समझ सकते। मेरे जीवन का अंत हो जाय, किंतु मैं उसे नहीं भूल सकता।

मैंने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया, क्योंकि मैं जानता था—प्रेम का उन्माद भयंकर होता है !

दिन-पर-दिन बीतने लगे। प्रेमचिंता से ज्यों ज्यों कृष्णा का शरीर दुर्बल होता था, हीरा को कलंकित न करने के लिए उसका मन दृढ़ होता जाता

था; परंतु वह दृढ़ता मृत्यु के आघात को सहन करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। उसके शरीर पर पूर्णरूप से क्षय का अधिकार हो गया। मृत्यु के पंजे से वह न बचा, भरी जवानी में ही चल बसा!

बरसात के बात बाद शरद ऋतु की पूर्णिमा—यही पूर्णिमा थी!! उस रोज लोग दीये जलाकर भागीरथी को चढ़ाते थे। मैंने कृष्णा का शव जला कर जाह्नवी को समर्पित किया, और अपने गर्म गर्म आँसू को जाह्नवी के शीतल जल में मिला कर घर लौट आया।

आज ठीक सात वर्ष हुए!

इस पूर्ण चंद्र के प्रकाश में, उस घटना का रेखाचित्र, आकाश के नील पट पर अब भी मेरे नेत्रों के सामने है। एक वह पूर्णिमा थी, जिस दिन कृष्णा ने अपनी प्रेम कहानी कही थी; दूसरी वह थी, जिस रोज उसकी प्रेम कहानी का अंत हुआ; और तीसरी पूर्णिमा आज है!!—मैं बैठा हुआ यही सोच रहा था।

(३)

मेरी समाधि भंग हुई। मैं उठने ही लगा था कि देखा—सामने मलिन वेश में एक स्त्री खड़ी थी; साथ में तीन वर्ष का एक बालक था। स्त्री के केश बिखरे हुए थे। जवानी ढल रही थी, किंतु उसके नेत्रों से यह ज्ञात होता था कि वह किसी अच्छे वंश की है। मेरी तरफ वह बढ़ी आ रही थी। मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। कुछ देर तक वह चुप थी। मैं भी आश्चर्य से उसकी तरफ देख रहा था। उसने काँपते हुए स्वर में कहा—मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ—

इतना कहते-कहते उसके नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मन में सोचने लगा—देखने से यह एक शरीफ घर की मालूम पड़ती है। पर इस तरह रात में इधर उधर क्यों घूम रही है? मैंने उससे पूछा—तुम्हें क्या कहना है, कहो; मुझसे क्या काम है? उसने कहा—मैं बड़ी दुखी और अभागी हूँ। संसार में मेरा कोई सहायक नहीं है। अपनी किस्मत को रोती हूँ। आज बहुत साहस करके घर से निकली हूँ। इधर गंगा माँ के तट पर इसीलिए आई हूँ कि कोई सहायक मिल जाय।

मैंने समझा कि होगी कोई भिखारिन—बात बनाकर कह रही है। उसी समय चंद्रदेव के उज्ज्वल प्रकाश में उसका मुँह चमक पड़ा, और मुझे वह

परिचित सी जान पड़ी। मुझे ख्याल आया कि इसे मैंने कहीं देखा है, किंतु कहाँ देखा है ?—ध्यान नहीं। क्षणभर में ही उस पर मेरा विश्वास हो गया। मैंने कहा—मुझसे जिस प्रकार की सहायता तुम चाहो, मैं देने को तैयार हूँ। मेरी सहानुभूति से उसका हृदय उमड़ पड़ा। उसने कहा—मेरे पति घर में इस समय मृत्युशय्या पर पड़े हुए हैं; मेरा इस संसार में अब और कोई नहीं है—हाय ! मैं किससे अपना दुःख कहूँ !

मैंने कहा—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। जहाँ तक हो सकेगा, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।

× × × ×

मैं उसके घर पहुँचा। उस समय एक पुरुष, जिसकी अवस्था तीस वर्ष की होगी, एक शय्या पर पड़ा था। यह ज्ञात होता था कि वह बहुत दिनों से रोगग्रस्त है। शरीर एकदम पीला पड़ गया था; केवल हड्डी दिखलाई देती थी। उसकी आखिरी साँस चल रही थी। वह बोल न सकता था, कभी कभी आँख खोलकर देख लेता था। हम दोनों उसके सामने खड़े थे। मेरा हृदय फटा जाता था। मुझे बार बार कृष्णा की याद आती। वह उस बालक की तरफ देखता और फिर आँख बंद कर लेता। देखते देखते उसके प्राण पखेरू उड़ गये !

वह स्त्री विलाप कर रही थी ! वह रो रोकर कहने लगी—हे ईश्वर ! मुझे अब संसार में सुख नहीं है। मैं पतिता हुई। मैंने सुख की अभिलाषा की थी। दीन से गई, दुनिया से गई—अब मेरा कौन है ? मैं अनाथा हूँ, समाज से अलग हूँ, मेरा अब कौन सहायक है ? हत्यारा समाज मुझे फाड़ खायगा ! समाज मुझसे घृणा करेगा, परंतु मेरी सहायता नहीं करेगा। मेरे कष्टों का कूल किनारा नहीं। हे भगवान् ! जिसके बल पर मैंने सबका तिरस्कार किया, वह अवलंब भी मुझसे छीन लिया गया; मैं कहीं की न रही !

मैं उसकी सब बातें सुन रहा था। मेरा आश्चर्य बढ़ता ही गया। मैं उसका पूर्ण वृत्तांत जानना चाहता था। एकाएक मुझे कृष्णा और हीरा का स्मरण हो आया। हीरा का पता नहीं। मैंने कृष्णा की मृत्यु के बाद कई बार विचारा कि हीरा की खोज खबर लूँ, परंतु साहस न हुआ। मुझे अपने

चरित्र पर संदेह हो रहा था, और अपनी निर्बलता को मैं भली प्रकार जानता था; इसलिए मैं उससे अलग ही रहना चाहता था। यदि समाज ने ऐसी ही कठोरता उसके साथ भी की हो—यदि वह भी इसी स्त्री के समान बिना अवलंब के ठोकरें खा रही हो तो? क्या कृष्णा के विचार से उसके प्रति मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं?

मैं चिंता निमग्न हो गया। अकस्मात् अभागिनी विधवा की रोदन ध्वनि तीव्र हो गई। वह तीन वर्ष के बच्चे को गोद में लेकर जोर से रोने लगी। मैं आपे में आया। मैंने कहा—देवि! इस संसार की लीला यही है। जिसका जन्म होता है, उसी की मृत्यु होती है—एक-न-एक दिन यह शरीर नष्ट हो जाता है। धैर्य धरो, ईश्वर सबका सहायक है। क्या तुम्हारे कोई संबंधी इत्यादि नहीं है?

स्त्री ने करुण शब्दों में कहा—नहीं! मैं समाज में कलंकिता हूँ। प्रेम के कारण मैंने घर छोड़ा, सब सुख छोड़ा। वह एक उन्माद या तूफान था, जिसने मुझे आज इस दशा को पहुँचाया। मैं विधवा थी। घर छोड़कर इन्हीं के साथ आई थी—आज छः वर्ष से कुछ अधिक हुए। धन-दौलत सब नष्ट हो गया। यह प्रायः बीमार ही रहने लगे, सब काम काज छूट गया, और आज यह दशा हुई!

मैंने फिर कुछ प्रश्न नहीं किया। कारण, मृत शरीर की अंतिम क्रिया बाकी थी। मैंने शीघ्र प्रबंध कर लिया, और उस अज्ञात युवक के शव को लेकर मैं श्मशान पर गया। चिता जलने लगी। देखते देखते शरीर खाक में मिल गया।

मैं बड़ा दुःखी हो रहा था। संसार से घृणा और निराशा हो रही थी। मुझे संसार एक नाट्यशाला सा दिखाई पड़ने लगा। कृष्णा की स्मृति और इस विधवा की दुर्दशा के विचारों से मैं अश्रुपात कर रहा था। उस स्त्री ने मेरे सामने आकर कहा—आप क्यों रो रहे हैं?—वह भी रो रही थी, परंतु उसे मेरे रोने में आश्चर्य हो रहा था!

मैंने कहा—मैं आज दूसरी बार श्मशान में आया हूँ। इससे पहले मैं अपने अभिन्न हृदय प्रिय मित्र 'कृष्णा' के शव को इसी श्मशान में लाकर फूँक चुका हूँ। आज उसकी स्मृति ने मुझे विकल कर दिया है, इसीलिए रो रहा हूँ।

कृष्णा का नाम सुनकर वह मूर्त्ति के समान खड़ी हो गई। उसकी दशा ही कुछ बदल गई। एक ठंडी आह खींचकर उसने कहा—हाय! मेरे ही कारण तो उनकी मृत्यु हुई। हे ईश्वर! मुझे बचाओ, मैं बड़ी पापिनी हूँ, अभागिनी हूँ।

मैं उसकी तरफ ध्यान से देखने लगा—यह हीरा तो नहीं है? किंतु हीरा में और इसमें बड़ा अंतर है। रूप नष्ट हो चुका था, आँखों में गढ़े पड़ गये थे—बड़ा परिवर्तन था!

मैंने कहा—हीरा?

उसने मेरी तरफ आश्चर्य से देखते हुए कहा—आप कौन हैं?

मैंने कहा—कृष्णा का दोस्त 'जीवन'।

यह सुनते ही उसने कहा—हे ईश्वर! अब मेरा अंत कर दो!

* * * *

मुझे मालूम हो गया—वह हीरा थी।

मैंने बालक को गोद में लेकर कहा—हीरा! मेरे लिए यही कृष्णा है। तुम घबराओ मत। मैं तुम्हारी सहायता के लिए अभी जीवित हूँ। 'कृष्णा' के नाम पर मैं तुम्हारी हर तरह मदद करूँगा। मुझे विश्वास है कि इससे वह निर्मल प्रेमी आत्मा जहाँ होगी, प्रसन्न होगी।

हीरा का कंठ रुँधने लगा। वह बैठ गई। उसकी गढ़े में धँसी हुई आँखों से जलधारा बह रही थी। वह दुःखिनी हीरा मेरे चरणों के नीचे पड़ी थी, बालक गोद में था।

शरत् पूर्णिमा के अस्त होने वाले चंद्रमा में जैसे कृष्णा की मूर्त्ति दिखाई दी—उसके मुख पर संतोष और करुणा थी। हलकी चाँदनी उषा की सफेदी में विलीन हो रही थी।

पोलिटिकल सफरर

जवानी की अल्हड़ हँसी जीवन के मध्याह्न में जिम्मेदारी का बोझ लाद-कर गंभीर बन जाता है, लेकिन लालताप्रसाद अपनी ढली अवस्था में भी वैसे ही मस्त और प्रसन्नमुख दिखाई पड़ते थे। बड़े अच्छे मजाकिया आदमी थे। उनका व्यंग्य कभी तीव्र नहीं होता था कि कोई तिलमिला उठे। लोग छेड़कर उनसे बात करते और वह भी गप्पी एक नंबर के थे, जहाँ बैठ गए वहाँ से उठने का नाम न लेते।

बहुत समीप से जब कोई उन्हें बातें करते सुनता, तभी समझ पाता कि मदिरा की गंध में उनके शब्द लिपटे हुए हैं। जीवनभर फक्कड़ की तरह मौज लेते रहे। दिल खोलकर व्यंग्य करते थे। बूँद बूँद से घड़ा भरता है और एक एक बूँद गिरते रहने पर घड़ा खाली हो जाता है। इसी तरह पितामह का संचित धन लालताप्रसाद ने सब उड़ा दिया और अंत में रहने-वाला मकान भी कर्ज में फँस गया। कर्ज लेने में लालता प्रसाद बड़े निपुण थे। तमोली, बनिया और बीड़ीवाले सदैव उनकी खोज में रहते थे। सामना होने पर बोझीले शब्दों में उनमें से कोई कहता—देखिये ललन बाबू यह ठीक नहीं, इतने दिनों का बाकी पैसा और आप नहीं देते।

ललन हँसकर टाल देते। अंत में एक समय ऐसा आया कि ललन को मुँह छिपाकर घर में बैठना पड़ा। अर्थाभाव ने उन्हें बंदी बना लिया। वह छिपकर कभी कभी रात में घर से निकलते थे। वेश्याओं के हाट में अब भी उनका आदर होता था क्योंकि वैभव के विलीन हो जाने पर भी उनकी जिंदा दिली नहीं नष्ट हुई थी। इसके अतिरिक्त ललन के पैसों से जिनके कमरे में शीशे, तस्वीर, कालीन और मसनद बने थे वे चतुर होती हुई भी इतनी शुष्क नहीं थीं कि दो बीड़े पान से ललन का सत्कार न करें।

उन दिनों नगर की चारों दिशाओं में देशभक्ति की हवा बह रही थी। छोटे छोटे बच्चे भी 'इनकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाने में अभ्यस्त हो गये थे। ललन वेश्यासमाज में सुधार की योजना लेकर आगे बढ़े। विदेशी वस्तु के बहिष्कार का आंदोलन देश में इतना व्यापक हो गया था कि ललन को विशेष समझाने अथवा तर्क करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। किसी

ने सिगरेट छोड़ा, किसी ने चरखा चलाना सीखा। ललन के प्रयत्न का ही यह परिणाम था कि कितने 'डेरों' पर खद्दर की चादर बिछी थी।

यह सब प्रचारकार्य भूमिका के रूप में था। मूल उद्देश्य कांग्रेस के लिए चंदा एकत्र करना था। ललन को इसमें खर्च करने के लिए काफी पैसा मिल जाता। एक रुपये से कम के चंदे की रसीद ललन नहीं देते थे। वह सब उनका हो जाता था। इक्का और तांगा के नाम पर भी एक अद्धे की व्यवस्था हो जाती थी।

अंग्रेजी शासन अत्याचार की चरम सीमा पर पहुँच गया था। सभी बड़े नेता गिरफ्तार हो चुके थे। संध्या समय एक बड़ा जत्था आगे बढ़ रहा था। राष्ट्रीय झंडे में महात्मा गांधी का चित्र लटक रहा था। नारों से आकाश गूँज उठा। चारों ओर से लोग दौड़े चले आ रहे थे। विरोध में सभा होने-वाली थी।

जय जयकार की ध्वनि सुनकर ललन को कौतूहल हुआ। वह ताला बंद कर बाहर आये। गली के मोड़ पर खड़े होकर ललन ने देखा कि पुलिस और सैनिक जलूस को आगे नहीं बढ़ने देते। इनमें झंडा छीना जा रहा था। युवक बड़ा साहसी था। वह अपने दोनों हाथों से झंडा पकड़े हुए था। पुलिस बल का प्रयोग कर रही थी, जनता उत्तेजित होकर कंकड़ पत्थर फेंकने लगी। तत्काल धांय धांय करती हुई बंदूक गरजने लगीं।

भगदड़ हुई, सड़क पर से जान बचाकर लोग भागे चले जा रहे थे। दूकानें सब बंद हो गयी थीं। भागनेवाले वीरों ने ललन का पैर कुचल दिया था। वह दूकान पर चढ़कर अपनी आँखों से सब कुछ देखना चाहते थे। फिर धांय धांय। भयानक चीत्कार। जितने घायल हुए। उनमें एक सात आठ वर्ष का बालक भी था। कैसा अंधेर है? ललन की आँखों में घृणा और क्रोध की ज्वाला धधक उठी, पर वह कर ही क्या सकते थे?

ललन की भुजा फड़की, जैसे एक बमगोला फेंककर वह समस्त साम्राज्य-वादी शक्तियों का अंत कर देंगे, लेकिन वह निहत्थे थे, तिरस्कार और रोष की भावना में मुट्ठी कस गयी। फिर पांचों उँगलियों ने मिलकर चोंच की आकृति ग्रहण की, कक्षा में नटखट विद्यार्थी जैसे अध्यापक की दृष्टि बचाकर चोंच दिखाकर अन्य बालक की हंसी उड़ाते हैं। ठीक उसी भाँति ललन भी सैनिकों के प्रति चोंच दिखाकर अपना विरोध प्रकट करने लगे। अंतर केवल

इतना ही था कि उन्हें किसी की दृष्टि बचाने का भय नहीं था। दूर से किसी ने संकेत किया, फिर धांय धांय, और ललन बाबू के मस्तक में गोली घुसकर पार कर गयी ! रक्त की धारा, अस्ताचल पर डूबते हुए सूर्य की लालिमा छा गयी। ललन भूमि पर गिर पड़े, पंछी उड़ गया, पिंजड़ा खाली पड़ा था। ऐसा था वह सन् बयालीस का वर्ष।

पुलिस के एक सिपाही की निगरानी में ललन का शव पड़ा था, किसी उत्तराधिकारी अथवा संबंधी के आने पर शव दाहकर्म के लिए मिलेगा। चारों तरफ सन्नाटा था, सड़क जनशून्य थी, कोई घर से बाहर निकलने का साहस नहीं करता था। ऐसे समय में पड़ोस के एक नापित ने ललन के भतीजे कुमुद को यह दुःखद समाचार दिया।

कुमुद अपने ननिहाल में रहता था। ललन नाम के चाचा थे। महीनों पर भूले भटके कुमुद से भेंट करने चले जाते थे। ललन के जीवन का अंत होने पर कुमुद ही एक मात्र उत्तराधिकारी था। पूर्वजों की संपत्ति में कभी बंटवारा नहीं हुआ था, जो कुछ था उसे ललन ने समाप्त कर दिया था।

अगस्त का महीना था। बरसात की अंधेरी रात में दाहकर्म का कर्त्तव्य पूर्ण कर कुमुद अपने संबंधियों के साथ घर लौटा था। बारह दिन का कृत्य पूरा कर जब कुमुद घुटे हुए सिर पर रुमाल बाँध कर स्कूल गया तब उसे बड़ी झेंप लग रही थी।

× × ×

दस वर्ष बीत गये।

दुबला पतला कुमुद अब तगड़ा हो गया था। इन दस वर्षों में कितने परिवर्तन हुए। महायुद्ध की पूर्णाहुति हुई, भारत में कांग्रेस सरकार को सत्ता मिली, कुमुद दो संतानों का पिता बना। उसके नाना नानी गृहस्थी का सब भार उस पर छोड़ कर परलोक सिधारे।

दो वर्ष तक बहुतेरे प्रयत्न असफल हुए। कुमुद को कहीं नौकरी नहीं मिलती थी। वह बी० ए० पास कर चुका था, लेकिन उसकी प्रतिभा और योग्यता का प्रश्न नहीं था क्योंकि बी० ए० पास कर कहीं नौकरी प्राप्त कर लेना कितना कठिन है। इसे समाचारपत्रों में आवश्यकता है के कालमों में व्यस्त युवक भलीभाँति जानते हैं।

कुमुद सफलताओं से परास्त होकर जब घर पर चुपचाप बैठा तब एक दिन उसके एक सहपाठी ने उसे बतलाया कि अगर वह किसी तरह पोलि-टिक्ल सफरर बन सके तो काम चल जाय।

कुमुद को अपने चाचा लालताप्रसाद का स्मरण हुआ। स्वतंत्रता की बलिवेदी पर उनका नाम भी अंकित है। वे शहीद हुए। बयालिस के हत्या-कांड में नगरी के दैनिक में उनका नाम भी निकला था। कुमुद ने कार्यालय जाकर उस तारीख की प्रति देखी। कुछ नोट किया, म्युनिसिपलिटी से फौती ली, काम बन गया।

राशनिंग में कुमुद इंसपेक्टर हो गया। ललन ने मर कर कुमुद का भाग्य चमका दिया। सालभर में कुमुद ने एक लाख की पुड़िया बना ली। अगर हजार के नोटों का झमेला न उठता तो बारह हजार और होते। कई बार संकट की आंधी आयी। कुमुद की जाँच होगी। कागज पत्र तलब होंगे शरणार्थियों के प्रार्थनापत्र पर काररवाई होगी। लेकिन यह सब कुछ बेकार।

कुमुद ने इस बार चुनाव में अपने अधिकारियों की आज्ञा का पालन करते हुए जिस परिश्रम से कार्य किया था उसके नाम पर किसमें इतनी शक्ति है कि उसका कुछ बिगाड़ सके।

बहुत से कर्मचारियों की सेवाएँ समाप्त हो गयी, किंतु कुमुद अभी तक अपने पद पर सुशोभित है।

जब कोई पूछता है कि राशनिंग एकदम टूट जाने पर क्या करोगे ?

तब वह यही उत्तर देता है—मुझे उसकी कोइ चिंता न होगी। मैं अपना स्वतंत्र व्यवसाय करूँगा।

———

प्रतीक्षा

वह एक स्वप्न था। नदी तट की निर्जनता थी। संध्या मुस्कुरा रही थी। उसकी गोद में बैठा हुआ मदन स्वप्नों पर सोने की कूची फेर रहा था। इतना ही उसका आकर्षक परिचय था। वह वहाँ बैठकर कुछ पंक्तियाँ लिखता और पास ही के एक लताभवन में, संसार की दृष्टि से छिपकर, अस्फुट शब्दों में उन्हें गाया करता था।

इसी गाने पर सुंदरी एक दिन मुस्कराकर चली गई थी। उसकी आँखों में गर्व था और चाल में मादकता।

मदन ने सुंदरी के इस भाव को देखा, सराहा भी; किंतु समझ नहीं सका। उसकी कल्पना का संसार नए रूप से नींव रखने लगा। परंतु लालसाओं पर उसका अधिकार नहीं था। वह दरिद्र था और सुंदरी राजकन्या।

एक दिन सुन पड़ा, मदन को राज्य की सीमा के बाहर निकल जाने की आज्ञा हुई है। अपराध का पता नहीं चला।

(२)

राजकुमारी को मदन का कुछ भी ध्यान न रहा। मदन चला गया। प्रेमोन्माद और वेदना बढ़ने लगी। कविता की गति बदलने लगी। भावों का उत्तरोत्तर विकास होने लगा। घायल हृदय के उच्छ्वास और भी गर्म हो चले।

सरिता तट पर निर्जन वन के हृदय से जब प्रतिध्वनि उठती तो उसकी सुरीली तान उसे स्मृति की गोद में बिठा देती थी। उस समय वह अपने को भूल जाता था! यही उसका सुख था।

दिन आते और चले जाते। हृदय में एक विचार धारा आती और बह जाती थी, और संसार के तट को एक जोर का धक्का लगाकर संसार की नश्वरता की कुछ मिट्टी बहा देती थी।

अब उसके बाल सफेद होने लगे। शरीर शिथिल हो चला।

(३)

राजकुमारी तारा का जीवन शांतिनगर के राजा के प्रेम सुख में बीतता रहा ।

दो युग बीत गए !

अब राजकुमारी एक वह रंगस्थली है, जिसके यौवन का नाटक समाप्त-प्राय और एक विगत गौरव की छायास्मृति है । और, मदन अब संसार की वह संपत्ति है, जो नित्य नवीन रहती है—वह कवि है, जो विश्व के हृदय में सदा ही सजीव और सचेष्ट है ।

अब उसे और कोई आशा नहीं थी । केवल जन्मभूमि की स्मृति से उसका आकर्षण कभी कभी असह्य हो उठता था । वह चाहता था, उस प्राप्ति के हृदय पर अपनी पूर्णता को खाली करे, कुछ शांति पावे ।

शांतिनगर के राजा का निमंत्रण आया ।

कवि उस नगर में गया । चारों ओर हर्षोल्लास का सागर उमड़ रहा था । तारा तक कवि की प्रशंसा पहुँच चुकी थी ।

कवि ने इतने दिन संसार के रहस्यों के ही गीत गाए थे । छिपी सौंदर्यश्री की तलाश थी ।

उसकी आँखों में तेज था । उसका व्यक्तित्व अजेय था । अतीत की व्याकुलता और निराशा की चिरशून्यता झलक रही थी ।

उस दिन महाराज की ओर से सभा हुई । मंच पर कितनी ही आँखों ने उसे देखा । बार बार अतृप्ति की उत्सुकता में भर भर कर कितने ही अपरिचित हृदय उसके परिचय से प्रसन्न थे । उसकी वाणी सभा में विजयी हुई । लोगों ने कहा—यह देवता है ।

(४)

कवि एक दिन राजा के बाग में झील के किनारे टहल रहा था । पार की घनी हरियाली जैसे चुपचाप उससे कुछ कहना चाहती हो, यह समझकर उसके निराश प्राणों में सजीवता आ जाती । वह गाता, झील की लहरें उस पर ताल दे देकर उसका समर्थन करतीं ! वह सुनता, समग्र वायुमंडल में उसके गीत गूँजते रहते ।

उसकी आँखें पीछे फिरीं। उसने देखा, राजमहल में एक स्त्री अपने बच्चों को खेला रही है। देखा, उसके यौवन की समाधि पर लावण्य आज भी उसका सहचर है। बार बार देखा। स्मृति ने उससे कहा—हाँ, यह वही राजकुमारी तारा है।

वह बड़े स्नेह से बच्चों को खेला रही थी। उनकी हँसी के साथ वह भी हँस पड़ती थी। कवि ने देखा, अब अधरों पर उषा की लाली नहीं है; वहाँ है अँधेरी संध्या के प्रकाश की धुँधली रेखा! उसने मन-ही-मन कहा—हाय, मैं इसके अरुण यौवन के गीत न गा सका!

(५)

एक दिन तारा के हृदय में भी कवि के दर्शन की श्रद्धा उत्पन्न हुई। बच्चों के साथ वह कवि की कुटी पर पहुँची। देखते ही कवि उसे पूर्व परिचित सा जान पड़ा। उसने आँखें नीची कर लीं, कवि को प्रणाम किया।

तारा ने पूछा—आपका जन्मस्थान ?

प्रेमनगर।

प्रेमनगर ?—तारा सोचने लगी।

कवि के मस्तक पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। वह थोड़ी देर के लिये चुप हो गया।

तारा स्मृतिसागर में डूब गई। उसके हृदय पर धीरे धीरे पूर्वकाल की घटनाओं की छाया पड़ने लगी! उसने मन-ही-मन कहा—यह मदन तो नहीं है? सारा वायुमंडल हरा हो उठा—यह मदन तो नहीं है ?

कवि की दृष्टि में तारा का प्रेम अब कपोलों पर सूखे आँसू की तरह दिखलाई देता था।

तारा ने धीमे स्वर में कहा—उस समय मैं आपको नहीं पहचान सकी थी। आप के गीतों का मूल्य नहीं समझ सकी थी। क्या अब आप नहीं गाते ?

अब सरिता की धारा में वेग नहीं है।

कवि ने एक बार आकाश की ओर देखा—धुँधली संध्या थी!

———

प्रत्यावर्तन

भाई जी ! भाई जी !! आज कल आप उदास क्यों रहते हैं ?

कमलनाथ अपनी ऊँची छत से, गंगा के पार की हरियाली पर, डूबते हुए सूर्य की सुनहली किरणों की शोभा देखने में तन्मय था। आँखें उधर लगी थीं और दिल अनमना होकर किसी भोली भाली स्मृति के पीछे—गंगा के मुक्त पथ में विचरनेवाले पवन की तरह—दौड़ रहा था। पास की छत पर फिर कुछ साँय साँय हुआ, और फिर आवाज आई—भाई जी ! भाई जी !! पान की डिबिया फेंक दूँ ?

कमलनाथ पान का प्रेमी था। पान का नाम सुनकर उसकी समाधि भंग हुई। घूमकर देखा, मुँडेरे की जाली में दो सफेद नन्हीं सी आँखें चमक रही हैं। कमल ने व्यंग किया—लाली, तुझे मेरे पान की बड़ी चिंता है !

चतुर लाली ने समझा कि मैंने कोई अपराध किया। चट बोल उठी—नहीं भाई जी ! भाभी पूछती हैं।

चुप—सायँ···सायँ···और लाली की पीठ पर एक धमाका।

लालो सिसक सिसक कर रोने लगी। कमल ने पूछा—लाली, तू क्यों रोती है ? उसने डरते डरते कहा—भाभी ने मारा है। कमल ने कहा—तुम्हारी मंगला भाभी बड़ी निठुर हैं।

मंगला हँस रही थी, उसने धीरे से कहा—क्यों री लाली ! अब मेरी शिकायत करेगी ? अच्छा, देखूँगी तुझे गुड़िया कौन देता है !

भोली बालिका झट से बोल उठी—भाई जी देंगे।

मंगला ने कहा—अच्छा लाली, भाईजी से पूछ कि आजकल रात को वह घूमने नहीं जाते ?

लाली ने कहा—मैं नहीं पूतूँगी, तुम पूत लो !

कमल सुन रहा था। वह चुपचाप मंगला की ओर देख रहा था। मंगला ने कहा—लाली ! पूछ। लाली ने पूछा—भाईदी, रात को गूमने नहीं दाते ?

कमल ने कहा—नहीं लाली, अब घूमने नहीं जाता। यह पैसेवालों का खेल है। यह सब कामता भाई जैसे धनी लोगों को ही शोभा देता है।

कहते कहते वह चुप हो गया। एक दृश्य उसकी आँखों के सामने फिर गया। श्यामा का वह मधुर गान, वह मनमोहनी मुस्कान, प्रेम की बातें, उसकी एक एक अदा, और भोली भाली सूरत की स्मृति ने उसे व्याकुल कर दिया। फिर वह विचार सागर में डूब गया।

अब लाली न बोलती थी। मंगला की लज्जा जाली की तरह कट गई थी। उसने स्वयं पूछा—क्यों! आज कल कुछ उधर से उदास हैं क्या?

कमलनाथ का माथा सन सन कर रहा था, हृदय में धड़कन कुछ बढ़ सी गई थी। न जाने क्यों, मंगला का मुँह देखने के लिये उसकी आँखें जाली तोड़ देने को व्याकुल हो पड़ीं।

मंगला ने फिर कहा—क्या भाई साहब के साथ आजकल जाना नहीं होता?

लज्जित न करो भाभी।

क्या नाम है उसका, श्यामा? कैसी है? होंगी बड़ी बड़ी आँखें, कुछ साँवली सी, हँसने से गालों में गड़े पड़ते होंगे! ताज्जुब तो यह है कि तुम दोनों रीझे हो!

कमल ने उकताकर कहा—आज क्या हो गया है तुम्हें भाभी? मैं तो यों ही कभी कभी भाई साहब के कहने से चला जाता हूँ।

तब अभी कच्चे चेले हो! कभी कभी अपने मन से भी जाया करो!

इसके बाद एक खिलखिलाहट सुनाई दी। कमल का दम घुटने लगा। वह फैलते हुए संध्या के अंधकार में विलीन हो जाना चाहता था। अकस्मात् उसके पीछे हरिकेन की रोशनी दिखलाई दी। वह कुछ बोलना चाहता था, किंतु नौकर को ऊपर आते जान चुप हो गया—सीढ़ी की ओर लौट पड़ा। न जाने क्यों, मंगला के इस वार्तालाप को छिपा देने के लिए उसे बड़ी उत्कंठा हुई, जैसी आज तक कभी न हुई थी।

मंगला अपनी छत पर से चली गई। कमल भी छत पर से हट गया।

रमुआ ने लालटेन रखते हुए कहा—बाबूजी! बड़े बाबूजी ने कहा है, जलदी कपड़ा पहनकर आवें हम तैयार हैं।

अभी थोड़ी देर पहले कमल ने सोचा था कि आज कामताप्रसाद के साथ श्यामा के यहाँ न जायँगे।

परंतु श्यामा के यहाँ चलना है, इस आह्वान को सुनकर वह अपना धैर्य न सँभाल सका; चलने की तैयारी करने लग गया।

(२)

फूल चँगेर में बहुत से चैती गुलाब की पँखुरियाँ चुनकर रखी थीं, जिनमें बादले काटकर मिलाये गये थे। कामता ने दोनों मूठ में उन्हें भरकर श्यामा के ऊपर उड़ा दिया। बसंत की चाँदनी में चंद्रमा की किरणों से चमकते हुए बादले श्यामा के मुख पर बिखर पड़े, और आबरवाँ की साड़ी पर गुलाब की पँखुरियाँ छींट का काम करने लगीं!

कामता ने कहा—वाह! आज तो बड़ी सुंदर दीख रही हो श्यामा!

श्यामा ने कहा—मगर कमल बाबू से कम। क्यों कमल बाबू! ठीक कहती हूँ न?

कमल ने कहा—क्या सब खार मेरे ही ऊपर रहता है?

फिर कामताप्रसाद ने कहा—खैर! कोई गाना सुना दो।

जरा देर बाद श्यामा ने गजल गाना आरंभ किया—

काबू में हो रहो तुम और ही किसी के।
कैसे कटेंगे ये दिन अब मेरी जिंदगी के॥

बीच ही में कमल बोल उठा—वाह! कैसी अपने मतलब की कही! अब किस तरह काबू में करना चाहती हो?

श्यामा कुछ कहना ही चाहती थी कि कामता ने शराब का गिलास उसके मुँह से लगा दिया। कुछ देर में दोनों नशे में झूमने लगे! नशे की बढ़ा बढ़ी में कामता ने उसका चुंबन किया।

कमल एकाएक उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—मैं अब जाता हूँ, मेरी तबीयत कुछ खराब है।

श्यामा ने कहा—छोटे बाबू! क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे?

कमल ने कहा—कामता भाई तो हैं ही। अब तो पूर्ण रूप से काबू में हो गये हैं।

यह कहकर उठने लगा, तो कामता ने कहा—आज क्या है जो तुम इस तरह जा रहे हो?

कमल ने कहा—आज मेरे सर में दर्द हो रहा है, मैं नहीं ठहर सकता सकता। बड़ी बेचैनी है!

इतना कहते कहते वह सीढ़ियों से नीचे उतर गया। अँधेरी गलियों से होता हुआ जल्दी जल्दी अपने मकान पर पहुँचा, और सीधे ऊपर की छत पर गया, जहाँ रामू ने पलँग बिछा रखा था।

पलँग को जरा और मुँडेरे की तरफ खींचकर कमल ने अपना कुरता उतारा। देखा, मंगला अपनी छत पर लेटी हुई लाली से बातें कर रही है।

कमल को देखकर मंगला ने कहा—आज क्या है जो इतनी जल्दी चले आये? क्या भाई साहब को अकेला छोड़ आये?

कमल ने कहा—मेरी तबीयत तो लगती नहीं थी। कामता भाई की वजह से बैठा रहा, फिर बहाना करके चला आया।

कुछ प्रसाद नहीं मिला।

कमल ने नेवारी की माला उतार कर फेंक दी—प्रसाद तो नहीं है भाभी! सूखे फूलों की अंजली है।

मंगला ने माला को कस कर अपने हृदय से लगा लिया। एक ठंढी साँस खींचकर कमल वहाँ से हट गया, आकर अपने बिस्तर पर लेट रहा।

बूटेदार साड़ी की तरह क्षितिज में तारे झिलमिला रहे थे।

(३)

कुछ दिन बीत गये। एक दिन मंगला की मजदूरिन ने आकर कहा—बाबू जी! आपको बहू ने बुलाया है।

कमल की आँखों के सामने उसकी कल्पना का संसार नाचने लगा। बड़ी प्रसन्नता से उसने कहा—चलो मैं अभी आता हूँ।

कमल जब पहुँचा, तब मंगला क्रिरोशिया की एक बेल बुन रही थी। उसने कहा—क्यों बुलाया है भाभी? कामता भाई बाहर से कब आवेंगे? आज उन्हें गये चार दिन हो गये।

मंगला—एक चिट्ठी लिखनी थी, इसीलिए आपको इतना कष्ट दिया है।

कष्ट कौन सा है—किसको लिखना है?

मंगला—इसी तरह, एक आदमी को।

एक आदमी को ! क्या कामता भाई को ?

हाँ······नहीं······।

तब किसको ?

लिखो भी तो।

अच्छा, बोलो, किसको लिखूँ और क्या लिखूँ ?

मंगला—जिसको लोग बहुत चाहते हैं उसे क्या कहकर लिखते हैं।

पुरुष अगर लिखे तो, प्राणप्रिये !—और स्त्री लिखे तो प्राणनाथ।

हाँ ······ यही लिखो।

अच्छा, लिखा—प्राणनाथ ! और बोलो ?

लिखो कि—मैं तुम्हें इतना चाहती हूँ, और तुम्हें मेरा ध्यान तक नहीं रहता; तुम दूसरे के दिल का दर्द क्या जानोगे !

कमल चुपचाप आश्चर्य से मंगला की तरफ देख रहा था, और वह कहती ही रही—मैं तुम्हारे लिए दिन रात व्याकुल रहती हूँ।

भावाविष्ट उन्मत्त के समान मंगला कहकर चुप हो गई। कमल ने पूछा—यह क्या लिखा रही हो भाभी ! कुछ समझ में नहीं आता।

आवेश में मंगला ने तो कह डाला, किंतु लज्जा से उसका हृदय धँसा जाता था। वह सर नीचा किये बैठी थी।

कमल—पत्र लिख गया है। अब पता लिखाओ।

मंगला—नहीं ! पता नहीं लिखाऊँगी।

तब पत्र लिखाने से फायदा। चिट्ठी तो जायगी नहीं, जब तक पता न लिखा रहेगा।

सब पता तुम्हीं जान लोगे ?

अच्छा, न बताओ।

मंगला ने कमल की तरफ देखते हुए कहा—मेरा काम हो गया—जिसे पत्र लिखाया था, उसने पढ़ लिया।

कमल—यह क्या ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता !

खुद समझ लोगे ! और क्या साफ साफ कहूँ ? अच्छा, लिख दो श्रीमती श्यामा देवी।

किसी की दिल्लगी उड़ाने में तुमसे बढ़कर चतुर मैंने नहीं पाया।

इसमें दिल्लगी क्या है ? जब तुम समझते ही नहीं, तो और क्या कहूँ। खैर, श्यामा का नाम न लिखिये, अपना नाम लिख लीजिये।

कमल आश्चर्य से चुपचाप मंगला की तरफ देख रहा था। उसे मंगला के साहस पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। उसने कहा—इस पत्र के लिए मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

मंगला ने निगाह नीची कर ली। कमल काँप रहा था, मानों उसने कोई घोर पाप किया हो। उसने कहा—देखो, घड़ी में बारह बज गये। अभी तक स्नान भी नहीं किया है, अब जाता हूँ।

मंगला—अच्छा, अब कब दर्शन मिलेगा ?

कमल—जब याद करोगी भाभी !

मंगला—भाभी कहकर अब क्यों लजाते हो ?

कमल—तो क्या कहूँ ?

मंगला—मेरा नाम।

कमल—अच्छा, वही सही।

(४)

कामता—

कामताप्रसाद अपना देश छोड़ कर व्यापार करने के लिये आये थे। उनको व्यापार करते हुए तीन वर्ष हो गये। इन्हीं तीन वर्षों में उन्होंने अपना बहुत सा धन नष्ट कर दिया था। उस समय उनके चार साथी थे, किंतु अब कोई उनके पास न आता। धन सब उड़ चुका था। कमलनाथ से उनकी बड़ी मित्रता हो गई थी।

अपने कमरे में बैठे सोच रहे थे—

क्या श्यामा अब वहीं है ? अभी उस दिन श्यामा ने कहा था, आप मेरा कुछ खयाल नहीं करते, मुझे रुपयों की आवश्यकता है, और आप तीन महीने से कुछ नहीं देते ; मेरा काम कैसे चलेगा ?

मैं क्या करता, रुपये तो हैं ही नहीं। और भी देखता हूँ कि अब उस 'ओवर ऐक्टिंग में सर्वस्व अर्पण करने की भूल होने लगी है। कभी कभी मैं घंटों ऊपर के कमरे में बैठाल दिया जाता हूँ—और जब वह लौटकर आती है, तो उसके मुख पर फीकी हँसी तिरस्कार सी उठती है।

❀ ❀ ❀ ❀

मंगला—

मंगला—कामता की स्त्री है। पति के व्यवहार से दुःखी रहती है। आपस में प्रेम न था, इसीलिए अनबन रहा करती। लाली उसके साथ रहती। लाली कामता के चचा की लड़की है, इसीलिए कामता को भाईजी कहती है। कामता के मित्र होने के कारण कमल को भी वह भाईजी कहती है। अभी उसकी अवस्था तीन वर्ष से कुछ अधिक है, फिर भी वह बहुत कार्य करती है—उसके बिना मंगला का दिन कष्ट से कटता था।

❀ ❀ ❀ ❀

कमल—

कमल का मकान कामता के मकान के पास ही था। वह मंगला को चाहता था; किंतु प्रकट नहीं कर सकता था—उसका प्रेम छिपा हुआ था। वह एक दूसरी स्त्री से प्रेम करना अन्याय समझता था, किंतु बहुत कोशिश करने पर भी अपने को सम्हाल न सकता था। प्रेम की लहरें उसके हृदय सागर पर लहरा रही थीं। वह दिन रात मंगला का ध्यान किया करता था।

* * * *

श्यामा और कामता की पतंग खिंचकर लड़ने लगी। कमल और मंगला परेते उलटकर पतंग ढील दे रहे थे।

(५)

वर्षा के सूर्य की किरणें बादलों को फाड़कर फैल रही थीं। आकाश में इंद्रधनुष निकला था। प्रकृति हँस रही थी। अभी तक, वृक्षों और छोटे छोटे पौधों के पत्तों पर, वर्षा की बूँदें हीरे के समान चमक रही थीं। चारों तरफ घनी हरियाली दिखलाई देती थो। अब कामता श्यामा के यहाँ नहीं जाते थे, इसीलिए उदास रहा करते थे। उनकी आत्मा बार बार कहती—तुमने बुरा किया है, ये वेश्याएँ भला किसकी होती हैं?

अकस्मात् कामता उठ खड़े हुए। आज वह उग्र भाव से श्यामा के घर की ओर चले। श्यामा बैठी थी; उसने कामता को देखते ही मुँह फेर लिया। कामता ने पूछा—क्यों श्यामा, क्या अब मुझसे न बोलोगी?

झूठे आदमियों से बोलने से क्या मतलब?

क्या यही तुम्हारा अंतिम उत्तर है ?

हाँ।

कामता सर थामकर बैठ गये। बड़ी देर तक बैठे रहे। विश्व ब्रह्मांड उनके सामने घूमने लगा। वह अचेत बैठे रहे। जब श्यामा के नये चाहने वाले आये, सारंगी पर सुर मिलने लगा, तब भी उनको चेत नहीं था। तबले की थाप ने उनके सर पर धौल सी जमा दी। वह उन्मत्त भाव से उठे और घर की ओर चल पड़े।

* * * *

आज बड़ी सुहावनी रात है।

तुम्हारे इस मिलन के लिए ही विधाता ने इसे मनोहर बना डाला।

प्राणाधिके! हृदय की जलन मिटा दो।

अकस्मात् पीछे से किसी ने कमल की गर्दन पकड़कर कर्कश कंठ से कहा—नीच! नरक की ज्वाला तुझे जलावेगी। विश्वासघाती !!

कामता के हाथों में छुरा चमक उठा। झपटकर मंगला ने कहा—निर्दोष की हत्या न करो—और छुरेवाला हाथ पकड़ लिया। उन्मत्त कामता ने छुरा हाथ से गिरा दिया। वह बैठ गया। तीनों बड़ी देर तक चुप थे। फिर कमल उठा और चला गया। कहाँ गया, पता नहीं।

(६)

प्रकृति सुनसान हो जाती, एक शब्द भी कहीं न सुन पड़ता। चारों तरफ सायँ सायँ होता। उस समय वंशीवाला अपनी वंशी लेकर बैठ जाता। उसकी ध्वनि में अपूर्व शक्ति थी, उसके बजाने में निपुणता थी। एक बार लोग उतावले होकर उसे सुनते। यही वंशीवाले की वंशी में विशेषता थी! उसकी वंशी कभी कभी सुन पड़ती थी, इसीलिए लोग उत्सुकता से सुनते। उसके बजाने पर सबको आश्चर्य होता।

बहुत से लोग उसे पागल समझकर बात भी न करते थे। वंशीवाले को देखकर तुरंत यह ज्ञात हो जाता था कि उसे अपने सौंदर्य का मोह नहीं है।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में किसी-न-किसी से अवश्य प्रेम करता है। उसी प्रेम के कारण वह बदनाम होता है, निराश होता है, अपना जीवन नष्ट

कर देता है, उसका प्रणयपात्र उसे भूल जाता है। किंतु फिर भी वह प्रेम की उपासना करता है।

वंशीवाला भी किसी को चाहता था। संसार से उसे निराशा होती। किंतु वह उस प्रेम के भाव को अपने अंतर से न हटा सकता।

× × ×

उस दिन नवरात्र का प्रथम दिवस था। रजनी ने चौथे पहर में प्रवेश किया था। वंशीवाला गंगा तट पर बैठा वंशी बजा रहा था। कब से बजा रहा था, यह मालूम नहीं। कभी वंशी बजाता, कभी उसे बगल में रखकर चुपचाप गंगा की तरफ देखता और किसी स्वर्गीय संगीत को सुनता। गंगा की कलकल ध्वनि उसके कानों में गूँज रही थी। फिर वह कुछ गुनगुनाने लगता, कुछ विचार करता और फिर वंशी बजाने लगता। अभी उषा की लाली पूर्व दिशा में कुछ कुछ छा रही थी। पक्षी वृक्षों पर कलरव कर रहे थे। उसी समय घाट पर दो स्त्रियाँ स्नान करने को आईं। वंशीवाला वंशी बजा रहा था। स्नान करने के पश्चात् उसमें से एक घाट के तख्ते पर बैठ गई। उसकी सखी ने कहा—बैठी क्यों हो ? चलो…न…।

बड़ी सुंदर वंशी बज रही है !

देखो, कहीं वंशी सुनकर पागल न हो जाना।

चुप……।

वंशीवाले के कानों में परिचित स्वर सुन पड़ा। वह वंशी रखकर चुपचाप देखने लगा। वायु के मंद मंद झोकों से बाल हिल रहे थे। वह खड़ा होकर आश्चर्य से देखने लगा। उसका हृदय धक धक कर रहा था। मंदिर के घंटों की ध्वनि सुन पड़ती थी। उसने पहचान लिया और उदास हो गया। वह परिचित के समान उनकी तरफ देखने लगा और वह स्त्री भी आश्चर्य से देखती हुई उसके पास आ गई। बोली—अरे ! तुम यहाँ कहाँ ?

वंशीवाला चुपचाप देख रहा था।

वंशी कब से बजाने लगे कमल बाबू ?

जब से तुमसे अलग हुआ भाभी !

एक दिन मेरे यहाँ आकर वंशी नहीं बजाओगे ? आजकल दिखाई नहीं देते; कहाँ रहते हो ?

हृदय का वास्तविक रूप कोई समझता नहीं, संसार हँसता है।—कहते कहते कमल चुप हो गया।

मंगला उसकी तरफ देख रही थी। फिर कमल ने कहा—तुम्हारे ही कारण आज मैं वंशी बजा लेता हूँ—किंतु अब वह भी इस जीवन में न बजा सकूँगा।

इतना कहते हुए कमल ने अपनी वंशी जाह्नवी को समर्पित कर दी। वंशी गंगा की लहरों के साथ बहती हुई चली जा रही थी, और वह वहाँ से तिरछी तरफ दौड़ता हुआ चला जा रहा था। मंगला व्याकुलता से उसकी तरफ देख रही थी। देखते देखते वह उसकी आँखों से, गिरते हुए तारे की तरह, ओझल हो गया।

बहुत दिन बीत गये—मगर कमल का फिर पता न लगा।

प्रमदा

उसका नाम था—प्रमदा।

मैं पुकारता—प्रमदा, आओ।

वह कहती—अभी आती हूँ गोपाल !

वह आती और हम लोगों का खेल आरंभ हो जाता। उस समय मेरी अवस्था दस वर्ष की थी, प्रमदा मुझसे दो वर्ष छोटी थी।

संध्या समय मुझे पढ़ाने के लिये मास्टर आते। कभी कभी वह देर में छुट्टी देते। उस समय प्रमदा व्याकुल होकर मेरे द्वार पर मुझे बार बार देखती। मैं भी खेलने के लिये चंचल हो उठता, और पढ़ने में तनिक भी मन न लगता। इसी अपराध के लिये मुझे कभी कभी मार भी खानी पड़ती।

खेल के समय पड़ोस के सब लड़के एकत्र हो जाते। हम लोग कभी गेंद लेकर खेलते और कभी 'चोर चोर' खेलते। उसमें प्रायः प्रमदा ही चोर रहती, और वह खेल में सफल भी नहीं होने पाती; अतएव उसके बदले मैं ही उसका स्थान ले लेता।

बातचीत में हम लोग आपस में लड़ते। कभी प्रमदा से लड़ाई होने पर कई दिनों तक बोलचाल न होती। फिर प्रमदा आती और मेल हो जाता!

इसी तरह दो वर्ष बीत चुके थे। मैं भी स्कूल पढ़ने जाता था, और प्रमदा भी बाहर खेलने के लिए निकलने न पाती थी। जब कभी वह मेरे घर पर आती, तब हम दोनों बैठ कर ताश खेलते थे। उस समय और तो कोई खेल नहीं आता था; हाँ, रंगमार खेलना आता था। अथवा ताश की गड्डी लेकर हम दोनों बैठ जाते। वह ताशों का मकान बनाती और मैं भी। जिसका मकान ऊँचा बनता, वही जीतता था। मैं आँख बचाकर प्रायः फूँक कर उसका घर गिरा देता और कहता—देखो, हवा से तुम्हारा मकान गिर गया। वह बेचारी फिर से अपना मकान बनाती। यही हम दोनों के मन बहलाव का एक साधन था। प्रमदा के बिना मेरा मन न लगता था।

मैं पुकारता—प्रमदा, आती हो ?

प्रमदा कहती—गोपाल, अम्माँ नहीं आने देती। अभी घर का काम करना है।

मैं निराश हो जाता, और घर में आकर चुपचाप बैठ जाता।

× × × ×

अब प्रमदा १३ वर्ष की हो चुकी थी। वह मुझसे बहुत कम बोलती। कारण, उसके घर वाले इसे पसंद न करते थे। अतएव अब मेरा मन बहलना कठिन था।

लड़कपन की सब बातें भी बदलती जा रही थीं। लज्जा, संकोच और विवेक ने हृदय में प्रवेश किया। मेरे सब साथी मिलते, किंतु प्रमदा न आती, इसका बड़ा दुःख होता। धीरे धीरे हम लोगों के सब खेल बंद हो गए।

प्रमदा के पिता दफ्तर में नौकरी करते थे। उनकी बदली हो गई। वह दूसरी जगह चले गए। सुना था, उसी साल प्रमदा का विवाह भी होगा।

प्रमदा का फिर कुछ पता न लगा।

दस वर्ष बीत चुके थे। एक दिन प्रमदा का पुराना नौकर कल्लू आया। उसने पूछा—भैया, अच्छे हो? घर में सब कोई मजे में हैं?

मैं कुछ देर तक उसकी तरफ देखता रहा; मगर पहचान गया कि कल्लू है। मैंने कहा—तुम कैसे आए कल्लू? क्या बाबू के यहाँ की नौकरी छोड़ दी?

उसने कहा—नहीं भैया, वहीं हूँ। उन्हीं लोगों के साथ आया हूँ।

मैंने पूछा—प्रमदा कैसी है? क्या वह भी आई है?

कल्लू ने कहा—यहाँ सब के साथ यात्रा करने आई हैं। उनका विवाह दिल्ली में हुआ। अब तो लड़के भी हैं, एक पाँच वर्ष का है और दूसरा तीन वर्ष का।

मैं पूछा—अब खेलने के दिन गए।

कल्लू ने कहा—भैया, चलो, एक बार सबसे भेंट कर लो न।

उस दिन से मैं प्रायः नित्य धर्मशाला में भेंट करने जाता। प्रमदा के पति बड़े स्वच्छ हृदय के, मिलनसार, आदमी थे।

(२)

मैंने कहा—सुनो।

उसने कहा—क्या ?

मैंने कहा—जरा यहाँ आओ।

उसने कहा—अभी काम है।

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

उसने कहा—मत······हाँ······एँ !

मैंने कहा—एक बड़ी जरूरी बात कहनी है।

उसने कहा—आखिर कहो भी तो।

मैंने कहा—तुम्हारी नाक में नथ बड़ी सुंदर लगती है।

न जाने क्यों, उस दिन मैं बड़ा उदास था, अपने को बहलाने की चेष्टा कर रहा था।

उसने कृत्रिम हँसी हँसकर कुछ शर्माते हुए कहा—तुम्हारी बात बस यही है ? अच्छा, अब मैं इसे न पहनूँगी।

उसने उसी समय संदूक में से नाक की कील ढूँढ़ निकाली और उसे पहनकर उसने कहा—देखो, अब यह तो हुआ तुम्हारे मन का फैशन ?

वह मुस्करा रही थी। मैंने उन्मत्त के समान देखते हुए कहा तुम्हें इसी तरह दिन रात देखते रहने की बड़ी इच्छा होती है।

अपनी झेंप मिटाने के लिये पुकारा—विलास !

आवाज आई—हाँ !

मैं आपे में आ गया। बालक विलास दौड़ता हुआ आया। उसके हाथ में एक गेंद था। मैंने विलास को गोद में लेकर चूम लिया। पूर्व काल की स्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं। मैं भी कभी बालक था ! कितना सुखी था ! आह, वह जीवन सदैव बना रहता, तो संसार स्वर्ग बन जाता।

*   *   *

सूर्यदेव की किरणें आकाश में पूर्ण रूप से बिखर चुकी थीं। मैं धर्मशाला के कमरे में बैठा हुआ विचारों में लीन था। कभी हँसता, कभी गाता और कभी रोता था।

वह स्नान करके उठी थी। मेरे सामने आई। मैं एकटक उसकी तरफ देखने लगा।

उसने पूछा—क्या सोच रहे हो ? इतने उदास क्यों हो ?

मैंने कहा—कुछ नहीं, यों ही।

उसने कहा—भला कुछ तो—बतलाते क्यों नहीं?

मेरे नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली। वह अपने आँचल से पोंछने लगी।

उसने कहा—किस लिये रोते हो? मेरे लिये! पुरुष होकर रोते हो! तुम्हें तो मुझे धैर्य देना चाहिए, सो······!

इतना कहते कहते वह भी रो पड़ी। उसकी सिसकियाँ बँध गईं। मैं अपने रूमाल से उसकी आँखें पोछने लगा।

उसने कहा—हम लोगों के लिये यह सब याद करने पर केवल स्वप्न की सी बातें मालूम होंगी।

मैंने कहा—संयोग था।

दूसरे दिन प्रमदा सबके साथ चली गई।

जीवन के अंत में मृत्यु है, सुख के बाद दुःख है, दुःख के बाद सुख है। प्रेम में सुख भी है और दुःख भी। मिलन के बाद वियोग है, वह भी सुख है, और मान लेने पर दुःख भी है।

अब मेरे भी वियोग के दिन थे।

जब अस्ताचल पर जाते हुए सूर्यदेव की सुनहली किरणें आकाश से बिदा माँगतीं; पक्षियों का कलरव सुन पड़ता, एक के बाद एक कतार बाँधकर जब सब अपने बसेरे की ओर लौटते; वृक्षों पर धीरे धीरे अंधकार छा जाता, प्रकृति सूनसान हो जाती; आकाश में दो चार तारे दिखलायी देते, चंद्रदेव का क्षितिज में प्रवेश होता और हँसती हुई चाँदनी गंगा की लहरों से कल्लोल करती, तब मैं उसके तट पर एकांत में अपनी छिन्न अंतर्वीणा लेकर बैठ जाता और रो रोकर अतीत की स्मृतियों की रागिनी गाने लगता। न किसी से बात करता, न किसी से मिलता। मैं एकांतप्रिय हो गया था। चुपचाप बैठकर कभी घंटों आकाश के तारों की ओर ही देखता रह जाता, और कभी गंगा की लहरों की ओर।

बस, यही मेरी दिनचर्या थी।

लोग मुझे पागल समझते; किंतु इस पागलपन को वही जान सकता है, जिसने कभी प्रेम गंगा में डुबकी लगाई हो!

———

?

हम मरने से नहीं डरते; मगर इस तरह का मरना वैसा ही है, जैसा वधिक द्वारा जँगनेवाली गाड़ी में पकड़े हुए कुत्तों का।

यह तुम्हारी भूल है।

मेरी भूल! कदापि नहीं, देखो—हम लोग भी कुत्तों ही की तरह जेल में बंद हैं! जब वधिक रस्सी का फंदा बनाकर सड़क पर भागते हुए कुत्तों की ओर फेंकता है, तब देखने वालों को तरस आता है और वे तालियाँ पीटकर 'धत् धत्' चिल्लाते हुए उसे फंदे से बचाना चाहते हैं। ठीक उसी तरह, जब हम लोग गिरफ्तार होते हैं, तब दर्शक 'वन्दे मातरम्! भारमाता की जय!!' की पुकार मचाया करते हैं। यह ठीक वैसा ही है।

कानून भंग करने, जेल जाने और असहयोग करने के सिवा, देश के पास और कोई साधन भी तो नहीं है।

गुलामी का बदला—गुलामी का बदला—दाँत पीसकर कहते कहते उनका मुँह आरक्त हो गया, सिर के बाल खड़े हो गये, भवें तन गईं और उन खूनी आँखों में क्रांति की ज्वाला उठने लगी।

मैं आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा।

उसने फिर उसी स्वर में कहा—संसार के इतिहास में कोई भी ऐसा देश नहीं, जो बिना युद्ध के स्वतंत्र हुआ हो। स्वाधीनता का मूल्य मृत्यु है। सपना देखकर कोई मुक्त नहीं हो सकता। आदर्श सिद्धांत लेकर सब महात्मा नहीं बन सकते। मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता, मैं तो युद्ध में विश्वास करता हूँ। मैं कुत्तों की मौत नहीं चाहता, मैं योद्धा की तरह जूझना जानता हूँ।

मैंने बड़ा साहस करके कहा—मगर मैं तुम्हारी इन बातों में विश्वास नहीं करता, यह सब असंभव है।

उसने पूछा—एकदम नहीं?

मैंने कहा—नहीं।

न जाने क्या समझकर वह चुप हो गया, फिर एक शब्द भी न बोला।

संध्या अस्ताचल पर सो रही थी। हम दोनों जेल की चहारदीवारी के भीतर टहल रहे थे। वह पेड़ों के घने पल्लवों में अरुण किरणों का खेल देखने लगा। उसे लाल रंग अधिक पसंद था; क्योंकि वह क्रांति का उपासक था।

मेरी दृष्टि उस बूढ़े जमादार पर पड़ी। वह हमीं लोगों की ओर आ रहा था। उसने पास आकर हम लोगों की ओर देखते हुए पूछा—क्या भागने की तरकीब लगा रहे हो?

मैंने कुछ उत्तर न दिया; क्योंकि उसने अपनी पतली बेंत की छड़ी हिलाते हुए कई बार मुझ पर अपशब्दों का प्रयोग किया था; मगर मेरा साथी यह सह न सका। उसने फौरन उत्तर दिया—जिस दिन भागना होगा, उस दिन तुमसे पूछ लूँगा।

जमादार मन-ही-मन भुनभुनाता हुआ चला गया। हम लोग भी कैदखाने की कोठरी में चले आये। उस दिन फिर उससे कोई बात नहीं हुई।

(२)

दमन आरंभ हो गया था। असहयोग के दिन थे। जेलों की दशा मवेशीखानों से भी बदतर हो गई थी। खुली सभा में जोशीला भाषण देने के अपराध में मुझे भी छः मास की सजा मिली थी। जेल में ही मेरी उसकी जान पहचान हुई। पहली बार सामना होने पर उसने आँखें गड़ाकर मेरी ओर देखा था; जैसे कोई अपने किसी परिचित को पहचानने की चेष्टा कर रहा हो। कुछ देर बाद मेरे समीप आकर उसने पूछा—कितने दिनों के लिये आये हो?

मैंने कहा—एक सौ बयासी।

वह मेरी तरफ देखता हुआ मुस्कराने लगा। परिचय बढ़ा, घनिष्टता हुई।

मेरे उसके विचारों और सिद्धांतों में बहुत अंतर था; लेकिन फिर भी मैं उसकी वीरता का आदर करता था।

दिन पहाड़ हो गये थे।

मैं जेल के कष्टों से जब घबरा जाता, तब यही विचार करता कि—हे भगवन्, कब यहाँ से छूटकारा होगा। घर की चिंता थी—बाल बच्चे भूखों

मरते होंगे। क्या करूँ, कोई उपाय नहीं। ऐसी देशसेवा से क्या लाभ? यहाँ तो घुल घुलकर प्राण निकल जायगा; किंतु हमारे इन कष्टों से जकड़े हुए जीवन की बातें कौन समझेगा? इस अभागे देश के लिए कितनों ने प्राण निछावर कर दिये; मगर आज उनके नाम तक लोग भूल बैठे हैं। यह सब व्यर्थ है, अभी इस देश के लिए वह समय नहीं आया है।

और, जब उसकी ओर देखता, तब हृदय में साहस उमड़ पड़ता। वह हँसते हँसते प्राण तक उत्सर्ग कर देने में नहीं हिचकता। उसे किसी बात की चिंता ही न थी। वह इतनी लापरवाही से जेल में घूमता, हँसता और बोलता; मानों जेल ही में उसका घर हो। उसकी इस दृढ़ता पर मैं मुग्ध था। अपने हृदय को मैं कभी कभी टटोलने लगता। मैं सिद्धांतवादी था—'अहिंसा परमो धर्मः'—मेरा आदर्श था। मुझ जैसे लोगों को वह मन में कायर समझता था।

हमें आपस में बातें करने का कम अवसर मिलता था; क्योंकि हमलोग कैदी थे—गुलाम थे—राजद्रोही थे! वह अपने हृदय को खोलकर मुझे नहीं दिखा सकता था, और मैं भी अपनी बात उससे नहीं कह पाता था। पहरा बड़ा कड़ा था। जेल के निरंकुश शासन की जंजीरों में हम जकड़े हुए थे। फिर भी हम एक दूसरे को देखकर सब बातें समझ लेते थे। हमारी मौन भाषा थी।

इस तरह पाँच महीने समाप्त हुए!

मैंने पूछा—इस बार जेल से निकलने पर क्या करोगे?

उसने कहा—डाका—हत्या—पूँजीपतियों का विध्वंस—गरीबों का राज्य स्थापन!

मैंने पूछा—विवाह नहीं करोगे?

नहीं।

क्यों?

वह एक दृढ़ बंधन है।

तुम्हारे घर में कौन कौन हैं?

बूढ़े माँ बाप और······

और?—

कोई नहीं; बड़ा भाई कालापानी भेज दिया गया !

....

....

तब माँ बाप का निर्वाह कैसे होता है ? घर की कुछ संपत्ति होगी ?

राजपूताने में जागीर थी, वह अब जब्त हो गई है ।

उनके प्रति भी तुम्हें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये ।

उनकी आज्ञा और आशीर्वाद से ही तो मैं यह सब कर रहा हूँ ।

क्या तुम्हारे इस कार्य से वे हिचकते नहीं ?

नहीं । दुःख हम लोगों का सहचर है, और मृत्यु ही हमारा जीवन ।

विचारों की इस भीषणता ने तुम्हारे हृदय को पत्थर बना दिया है !

हो सकता है ।

तुमने कभी किसी को प्यार भी न किया होगा ।

यह कैसे समझा ?

तुम्हारी बातों से ।

मेरे प्यार में मधुरता नहीं हो सकती, उसमें भी संसार को भस्म कर देनेवाली ज्वाला भरी है !

उस दिन बहुत देर तक उससे बातें होती रहीं । मुझे अपना समझकर उसने अपने प्रेम के संबंध में भी कुछ मुझसे कहा । वह एक दरिद्र की कन्या के प्यार को हृदय में छिपाये हुए था । उसकी माँ ने उस गरीब बालिका से विवाह की अनुमति भी दे दी थी । लड़की के पिता को भी स्वीकार था; मगर उसने यह कहकर टाल दिया कि अभी मेरे विवाह का समय नहीं आया है । बालिका की अवस्था इस समय सोलह वर्ष की है, अभी तक वह उसकी प्रतीक्षा में बैठी है ।

आगे उसने कहा—देखता हूँ, अविवाहिता रहकर वह अपना जीवन काट देगी ! मैं सत्य कहता हूँ उसपर मेरा पूर्ण विश्वास है । उसमें दैवी शक्ति है । वह सदैव मुझे उत्साहित करती रहती है । वह वीर बाला है । एक दिन उसने कहा था—मरने के लिए ही जन्म हुआ है—सदैव कोई जीवित नहीं रहेगा—फिर मृत्यु से भय कैसा ? उसकी यह बात मेरे हृदय पर अंकित है, मैं आजन्म इसे न भूलूँगा ।

मैं एकाग्र मन से उसकी बातें सुन रहा था ।

इस घटना के तीन दिन बाद, दूसरी जेल में उसकी बदली हो गई—वह मुझसे अलग हो गया।

उसके चले जाने पर मेरे लिए जेल सूना हो गया। जिस दिन उसकी बदली हुई थी, उस दिन चलते समय मेरी ओर देखते हुए उसने कहा था—जेल से छूटने पर एक बार तुमसे भेंट करूँगा। आशा है, तुम मुझे न भूलोगे।

मैंने भी बड़ी सहृदयता से कहा था—तुम भूलने लायक व्यक्ति नहीं हो।

हथकड़ी बेड़ियों को खनखनाते हुए—एक बार मुस्कुराकर मेरी आँखों से वह दूर हो गया।

उसके जाने के सातवें दिन बाद, मैं जेल के फाटक के बाहर निकला। कुछ दूर जाकर जेल की ओर उसी तरह देखता जाता, जैसे बंदूक की आवाज सुनकर प्राण के भय से भागता हुआ हिरन कहीं छिपकर अपने शिकारी को देखता जाता है।

छः महीने जेल में काटने के बाद, मुक्त होने की प्रसन्नता से उछलते हुए, दौड़ते हुए, घर आकर देखा, तो ब्रह्मा की सृष्टि ही बदल गई थी। मेरे सामने अंधकार नृत्य करने लगा।

आभूषण और घर का सामान बेचकर मेरी पत्नी ने छः महीने काम चलाया। मेरे पहुँचने पर घर में भूजी भाँग भी न थी। बड़े फेर में पड़ा। सरकारी नौकरी भी नहीं कर सकता था। व्यवसाय के लिये पूँजी न थी। देश सेवक का भेष बनाकर मैं भटकने लगा। कोई बात तक न पूछता!

दो वर्षों का समय केवल उलझनों में ही फँसा रहा। देशभक्ति के भाव दिन पर दिन शिथिल होते जा रहे थे।

एक दिन—पता नहीं, कौन सा दिन था—मैं गृहस्थी का कुछ सामान लेने बाजार जा रहा था। मैं बड़ी जल्दी में था। कारण, जाड़े की रात थी। दूकानें आठ बजे तक बंद हो जाती थीं।

मेरी बगल से घूमकर एक आदमी मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मेरी ओर ध्यान से देखकर उसने कहा—रामनाथ!

उसे पहचानने की चेष्टा करते हुए आश्चर्य से मैंने कहा—अ...म...र...सिंह!

उसने कहा—हाँ।

मैंने कहा—यह कौन सा विचित्र वेश बनाया है? तुम्हें तो पहचानना कठिन हैं!

लेकिन तुमने तो पहचान लिया।

मुझे भी भ्रम हो गया था। जेल से कब आये?

दो महीने हुए। घर गया, तो माँ तड़प तड़पकर मर गई थी। बूढ़ा बाप पागलखाने भेज दिया गया था। वहाँ जाकर उनसे भेंट की थी। वे मुझे पहचान न सके। मैं चला आया। अब अकेला हूँ। इस बार फाँसी है, गिरफ्तार होते ही।

यह क्या कह रहे हो। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है!

देखो—वह दो तीन सी० आई० डी० आ रहे हैं। अच्छा, चला।

देखते देखते वह गायब हो गया। मैं भय से काँप रहा था। उसका चेहरा कितना भयानक हो गया था—ओह!

(४)

अंधकार था। सूनसान नदी का किनारा साँय साँय कर रहा था। मैं मानसिक हलचल में व्यस्त घूम रहा था। अपनी तुलना कर रहा था—अमरसिंह से। ओह! कैसा वीर हृदय है! और एक मैं हूँ, जो अपने सुखों की आशा में—गृहस्थी की झंझटों में—पड़ा हुआ मातृभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य भूलता जा रहा हूँ। मन में तूफान आया—अगर अमरसिंह से भेंट हो जाय—मैं फिर से उसके साथ ··वह प्रायः यहीं तो टहलने आता है। उससे भेंट हो जाय, तो क्या ही अच्छी बात हो।

मैं जैसे अमरसिंह को खोजता हुआ उसी अंधकार में घूमने लगा। कुछ देर बाद, एक क्षीण कंठ से सुनाई पड़ा—अमरसिंह!

मैं चौंक उठा। पूछा—कौन?

उत्तर न मिला। मैंने कहा—डरो मत, मैं मित्र हूँ।···

अब एक रमणी सामने आकर देखने लगी। उसने कहा—मैं बड़ी विपत्ति में हूँ, आपसे यदि अमरसिंह से भेंट हो, तो उन्हे मेरे यहाँ भेज दीजिए।

आपके यहाँ ?—मैंने आश्चर्य से प्रश्न किया—आपका नाम ?

त्रिवेणी । उन्हें आज अवश्य भेज दीजिएगा ।

न जाने क्यों, उसकी बोली लड़खड़ा रही थी, और मेरा भी कलेजा धड़क रहा था । मैं अच्छा कहकर कुछ विचार करने लगा । इतने ही में वह स्त्री चली गई ।

मैं नदी तट पर जाकर बैठ गया । चुपचाप उसके प्रवाह को देखने लगा । अस्पष्ट भावनाओं से मेरा मन चिंतित था । अब मैं अधिक प्रतीक्षा न करके घर लौटने की बात सोचने ही लगा था कि मेरे कंधे पर किसी ने हाथ रक्खा ।

मैंने पूछा—कौन ?

अमर !

तुम्हीं को तो खोज रहा था ।

त्रिवेणी के यहाँ भेजने के लिए ?

तुम कैसे जान गये ?—मैंने आश्चर्य से पूछा ।

अमरसिंह ने एक भयावनी हँसी हँसकर कहा—अपने जीवन मरण के प्रश्न को मैं न जानूँगा, तो कौन जानेगा ?

मैंने कुतूहल से कहा—क्या ?

उसने कहा—रामनाथ, अच्छा हुआ कि घटनावश तुम स्वयं इस बात से परिचित हो गये; नहीं तो मैं इस विश्वासघात को न कभी किसी से कहता और न इसे कोई जान पाता ।

विश्वासघात कैसा ?

जिस पर मेरा विश्वास था, उसी त्रिवेणी का कुचक्र है । एक दिन मैंने तुमसे कहा था कि वह वीर बाला है, मेरी आराध्य देवी है, मेरे हृदय की शक्ति है; फिर जब वही संसार के प्रलोभनों में फँसकर मेरे जीवन का अंत कर देना चाहती है, तब मैं उसके लिए क्यों लोभ करूँ ?

तुम क्या कह रहे हो अमरसिंह ?

एक सच्ची बात ।

तब तुम न जाओ ।

ऐसा नहीं हो सकता, जाऊँगा और प्राण दूँगा।

नहीं, तुम मातृभूमि के लिए जीओ—

नहीं भाई, मातृभूमि के लिए मरना होता है।

किंतु यहाँ तुम भूल कर रहे हो।

नहीं, रामनाथ, दिल टूट गया है। अब लुक छिपकर जीवन की रक्षा करने का समय नहीं है। जाता हूँ।

अमरसिंह को रोकने का मेरा साहस न हुआ। उस अंधकार में जैसे उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

मैं घर लौट आया।

प्रेम की चिता

डाक्टर साहब हैं ?—मुरलीधर ने पुकारा ।

अभी बाहर गये हैं—डाक्टर साहब की नवयुवती बालिका किशोरी ने उत्तर दिया ।

मुरली देखने लगे । उनके मन में कुछ और पूछने की अभिलाषा जागृत हो उठी । मुरली ने फिर पूछा—कबतक आएँगे ?

कुछ ठीक नहीं है, क्या काम है ?

मेरे भाई साहब को ज्वर आ गया है, उन्हीं को दिखाने के लिए ले जानेवाला था ।

आप अपना पता लिखकर रख दें ; आने पर उनको दे दूँगी ।

मुरली ने एक कागज पर अपना पता लिख दिया और किशोरी के हाथ में देते हुए कहा—भूलियेगा तो नहीं ?

नहीं, कहती हुई किशोरी अपने कमरे में चली गयी ।

मुरली मार्ग में किशोरी का ध्यान करते हुए घर आये । सायंकाल के समय डाक्टर ने जाकर रोगी को देखा और दवा दी ।

मुरली नित्य रोगी का हाल कहने और दवा लेने के लिये डाक्टर साहब के पास जाते थे । कुछ ही समय में डाक्टर साहब से बड़ी घनिष्ठता हो गयी और उनकी दवा से मुरली के भाई शीघ्र ही निरोग हो गये । किंतु किशोरी को देखने का एक नया रोग मुरली को हो रहा था । प्रायः मुरली किसी न किसी कार्य से डाक्टर साहब के पास जाता ।

(२)

बसंत पीले सूखे वृक्षों को सांत्वना दे रहा था । उस दिन मुरली के जन्म दिवस का उत्सव था । सब मित्र संबंधी आये हुए थे । किशोरी भी अपनी माँ के साथ बसंती रंग की साड़ी पहन कर आयी थी । मुरली ने किशोरी तथा उसकी माँ का स्वागत करते हुए कहा,—आपलोग ऊपर चलें ।

किशोरी ने धीमे स्वर में पूछा—क्या आज आपका जन्म दिवस है ?

हाँ, आज मैं पच्चीस वर्ष का हो गया।

किशोरी मुस्कुराती हुई अपनी माँ के साथ मुरली के घर की स्त्रियों के पास ऊपर चली गयी।

उसी दिन मुरली ने अपना एक फोटो डाक्टर साहब को उपहार में दिया था। उसका अभिप्राय यही था, कि कभी कभी किशोरी उसे अपने कमरे में देख लिया करे।

* * * *

डाक्टर श्यामस्वरूप उच्च शिक्षा के पक्षपाती थे। उन्होंने किशोरी को लेडी सर्जन तक की शिक्षा दिलाने का निश्चय कर लिया था। वह बाल्य-विवाह से घृणा करते थे। किशोरी १६ वर्ष की हो चुकी थी; किंतु अब भी गर्ल्स स्कूल में पढ़ने के लिये बराबर जाती थी।

मुरली भी प्रतिभाशाली युवक थे। वह एम० ए० में पढ़ते थे।

दिन पर दिन किशोरी और मुरली के प्रेम ने प्रबल रूप धारण करना आरंभ किया।

एक दिन मुरली किशोरी के यहाँ गये थे। किशोरी पढ़ रही थी। किशोरी के कमरे में जाते हुए मुरली ने पूछा—क्या कर रही हो, किशोरी ?

कुछ नहीं ऐसे ही किताब देख रही हूँ—इधर कई दिनों पर आपके दर्शन हुए।

किशोरी ! आजकल कुछ अच्छा नहीं लगता। बड़ा नीरस दिन कटता है।

क्यों ?

मालूम नहीं।

बातों को बदलते हुए किशोरी ने कहा—परसों होली है, आप आयेंगे न ?

क्यों ? क्या रंग डालोगी ?

नहीं, इसी तरह आइयेगा। त्योहार है।

अच्छा आऊँगा।

(३)

शहनाई के मधुर स्वर में होली की मनमोहनी तान निकल रही थी। कोई डफ बजा कर होली गा रहा था, कोई अपने विकराल कंठ से गाली मंत्र का उच्चारण करता हुआ अपने हृदय का उल्लास प्रकट कर रहा था। इसीलिए लोग कहते थे, 'कि आज होली है'।

मुरली एक साफ चुना हुआ आबरवाँ का कुरता पहनकर, किशोरी के यहाँ गये थे। दूर ही से मुरली को आते देखकर, किशोरी ने ऊपर से एक लोटा केसरिया रंग फेंका। मुरली घबराकर ऊपर देखने लगे। कुछ कहना चाहते थे, किंतु कह नहीं सके। डाक्टर साहब को आज भी अवकाश न था। वह किसी रोगी को देखने गये थे। मुरली ने मुँह बनाते हुए कहा—किशोरी! यह तुम्हारा अन्याय है।

किंतु किशोरी की आँखों की चुलबुलाहट और होठों की मुस्कुराटह ने कहा—नहीं, यह अन्याय नहीं था।

किशोरी की माँ ने कहा—किशोरी! तुमने बड़ा बुरा किया। दिन के समय रंग खेला जाता है। भला सायंकाल के समय कोई रंग फेंकता है?—कहती हुई मुरली के लिये जलपान लाने के लिये चलीं।

किशोरी अबीर की पुड़िया हाथ में लेकर मुरली के सामने खड़ी हो गयी! मुरली ने कहा—यह हाथ में क्या है?

अबीर है।

जले पर नमक इसी को कहते हैं।

ऐसा क्यों कहते हैं?

अगर ऐसा ही है, तो मेरी तरफ से तुम अपने हाथों अपने मुँह में अबीर लगा लो।—मुस्कराहट के साथ मुरली ने कहा। उसी समय किशोरी की माँ मुरली के लिए जलपान लेकर चली आयीं। दोनों ने अबोध शिशु की तरह अपना मुँह बना लिया। मालूम पड़ता था कि बड़े भोले हैं। खाने के बाद कुछ देर में मुरली चले गये।

× × × ×

उसके बाद वह युग आया, जिसमें लोग प्रेम के कारण सर्वस्व निछावर कर देने और प्राण अर्पण करने तक का साहस रखते हैं।

मुरली और किशोरी दोनों प्रेम की आहें भरने लगे।

किशोरी, मुरली के सामने कभी अपने हृदय के भावों को नहीं प्रकट कर सकती थी। अतएव कभी कभी पत्र लिखकर ही वह अपने मर्मस्थल के भावों को व्यक्त किया करती थी।

बहुत समय बीत गया।

डाक्टर श्यामस्वरूप की बदली इलाहाबाद के अस्पताल में हो गयी और वे वहाँ चले गये। किशोरी का पत्र कभी कभी मुरली के पास आ जाता था।

इस वर्ष फिर होली आई।

मुरली उदास मन से अपने कमरे में बैठे थे। डाक से किशोरी का एक पत्र आया। उसमें अबीर की एक पुड़िया भी थी। पत्र में लिखा था,—इसे आप अपने ही हाथों अवश्य लगा लें।

मुरली स्मृतियों के देश में भ्रमण करने लगे,उसने मस्तक में प्रेम से अबीर लगाते हुए मन ही मन कहा—आह! वे दिन कितने सुहावने थे। किशोरी ने अपने पत्र में यह लिखा था कि अब मैं डाक्टरी की परीक्षा देने वाली हूँ।

मुरली ने भी एम० ए० पास कर लिया था। दिन अब बदले जा रहे थे।

(४)

कई मास और व्यतीत हो गये। एकाएक किशोरी का पत्र मिला, कि उसके पिता का देहांत हो गया।

मुरली आश्चर्य और शोक से चौंक पड़े। वह तत्काल वहाँ जाना चाहते थे; किंतु कालेज में हाल ही प्रोफेसरी मिली थी और पहले ही छुट्टी मिलनी असंभव थी। अतएव वह अपनी इच्छा को पूर्ण नहीं कर सके।

मुरलीधर अब अंग्रेजी के प्रोफेसर हो गये थे। पढ़े लिखे लोगों में उनका बड़ा मान था।

एक दिन मुरली के एक मित्र का पत्र आया। उसमें लिखा था—एक समय वह था जब तुम किशोरी की बड़ी प्रशंसा करते थे; किंतु अब वह बात नहीं रही। उसमें अब बड़ा परिवर्तन हो गया है। अभी उसके पिता का देहांत हुए दो मास भी नहीं व्यतीत हुए हैं और वह अब स्वतंत्र रूप से रहती है। बहुत से भ्रमर उस गुलाब पर मँडराया करते हैं। क्या इसी पर तुम्हें अभिमान था?

मुरली की समझ में यह बात न आई। उन्होंने किशोरी के पास पत्र लिखकर यह सब हाल पूछा; परंतु किशोरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मुरली ने कई पत्र लिखे; किंतु एक का भी उत्तर नहीं आया। अंत में विवश होकर मुरली को किशोरी के चरित्र पर संदेह करना ही पड़ा। धीरे धीरे प्रेम पर अश्रद्धा उत्पन्न होने लगी।

वर्ष भर के बाद फिर होली आई।

अबकी न तो किशोरी का पत्र ही आया और न अबीर ही। पहले प्यार की बातें मुरली के हृदय में चिकोटी काट रही थीं। वह बड़े दुखी थे। मुरली के लिये अबकी होली नीरस थी। किशोरी के इस एकाएक परिवर्तन के कारण मुरली को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मन-ही-मन विचार करने लगे—कहाँ वह समय था, जब किशोरी लिखती कि आपके लिये मैं व्याकुल रहती हूँ; मेरा दिन पहाड़ हो गया है—इत्यादि। और कहाँ आज वह एकदम भूल गई? धन्य है मनुष्य जीवन की लीला। अब किशोरी मुझे एकदम भूल गई। उसे मेरा ध्यान तक नहीं है। किसी ने ठीक ही कहा है, कि स्त्रियों का कभी स्वप्न में भी विश्वास नहीं करना चाहिये। इनका प्रेम बड़ा विचित्र होता है।

कुछ देर बाद मुरली ने अपनी आलमारी में से किशोरी के लिखे हुए पुराने पत्र निकाले और ध्यान से उन्हें पढ़ने लगे। सब बातें उन्हें याद आने लगीं। मालूम पड़ता, मानों कल की ही बात है। किंतु कई वर्ष बीत चुके थे। किशोरी के प्रति उन्हें भीषण घृणा उत्पन्न हुई। अब वह अपनी फूटी आँखों से भी उसे नहीं देख सकते थे।

मुरली बैठे थे। घर में से नौकर ने आकर कहा—बाबूजी। होली जल रही है, पूजा करने चलिये।

मुरली ने बिगड़ते हुए कहा—अभी नहीं, थोड़ी देर में चलूँगा। खिड़की में से देखा कि सामने होली जल रही है। सहसा वह किसी भारी चिंता से अलग हो गये। उनके मन में एक भाव जागृत हो उठा। उन्होंने किशोरी के पत्रों को एकत्रित करके उन्हें फाड़ना आरंभ किया। यही पत्र किसी समय उनके जीवन की अमूल्य संपत्ति थे; किंतु आज उनका कोई मूल्य नहीं था।

समय, संगीत की मधुर तान की तरह, एक बार सुंदर प्रतीत होकर चला जाता है।

मुरली ने सब पत्रों को फाड़कर उनमें दियासलाई लगा दी। इतने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। अभी तक किशोरी का फोटो उनके सामने था।

जलते हुए पत्रों के बीच में फोटो को घृणा से रखते हुए मुरली ने कहा—आज मैंने अपने प्रेम की चिता जला दी। यह कह कर उन्होंने एक आह खींची और आकाश की ओर देखा। सारा वायुमंडल होली की ज्वाला से लाल हो रहा था। उनके हृदय का बड़ा भारी बोझ हलका हो गया। उसी समय मुरली ने सदैव के लिये किसी स्त्री से प्रेम न करने का प्रण कर लिया। आकाश में पूर्णिमा का चाँद यह दृश्य देखकर मुस्करा रहा था।

देखते देखते कई मास और चले गये। प्रोफेसर मुरलीधर अपने कमरे में बैठे हुए समाचारपत्र पढ़ रहे थे। आज रविवार का दिन था। कालेज में छुट्टी थी। किसी के आने की आहट मिली। वे देखने लगे। क्षण भर में उन्हें मालूम पड़ा कि किशोरी उनके सामने खड़ी है। उनका हृदय धक धक करने लगा। किशोरी की चाल ढाल को वह आश्चर्य से देखने लगे। किशोरी ने नमस्कार किया। दोनों एक दूसरे को देखते रहे। मुरली ने किशोरी को बैठने के लिये कहा। किशोरी बैठ गई। उसने कहा—मैंने एक दिन नौकर भेजकर सूचना दे दी थी, कि मैं यहाँ आ गई हूँ; किंतु आपने दर्शन देने का कष्ट नहीं उठाया। विवश होकर मैं स्वयं आई हूँ।

मैं अब तुमसे दूर रहना चाहता हूँ।

किंतु मेरा आपके प्रति वही भाव है।

किंतु तुम्हारे प्रेम की मूर्ति सदैव के लिये मेरी आँखों के सामने से लोप हो गई है। तुम्हारा अब वह निर्दोष सौंदर्य नहीं रहा। अब तुम में बड़ा अंतर है। मैं अब प्रेम से घृणा करता हूँ। मैंने अपने प्रेम की चिता जला दी है।

किशोरी बिना कुछ उत्तर दिये ही चली गई।

बंधन मुक्त

वे दिन भूल गये जब कहते थे कि तुम जैसा कहोगी वैसा ही करूँगा।

और तुम भी भूल गयीं कि तुम्हारे साथ किसी भी अवस्था में रह कर मैं प्रसन्न रहूँगी।

मैं तो आज भी अपने वचन पर दृढ़ हूँ, लेकिन तुम अपने मन की ही करते हो, मेरा तनिक भी ध्यान नहीं रहता।

तुम यह कैसे समझती हो?

दो घड़ी मेरे साथ बैठकर हँसने बोलने का तुम्हें अवकाश ही नहीं मिलता। तुम अपने मित्रों के साथ टेनिस में ही उलझे रहते हो। मैं दिनभर की थकी विद्यालय से लौट कर तुम्हारी ही प्रतीक्षा में बैठी रहती हूँ।

मानव स्वभाव है कि वह अपने को व्यस्त रखने के लिए कोई व्यसन बना लेता है। मुझे टेनिस प्रिय है, तुम्हें चिड़ियों को पालतू बनाकर उनकी बोली सुनने में आनंद आता है।

जीवन परिवर्तन के आवरण में ढँका रहता है। एक समय था जब मेरी बातें ही तुम्हें मधुर प्रतीत होती थीं; किंतु अब उनसे दूर हटकर तुम भी अपना एक व्यसन चाहते हो।

यह तुम्हारा भ्रम है नीला!

पुरुष का स्वभाव भ्रमर के समान है जो रस लेकर खिसक जाना चाहता है।

लेकिन वह कमल के पत्रों में बँध जाता है, इसे क्यों भूल जाती हो?

नीला प्रसन्न हो गयी।

सुरेश उसकी ओर गूढ़दृष्टि से देख रहा था। नीला की आकृति पर बिखरे हुए असीम सुखों का इतिहास सजीव हो उठा। अस्ताचल पर जाने वाली सूर्य की किरणें आम के वृक्ष की मंजरियों को सुनहला अवगुंठन देकर विलीन हो जाना चाहती थीं।

सुरेश ने नीला को छेड़ते हुए कहा—तुम्हारी बातों से प्रतीत होता है कि तुम मुझसे असंतुष्ट सी रहती हो। बहुत दिनों से तुम्हें चिंतित और अनमनी

देखकर मैं मन ही मन सोचता था कि इसमें रहस्य क्या है, किंतु आज तुमने स्वयं स्पष्ट कर दिया।

मैं असंतुष्ट नहीं हूँ। मेरी धारणा होती जा रही है कि तुम अब पहले जैसे नहीं हो।

अवस्था और समय के साथ निरंतर मानव की गति में शिथिलता स्वाभाविक है। अल्हड़पन के दिन प्रौढ़ता के पदचिह्नों पर चलकर थक जाते हैं। यौवन का उन्माद समुद्र की उत्ताल तरंगों की भाँति स्थिर हो जाता है।

उसी भाँति तुम भी स्थिर हो गये हो?

नारी की भूख अतृप्त बादलों के समान है, जो बरसकर भी भरने की लालसा में मँडराते फिरते हैं।

नारी की भूख एक थपकी, एक मुस्कान और एक मधुर शब्द से शांत होती है।

तुम चहती हो कि इसी तरह मुस्कान के साथ थपकियाँ देकर मैं मधुर बातों में तुम्हें उलझाये रहूँ? लेकिन सुनो नीला! पुरुष साहसी होता है, उसे यश और कीर्ति की अनंत आकांक्षाएँ घेरे रहती हैं। वह उन्हीं के लिए तन्मय हो जाता है। उसके लक्ष्य के कारण ही नीरसता का वातावरण उपस्थित हो जाता है।

आज तक अपने लक्ष्य और आकांक्षा के संबंध में तुमने तो मुझे कुछ बतलाया नहीं।'—उत्सुकता से नीला ने पूछा।

'समय आने पर तुम्हें ज्ञात हो जायगा।'—सुरेश ने कहा।

(२)

नगर के समीप ही एक वाटिका में सुरेश और नीला रहते थे। लता, फूल और वृक्षों से भरी वाटिका नीला की सुरुचि का परिचय देती थी। मौलश्री के वृक्ष पर पक्षियों के पिंजड़े टँगे रहते थे। उनकी मधुर बोली प्रभात के समय में नीला के जागरण का संकेत होती थी।

प्रतिदिन नीला स्वयं लाल, तोता, मैना और कोयल को अपने ही हाथों से दाना पानी देती थी। उसे पक्षियों से बड़ी ममता थी।

संध्या समय बालिका विद्यालय से पढ़ाकर नीला लौटी थी। वह अपने कमरे में बैठी थी। उसने देखा एक चिड़िया लालों के पिंजड़े पर बैठी बड़े

सुरीले स्वरों में बोल रही थी। उसने अनेक बार दूर से उसकी बोली सुनी थी। उसकी आकांक्षा थी कि अन्य चिड़ियों की भाँति वह भी पिंजरे में रखकर पालतू बनायी जाय। उसे अपने समीप देखकर उसी भावना में वह उठी। उसने लल्लू को पुकारा। उसके आने पर नीला ने उसे पकड़ने के लिए लल्लू को उत्साहित किया।

लल्लू बगीचे के माली का लड़का था। बंदरों को गुलेल द्वारा भगाने में वह कुशल था; किंतु इस पक्षी के पकड़ने में उससे अधिक कुशलता की आवश्यकता थी। उसने पूछा—कैसे पकड़ूँ माँजी ?

नीला ने संकेत दिया।

कमरे का द्वार बंद कर लल्लू एक चादर के सहारे इधर उधर दौड़ता रहा। अंत में थक कर चिड़िया लल्लू के हाथ लगी।

एक खाली पिंजड़े में उसे रखते हुए नीला को संतोष हुआ।

सुरेश जब दफ्तर से लौटा तो नीला ने उस पक्षी के संबंध में सब बातें बतलायीं। उसे उसके नाम, जाति और श्रेणी के प्रति जिज्ञासा थी।

सुरेश ने कहा—यह जंगली है नीला! इसे पिंजड़े में बंद रखना कठिन होगा।

अपनी स्वतंत्रता खोकर दूसरे को बंदी बनते देखने में स्वाभाविक संतोष होता है।' —नीला ने रूखी मुस्कान का सहारा लिया।

तुम स्वच्छंद पवन की भाँति स्वतंत्र हो, यह तुम्हारा मिथ्या आरोप है। तुम्हारे मार्ग में कभी भी मैं बाधक नहीं रहा हूँ। मैं बंधन में पड़ा हूँ।

मेरे कारण ही तो यह सब बंधन है। मैं समझती हूँ कि मैं बोझ हो रही हूँ। नारी का जीवन ही ऐसा है! अपना सब कुछ देने पर भी उसका कुछ नहीं रहता।'—नीला की आँखें सजल हो गयीं।

लोग समझते हैं कि हमलोग सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं; किंतु हम लोगों का जीवन उस विशाल वृक्ष की तरह है जो भीतर से खोखला है; लेकिन देखने में हराभरा खड़ा है।—गंभीर होकर सुरेश ने कहा।

इस अप्रिय प्रसंग के कारण भोजन में भी विलंब हो रहा था।

नीला ने पूछा—'थाली लाऊँ ?'

आज भूख नहीं है।

मेरी बातों से रुष्ट हो गये क्या ?

सोचता हूँ कि तुम्हें संतुष्ट और सुखी रखने में मैं असफल रहा। स्त्रियों की विभूति है कि पारिवारिक जीवन को व्यवस्थित रखें, भोजन बनाएँ और गृहस्थी का कार्य करें, लेकिन आरंभ से ही तुम्हारी रुचि इस ओर नहीं रही। शिक्षित होने से भले ही तुम अध्यापिका बनकर मासिक वेतन घर ले आती हो; किंतु……

रुक क्यों गये ? कहो न संतान उत्पन्न करनेवाली मशीन और भोजन बनानेवाला 'कुकर' बनकर रहने में ही स्त्रियों की मर्यादा है।

तुम्हें मालूम होना चाहिए कि विश्व विजय का स्वप्न देखनेवाले नाजी जर्मनों का भी यही सिद्धांत है। प्रत्येक दिशा में उन्नति और आश्चर्य उपस्थित करके भी वे स्त्रियों की स्वतंत्रता के समर्थक नहीं है।

इसीलिए एक दिन उनका सर्वनाश निश्चित है।

लेकिन यह मानना ही पड़ेगा कि स्त्रियों की मनोवृत्ति उस मियादी जर्मन बम की तरह है जो अपनी अवधि समाप्त करके विस्फोट करता है।

नीला सुरेश के पास से हटकर चली गयी। तर्क बढ़ाकर अधिक कटुता उत्पन्न करना उसने उचित नहीं समझा; किंतु अनेक बार अनुरोध करने पर भी उस दिन सुरेश ने भोजन नहीं किया। विवश होकर नीला को भी उपवास करना पड़ा। पारिवारिक जीवन में इस अनायास एकादशी के के व्रत ने नीला और सुरेश को अधिक गंभीर बना दिया।

(३)

उस जंगली चिड़िया का नाम फुलसुंघी था।

लल्लू ने पता लगाकर नीला को उसका नाम बतलाया। जब से पिंजड़े में वह बंदी बनायी गयी तभी से उसने दाना पानी छोड़ दिया था। नीला को आश्चर्य था कि सचमुच क्या वह फूल सूँघ कर रहती है ?

उसे अपने जीवन से घृणा हो रही थी। वह अपनी जीविका के लिए धन भी उपार्जित कर लेती है, फिर भी सुरेश के बंधन में पड़ी वह नीरस दिन व्यतीत कर रही है। यह सब उसे असह्य हो गया था।

उस दिन से आपस में अनबोला था। सुरेश आकर अपने कमरे में चला जाता और नीला अपने कमरे में रहती।

सुरेश की मानसिक व्यग्रता इतनी बढ़ गयी थी कि रात कोरी आँख कट जाती। प्रभात की सफेदी में वह अपनी आँखों की लालिमा धो देने का प्रयत्न करता। यह सब जानते हुए भी नीला अनजान सी बनी थी। कटुता के पौधे पनपने लगे।

अंत में अपने निश्चित निर्णय की सूचना देने के लिए सुरेश अर्धरात्रि के समय नीला के कमरे में गया। नीला जागते हुए भी सोई थी।

सुरेश उसके पलंग पर न बैठकर पास में पड़ी एक कुर्सी पर ही बैठ गया। लंप के धीमे प्रकाश में वह चुपचाप नीला को देख रहा था। नीला ने एक ठंडी साँस ली।

सुरेश ने कहा—सुनती-हो ?

आश्चर्य की आकृति बनाते हुए नीला उठ बैठी। उसने पूछा—कहिये ?

मैं इस समय तुम्हें इसीलिए कष्ट देने आया हूँ कि अब और अधिक उलझन में तुम्हें नहीं रखना चाहता।

कैसी उलझन ?

मैं अब जा रहा हूँ। निकट भविष्य में लौटने की संभावना भी नहीं है। तुम्हारी इच्छा हो तो यहीं रहो नहीं तो अपने घर चली जाना। मेरे संसर्ग से तुम्हें छुटकारा मिलेगा। मुझे विश्वास है कि अपनी व्यवस्था तुम सफलतापूर्वक कर लोगी।

आप कहाँ जा रहे हैं ?

इसे पूछ कर क्या करोगी। समझ लो कि अपने अस्तित्व को मिटाने के प्रयत्न में संलग्न रहूँगा। जीवन से अधिक ममता बढ़ाकर, इस समस्त विश्व का वैभव और ऐश्वर्य खरीदकर भी कोई सुखी नहीं रह सकता नीला ! ऐसा मेरा विश्वास हो गया है। परिस्थितियों के चक्र में सब कुछ बदल जाता है। वे हँसते हुए दिन निराशा के आवरण में ढँक जाते हैं। जीवन के उज्ज्वल पट पर प्रकाश की धुँधली रेखाएँ विलीन हो जाती हैं। मानव पशु सा निरीह हो जाता है।

आप कैसी बातें कर रहे हैं ?

मैं ठीक कह रहा हूँ । वर्तमान शिक्षा और पाश्चात्य देशों के शिष्टाचार का अनुकरण कर हम अपनापन खोते चले जा रहे हैं । एकदिन तुमने ही कहा था कि मैं भोजन बनानेवाली रसोईदारिन नहीं हूँ । स्त्रियों को अधिक शिक्षित बनाकर गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट करना ही भूल है ।

यह आप कैसे कह सकते हैं ? पाश्चात्य देशों में क्या पारिवारिक जीवन लोग नहीं व्यतीत करते । रूस में स्त्रियों ने जितनी उन्नति की है, उतनी संसार की किसी भी जाति ने नहीं की है ।—नीला ने गर्व से कहा ।

रूसी विचार रखते हुए भी न्यायालय के संमुख तुम मुझसे अलग होने का अधिकार पत्र नहीं माँग सकती हो ! ऐसा क्यों !

भारतीय नारी समाज को यह शोभा नहीं देता ।

अन्य सब बातें शोभा देती हैं और यह शोभा नहीं देती, यह कैसा तर्क है ? जीवन भर पहाड़ तोड़ने से क्या लाभ ?

नीला कक्षा में बालिकाओं के प्रश्न का उत्तर भलीभाँति समझाते हुए देती थी; किंतु सुरेश के इस प्रश्न का उत्तर देने में वह असमर्थ थी ।

सुरेश ने आवेश में कहा—यदि तुम न्यायालय से वह अधिकार पत्र लेना उचित नहीं समझती हो तो मैं स्वयं तुम्हें देता हूँ ।

दोनों स्तब्ध होकर एक दूसरे को देखते हुए हट गये ।

रात्रि के घने अंधकार में नक्षत्रों का आलोक नीला के जीवन पथ पर छाया फेंक रहा था ।

* * * *

सुरेश को गये कई महीने बीत चुके थे ।

नीला मन ही मन पश्चात्ताप करती । उसे विश्वास नहीं था कि इस तरह सुरेश उसे छोड़कर चला जायगा । वह लौट आवे तो नीला क्षमा याचना करते हुए सदैव उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रस्तुत रहेगी ; किंतु वह अवसर सीमा से अधिक दूर चला गया ।

अचानक एकदिन सुरेश का पत्र मिला जिसमें उसने लिखा था कि वायुयान चालक की अपनी शिक्षा समाप्त करके वह युद्ध के मोर्चे पर जा रहा

है। पत्र का अंतिम अंश पढ़ कर नीला विचलित हो उठी। उसमें लिखा था—तुम मेरे बंधन से मुक्त हो गयी हो। आत्महत्या करके तुम्हारे बंधन से मुक्त होने से अच्छा यही मार्ग मुझे उपयुक्त प्रतीत हुआ। देखूँ कब वैसा होता है ?

विश्व के विशाल भाल पर मानवता का क्रूर प्रहार अपने अंतिम प्रहार में पहुँच चुका था।

नियति के इस रक्तरंजित इतिहास का अंतिम परिच्छेद कब समाप्त होगा ? नीला उत्सुकतापूर्वक सुरेश के लौटने की प्रतीक्षा में अपनी आँखें बिछाये हुए है। पता नहीं उसकी कामना कहाँ तक सफल होगी ?

बदला

देश में अकाल पड़ा था। गाँव देहात उजड़ा हुआ था। दिन अँधेरी रात की तरह भयानक मालूम पड़ता। लोग दानों के लिये तरसते, भूख से छट-पटाते और पैसे के लिये रोते थे। ओह! दैव का कितना भीषण परिहास था! आँखें धँस गई थीं, ठोकरें बैठ गई थीं और शरीर निर्बल हो गया था।

गाँव के लोग कहते, ईश्वर का कोप है। बरसात आकाश की ओर देखते ही कटी, जाड़ा ठिठुरते हुए कटा और गरमी अब धूप की ज्वाला से कट रही है। कैसा अद्भुत खेल है! सचमुच अकाल था। भूमि अपना सूना आँचल फैलाये हुए बैठी थी।

वह गाँव सिसक रहा था। चंद्रमा ने झोपड़ियों के उस टिमटिमाते हुए प्रकाश को चुरा लिया था। चाँदनी अपनी छाया में बैठाकर उन झोपड़ियों से उसकी कहानी सुनती। सियार बोल रहे थे। कुत्ते भूँक रहे थे। सन्नाता था। रजनी तांडव नृत्य देख रही थी।

मोती अपनी उदास झोपड़ी में पड़ा सोचता था। रात आँखों से खूब लड़ी थी। जागते ही कटी। जमींदार को मालगुजारी देना है। खेत बेदखल हो जायगा, घर उजड़ जायगा, सब समाप्त हो जायगा।

\+ \+ \+ \+

मोती गरीब था। सबका ताबेदार, नौकर था। वह अभागा अछूत था।

भैंस, बकरी और बैल तो कर्ज में ही नीलाम हो गये थे। खेत भी बेदखल हो गया। झोपड़ी जर्जर हो गई थी। मोती के पास केवल लाल और सफेद गाय बच गयी थी। वह उसे बहुत प्यार करता था। खेत में काम करते हुए जब मोती पुकारता, लाली!—वह दौड़ती हुई पहुँचती। पालतू कुत्ते की तरह वह गाय मोती के साथ फिरती। नौ महीने की बछिया थी, तभी से उसने उसको पाला था! इससे मोती को उसका बड़ा मोह था।

सोना को पीहर पहुँचाकर मोती बंबई जायगा; नौकरी करेगा, भूखों मरने से बचेगा।

रेल के टिकट के लिये रुपये न थे। मोती लाली को बेचेगा। सोना ने लाली को न बेचने का अनुरोध किया; किंतु मोती विवश था। रुपये कहाँ से आते ? सब कुछ चला गया था, बच गई थी लाली ! बंबई के भाड़े के लिये वह भी निकल जायगी।

अत्याचार सहन करते करते मोती कठोर हो गया था। वह खुद बिक जाता, मगर लाली को न बेचता; किंतु मोती सब से हाथ धो बैठा था। उसका दिल पत्थर हो गया था।

सोना का बाप एक दूसरे गाँव का चौकीदार था। बस पाँच बीघा भूमि थी। सोना ने वहीं चलकर रहने को कहा था। उसके पिता ने भी इसपर जोर दिया। किंतु ससुराल की रोटी तोड़ना मोती को पसंद न था। वह बड़ी आन का था।

सोना को पीहर पहुँचाकर मोती लौट आया। चलते समय सोना ने आँसू बहाते हुए कहा—चिट्ठी भेजना और हो सके तो साल छः महीने में चले आना।

ईश्वर की जैसी इच्छा !—कह कर मोती चला आया।

मोती के घर में भगवान तिवारी का बड़ा मान था। गाँव में वह बड़े सीधे सादे, सरल ब्राह्मण थे। मोती की लाली उन्हें बड़ी पसंद थी। मार्ग में जब कभी देखते तो उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पुचकारते। मोती जानता था, लाली उनके यहाँ सुख से रहेगी। अतएव लाली को लेकर मोती उनके द्वार पर पहुँचा। प्रणाम किया।

उन्होंने पूछा—कहो मोती, कैसे चले ?

महाराज, सब कुछ चला गया, अब मैं भी बंबई जा रहा हूँ।—मोती ने उत्तर दिया।

क्या करोगे, दिन का फेर बड़ा विचित्र होता है। जमींदार बड़ा दुष्ट है। अंधेर नगरी है। कारिंदा जो चाहता है, करता है। जमींदार को अपनी मौज से ही फुर्सत नहीं मिलती है।—कहकर तिवारी जी लाली की ओर देखने लगे।

भाग्य में जो लिखा था, सो हुआ। अब आप लोगों का आशीर्वाद लेकर जाता हूँ। टिकट के रुपये नहीं हैं। लाली को लेकर आया हूँ, २०) रुपये की जरूरत है। लाली आप के यहाँ रहेगी।—मोती ने बड़ी निरासा से कहा।

तुम्हारे ऊपर उसे तनिक भी दया न आई, उजाड़ कर ही छोड़ा ! कब जाओगे ?—विचार करते हुए तिवारी जी ने कहा ।

आज ही !

उन्होंने घर से २०) रुपये लाकर दिये । मोती रुपये लेकर लाली की तरफ देखने लगा । लाली भी उसकी ओर देख रही थी । बड़ा करुण दृश्य था । मोती ने लाली के गले में हाथ डालकर उसे चूम लिया, और चला गया ।

कुछ दूर जाने पर बाँ······आँ······शब्द सुनाई पड़ा । मोती ने सोचा, लाली पुकार रही है; किंतु हृदय पर हाथ रखकर यह कहते हुए चला गया—लाली, तुम्हारे भाग्य से मैं पैसे वाला हो जाता तो······

मोती बर्बाद हो गया, उजड़ गया !

(२)

मोती बंबई पहुँच गया था । वह भौंचक्का होकर शहर देखने लगा । जैसे, किसी भूलभुलैया में भटकने लगा । देहाती आदमी किसी से परिचित न था । मोटर की भों भों और घोड़ा गाड़ी की हटो बचो से घबड़ा उठा था—कहाँ जाय ? क्या करे ? नौकरी कहाँ मिलेगी ? ये ही प्रश्न बार बार उठते । कई दिन बीत गये । साहस नहीं होता था, बात कैसे करे ?

संध्या हो चली थी । मोती भूखा था । नौकरी की खोज में वह नगर से कुछ दूर चला आया था । एक जगह खड़ा होकर देखने लगा । बड़ा भारी हाता था, उसी में गाय भैंसें बँधी थीं । उसने अपने ही जैसे मैले वस्त्रों में कुछ काम करनेवालों को देखा । सलाम बंदगी हुई । परिचय हुआ । मोती ने अपना अभिप्राय प्रकट किया । उसके प्रति उन लोगों की सहानुभूति हुई । उसी दिन साहब से भेंट हुई, मोती को नौकरी मिली ।

साहब की 'डेरी' थी । दूध का व्यवसाय होता था । मोती को दूध दुहने का काम मिला था । वह इस काम में निपुण भी था । साहब के सामने उसकी परीक्षा हुई थी ।

दिन-पर-दिन बीतने लगा । वह बड़े परिश्रम से अपना कार्य करता । अपने नम्र व्यवहार के कारण सब से हिल मिल गया था । साहब उससे बड़े प्रसन्न रहते । उसका विश्वास जमता गया ।

सोना का लिखवाया हुआ पत्र मिला था। मोती का हाल पूछा था, रुपये माँगे थे; और कब आवेगा यह भी पूछा था।

मोती ने सोना को रुपये भेजे और उत्तर में लिखवाया—मैं अब बड़े सुख से यहाँ हूँ। साहब के पास रुपया जमा कर रहा हूँ। दूध के व्यवसाय में यहाँ बड़ा लाभ है, मैं अच्छी तरह उसे जान गया हूँ। कुछ दिन नौकरी करके रुपया जमा करूँगा। फिर खुद इसका कारबार करूँगा। बड़ा लाभ होगा, तब तुमको भी बुला लूँगा।

(३)

दो वर्ष बीत गए।

दिल्ली से मोती ने गाय और भैंसें मँगवाईं। देखते देखते उसका भाग्य चमका। सफलता से घनिष्ठता हो चली। दूध, मक्खन और घी बेचता। उसकी आँखें खुल गईं। दानों के लिये तरसनेवाला मोती अब पैसे जोड़ने लगा।

अपने एक संबंधी के साथ सोना भी बंबई चली आई। मोती को अब रोटी का कष्ट न होता। बड़े सुख से दोनों का समय बीतने लगा। मोती दिन रात अपने काम में व्यस्त रहता; किंतु सोना को शहर का जीवन पसंद न आया। रुपयों के लोभ से उसे संतुष्ट रहना पड़ता।

\+ + + +

दस वर्ष बीत गये।

साहब अपने देश चला गया। मोती ने उसकी डेरी खरीद ली थी। वह बड़ा व्यवसायी हो गया था। वह अब मोती से मोतीलाल हो गया। लेकिन, बंबई के जलवायु से वह बराबर अस्वस्थ रहता।

सोना ने एक दिन कहा—तुम दिन पर दिन दुबले होते जा रहे हो। अब यहाँ अच्छा भी नहीं लगता। ईश्वर ने बहुत धन दे दिया। चलो अब घर चलें; खेती करेंगे, यहाँ के इस जीवन में कोई सुख नहीं मालूम होता।

सोना की इस बात पर मोती कभी कभी विचार करता।

उसके मन में भी बात जम गई। एक दिन उसने भी कहा—चलो, अब यहाँ नहीं रहूँगा। बहुत धन लेकर क्या करना है? सचमुच वे दिन कितने अच्छे थे, जब दिन भर खेत पर काम करके संध्या समय अपनी झोपड़ी पर लौटते थे। वह तो अब सपना हो गया!

कुछ दिन के बाद मोती ने अपना कारबार बंद कर दिया। एक सेठ के हाथ सब बेचकर रुपये एकत्र कर लिये।

सोना ने पूछा—कुल कितना है ?

मोती ने कहा—एक लाख से कुछ अधिक !

सोना पुतली की तरह मोती की ओर देखने लगी।

उसी दिन दोनों चल पड़े।

(४)

बड़ी सरस संध्या थी। एक युग के बाद मोती घर लौट आया था। उसके खँडहर पर अब एक सुंदर मकान बन रहा था। बड़ा परिवर्तन हो गया था, पैसे का प्रभाव था, गाँव के लोग मोती को घेरे बैठे थे। वह अपना वृत्तांत सुना रहा था। उन्हीं लोगों की बातचीत से मोती को मालूम हुआ कि जमींदार पतन के मार्ग की सीमा पर पहुँच गया है।

लाली को देखकर मोती दुखी हुआ। वह बूढ़ी हो गई थी। अब दूध नहीं देती थी। उसकी ठठरियाँ निकल आई थीं। मोती उसी दिन बूढ़े ब्राह्मण को रुपयों से प्रसन्न कर लाली को अपने यहाँ ले आया।

आज गाँव की नीलामी थी। जमींदार की छावनी पर डुग्गी बज रही थी। बड़े बड़े महाजन एकत्र हुए थे। विलासिता के पर्दे में छिपा हुआ जमींदार अपना नग्न दृश्य देख रहा था।

मोती को भी समाचार मिला। वह बड़ा उदास था। नोट का बंडल बाँधकर वह निकला। सोना ने समझा, मोती नीलाम में गाँव खरीदेगा ! गाँव के लोग भी इसका पहले से अनुमान कर रहे थे।

मोती नीलाम की बोली सुन रहा था। पूर्व काल के भयानक दिन उसकी आँखों के सामने फिर गये। उसका हृदय काँपने लगा। सामने ही जमींदार आँखें नीची किये बैठा था। मोती अपने को सँभाल न सका, उसने तत्काल जमींदार के चरणों पर नोटों का बंडल रखते हुए कहा—मैं यह दुःख भोग चुका हूँ। भगवान न करे, किसी को यह दिन देखना पड़े। लीजिये, इससे अपना गाँव बचा लीजिये। इसी तरह मेरा दिन भी न बदलता। आपके कारण ही आज मैं रुपयों को जोड़ सका हूँ ! अतएव यह आपका ही है !

जमींदार आश्चर्य से उसे देखने लगा।

———

भविष्य के लिये

रामदयाल का पिता बड़ा उद्योगी और व्यवसायी पुरुष था, लेकिन उसका कठिन से कठिन परिश्रम व्यर्थ जाता था। महीने दो महीने में व्यवसाय में जो कुछ पैदा किया, वह एक बार के सौदे में निकल गया। यही क्रम जीवन भर उसके साथ रहा। आज हजारों हैं और कल भोजन का ठिकाना नहीं। यह सब होते हुए भी बाजार में हजारों का सौदा उसका पक्का माना जाता था। व्यवसायियों में उसकी धाक थी और वह अपनी बात का धनी माना जाता था।

रामदयाल बचपन में ही देश छोड़कर अपने पिता के साथ व्यवसाय के लिये निकला था। उसकी पढ़ाई लिखाई तो कुछ हुई न थी; लेकिन पिता के साथ रह कर, वह बाजार के भाव का अध्ययन अवश्य करता था। उसकी माता का देहांत हो चुका था। अतएव घर में अकेला न छोड़ कर, उसका पिता उसे अपने ही साथ रखता था। यही कारण था कि दिन पर दिन रामदयाल अनुभवी होने लगा। व्यावसायिक प्रश्नों पर कभी कभी वह अपने पिता के संमुख अपनी संमति भी प्रकट करता। उसे सचेत भी करता। पिता अपने लड़के से सदैव प्रसन्न रहता। उसे विश्वास था कि उसका लड़का होनहार है।

× × ×

एक दो वर्ष के परिश्रम में रामदयाल के पिता ने कुछ रुपया एकत्रित कर लिया। उसका विचार था कि रामदयाल का विवाह करके, व्यवसाय उसके हाथों में देकर, वह निश्चिंत हो जायगा। तब वह ईश्वर की आराधना में अपना अंतिम समय देगा। इसी उद्देश्य से उसने रामदयाल का विवाह भी पक्का कर लिया और एक दिन बड़ी धूमधाम से रामदयाल का विवाह हो गया। विवाह में नगर के प्रतिष्ठित व्यवसायी सम्मिलित हुए थे।

अब घर गृहस्थी बस गई थी। रामदयाल के पिता की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

विवाह हो जाने के बाद, बहुत दिन बीत गये। फिर भी रामदयाल के पिता के मन में शांति नहीं हुई। उसने यह सोचा कि अब व्यवसाय की गति बढ़ानी चाहिये, जिसमें जल्दी ही कुछ रुपया और एकत्रित करके रामदयाल के ऊपर संपूर्ण जिम्मेदारी छोड़ कर, वह निश्चिंत रह सके। वह लंबा सौदा करने लगा। दिन रात अपने व्यवसाय की धुन में रहता। सैकड़ों की बात नहीं, हजारों के हेर फेर में व्याकुल रहता। उसे भोजन और स्नान तक के लिए भी अवकाश नहीं मिलता था।

एक दिन शोक और निराशा की मूर्ति बनकर वह घर आया। चुपचाप अपने कमरे में शिथिल होकर पड़ रहा। उस दिन उसने भोजन भी नहीं किया।

रामदयाल ने पूछा—बाबा, क्या बात है ? कुछ तबीयत खराब है क्या ?

वह अपना मुँह ढँके हुए पड़ा था। रामदयाल को बहुत देर से खड़ा देखकर उसने कहा—सर्वनाश हो गया, इस बार चाँदी के सौदे में पचास हजार का घाटा हुआ।

रामदयाल स्तब्ध होकर सुनता रहा। उसे अपना भविष्य बड़ा अंधकारमय प्रतीत हुआ। कुछ देर विचार करने के बाद उसने कहा—अच्छा, कोई चिंता नहीं। उठो बाबा, देखा जायगा। भाग्य में जो होता है, उसे कौन टाल सकता है ?

अपने पुत्र की इतनी विचारशील बातों को सुन कर बूढ़े को संतोष तो अवश्य हुआ; लेकिन उस दिन से वह अपना पलंग न छोड़ सका। उसकी सब शक्तियाँ विश्राम करने लगीं। उसे विश्वास हो गया कि उसका अंतिम समय समीप आ गया है। उसने रामदयाल को बुलाकर कहा—बेटा, जिनका देना है, उन्हें बुला लो, आज मैं तुम्हारे सामने उनसे कुछ कहूँगा।

रामदयाल ने पिता की आज्ञा का पालन किया। सब लोग बूढ़े के सामने बैठे थे। उसने रामदयाल की ओर देखते हुए कहा – बेटा, मेरा अंत हो रहा है, मेरे बाद इन लोगों का पैसा पाई पाई चुकता करना। यही व्यवसायियों का नियम है। मैं नहीं चुका सका, लेकिन मुझे विश्वास है कि तुम इसे पूरा करोगे।

इतना कहकर उसने उन बैठे हुए लोगों की ओर देख कर कहा—भाई, मेरे लड़के पर दया रखना, यह आप लोगों के रुपये परिश्रम से चुका देगा।

व्यवसायियों के साथ रामदयाल के पिता का ऐसा व्यवहार था कि वे बोल उठे—कोई चिंता नहीं है, आप निश्चिंत होकर भगवान का नाम लें।

इस घटना के दो दिन बाद, बूढ़े की मृत्यु हुई। रामदयाल ने संपूर्ण जिम्मेदारी लेकर अपने भविष्य का एक नया मार्ग खोजना आरंभ किया। इतने रुपये वह कैसे देगा? यह एक कठिन समस्या थी।

(२)

पिता की मृत्यु के पश्चात्, रामदयाल बड़ा गंभीर हो गया। उसने देखा पैसों के नाम पर कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। अपने जीवन के वह ढाई युग बिता चुका था, किंतु ऐसे वायु मंडल से उसका परिचय न हुआ था। वह सदैव अपने पिता के भरोसे ही रहता था। आज अपने ऊपर इतना बड़ा बोझ लेकर वह कैसे चलेगा? उसके लिए यह साधारण समस्या नहीं थी फिर भी वह नियमित रूप से अपना कार्य करता रहा।

उसमें कोई दुर्गुण भी नहीं था। वह किसी तरह के नशे में नहीं फँसा था। यहाँ तक कि पान तंबाखू से भी दूर रहता था। दूसरों की स्त्रियों के प्रति कभी उसे आकर्षण नहीं होता था।

× × ×

पाँच वर्ष बीत गये थे और अब तक वह पिता के ऋण का केवल चौथाई हिस्सा ही अदा कर सका था। अब उसे अपनी संतान के भविष्य की चिंता सताने लगी थी। इस तरह तो बीस वर्ष में भी वह ऋण से मुक्त नहीं हो सकेगा और एक दिन अपने पिता की तरह खुद भी चल बसेगा। फिर क्या उसका लड़का भूखा मरेगा? भीख माँगेगा? आवारों की तरह इधर उधर भटकेगा? ये विचार सदैव ही उसके मस्तक में मँडराया करते थे।

रामदयाल अपने पिता की तरह लंबा सौदा भी नहीं कर सकता था, क्योंकि उसमें हानि की भी संभावना थी। निराश होकर एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा—देखता हूँ, इस संसार में अच्छे रास्ते चल कर धन नहीं संचित कर सकता। इस तरह परिश्रम करके तो आदमी गधा बन जाता है और फिर भी उसे चैन नहीं। पिता के ऋण को उसका लड़का भरे यह कैसा अन्याय है?

रामदयाल की पत्नी कष्ट में अपने दिन बिता रही थी। घर का सब कार्य वही करती थी। केवल पैसे बचाने के लिये, और अपने पति को प्रसन्न रखने के लिए ही उसका ऐसा क्रम था। पति को ऐसी बातें कहते देखकर वह उसे टटोलना चाहती थी। उसने कहा—तब क्या किया जाय ?

रामदयाल ने अपने सर पर हाथ फेरते हुए कहा—अब तो यह शहर छोड़कर चले जाने से ही छुटकारा मिल सकता है।

उसकी पत्नी ने कहा—ऐसा करना कहाँ तक ठीक होगा ? आप ही समझें।

रामदयाल विचार में निमग्न होकर घर से बाहर किसी कार्य से चला गया।

इसी तरह दिन बीत रहे थे।

कई महीने बाद, अपनी पत्नी और पुत्र को साथ लेकर, रामदयाल दूसरे शहर में चला गया।

(२)

बीस वर्ष बाद।

आकांक्षाओं की विशाल समाधि पर बैठ कर भी मनुष्य अपने संतोष से शांत नहीं हो पाता। रामदयाल ऐसे ही लोगों में था। इस नवीन नगर में वह विख्यात व्यवसायी बन गया था। उसकी कोठी चलती थी, उसकी गल्ले की कई आढ़तें थीं। देखते देखते वह लखपती बन गया। लोगों को आश्चर्य था। आज इतने पैसों को लेकर भी वह दुखी रहा करता है। जी जान से परिश्रम करके जो धन उसने पैदा किया था, उसका इस तरह से दुरुपयोग देखकर वह अपने भाग्य को कोसता है। उसका पुत्र आवारा निकल गया। व्यवसाय की ओर उसका ध्यान नहीं था। वह सदैव ही मित्र मंडली के साथ ताश खेलता—वेश्याओं के घर पर पड़ा रहता। ऐसा ही उसका क्रम था।

रामदयाल का स्वास्थ्य भी खराब हो गया था ! वह प्रायः बीमार ही रहता। उसके व्यवसाय का सब प्रबंध कर्मचारी लोग ही करते थे। वह अपने कमरे में पलंग पर पड़ा, अपने भविष्य को अपनी ही आँखों से देख रहा था।

रात्रि का समय था। रामदयाल का पुत्र इतनी रात को घर लौटा था। उसकी माँ, उसकी प्रतीक्षा में अब तक बैठी थी। रामदयाल सो गया था। लड़के ने आते ही माँ से कहा—पाँच सौ रुपये अभी दे दो। आवश्यकता है जल्दी करो।

उसकी माँ आश्चर्य से उसकी ओर देख रही थी। उसने कहा—अभी कल तुम दो सौ रुपये ले गये हो। अब इतनी रात को क्या जरूरत है ?

लड़के ने रोब से कहा—यह तुम जान कर क्या करोगी ? मुझे रुपये चाहिये, मैं बात करना नहीं चाहता।

उसकी माँ चुप थी। वह सामने खड़ा था। वह अपने को न सम्हाल सका, उसने माँ से ताली छीन कर सेफ से रुपये निकाले। माँ रोने लगी। कोलाहल हुआ। रामदयाल की नींद खुल गई। लड़का रुपये लेकर घर से बाहर चला गया था।

रामदयाल ने अपनी पत्नी से पूछा—क्या हुआ ? उसकी पत्नी ने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—मारपीट कर रुपये लेकर चला गया।

रामदयाल ने निराशा भरे शब्दों में कहा—हम लोगों का भाग्य ही ऐसा है। संपूर्ण जीवन धन के लिए ही हाय हाय करते बीता। सोचा था, वृद्धावस्था में शांति मिलेगी लेकिन······।

उसकी पत्नी ने कहा—आज यह धन ही दुख और चिंता का कारण बन गया है। यह न होता तो हमलोग अधिक सुखी रहते।

इस घटना के एक वर्ष बाद, रामदयाल इस संसार से चल बसा। मरते समय उसने अपनी पत्नी से कहा था—पिता का ऋण चुकाना जब पुत्र के लिये अन्याय है, तो पिता का उपार्जित धन नष्ट करना क्या पुत्र का कर्तव्य होगा ?

रामदयाल की स्त्री उसी प्रश्न को बार बार अपने पुत्र से दोहराती है, लेकिन उसकी समझ में यह प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता। वह कहता है—भगवान जिसको जितना देता है, वह उसे मिलता है। मनुष्य की क्या शक्ति कि किसी को कुछ दे ?

भाग्य का खेल

एक दिन ईश्वर अवश्य सुनेंगे। ईश्वरीय लीला को कौन समझ सकता है? एक राजा—भिखारी हो जाता है, एक भिखारी—राजा बन जाता है!

उमा ने एक आह खींचकर कहा।

मेरा वह समय गया उमा! अब लौटकर नहीं आवेगा। उसकी आशा करना व्यर्थ है!

उमा के पति केशवप्रसाद ने उत्तर दिया।

दो वर्ष पहले 'केशव' नगर के प्रसिद्ध धनियों में थे। लाखों रुपये का हेरफेर वर्ष में हो जाता था। कोठी के सामने पहरा पड़ता था। नौकर चाकर से घर भरा था। लक्ष्मी की कृपा थी। अपने कुर्ते का बटन भी वह अपने हाथ से नहीं लगाते थे। बड़े बड़े अफसर, रईस और पंडित उनका द्वार खटखटाया करते थे। सबको वह अपने सरल व्यवहार से प्रसन्न रखते थे! बहुत दिनों तक उनका जीवन अपने परिश्रम और उद्योग से बड़ा सुखी था।

किंतु विपत्ति की सेना एक साथ ही मनुष्य के भाग्य पर धावा करती है। कुछ ही समय में उनका सब खेल नष्ट हो गया। व्यापार में घाटा हुआ। बैंक का रुपया डूब गया। मुकदमों में बहुत सी संपत्ति चली गई।

उनके जैसे सरल, दयालु, नम्र और निष्कपट मनुष्य के ऊपर यह ईश्वरीय प्रकोप था, अथवा संसार के रहस्य का कोई अभिनय—यह कौन जान सकता है?

जिसका जो कुछ देना था, उन्होंने अपने सुख की अमूल्य वस्तुओं को बेचकर चुका दिया। किंतु उनका रुपया जिसके यहाँ बाकी था, उसने साफ इनकार कर दिया।

श्यामदास उनके मित्र थे। एक बार आवश्यकता पड़ने पर केशव ने उन्हें पाँच हजार रुपया केवल एक हैंडनोट पर दे दिया था। विपत्ति के समय केशव ने उनके यहाँ जाकर कहा—भाई, मेरा समय बड़ा बुरा आ गया है। अब इस समय रुपया दे दो, तो बड़ा उपकार हो।

श्यामदास एक अमीर मित्र की दृष्टि से देखते हुए कहने लगे—कैसा रुपया ? मुझे कब रुपया दिया था ?

आपका लिखा हुआ हैंडनोट मेरे पास है ।

क्या कहा ? हैंडनोट ! मेरा लिखा ? कितने रुपये का ?

पाँच हजार का ।

पाँच हजार रुपया आपने मुझे हैंडनोट पर दे दिया ? क्या खूब ! जाल भी बनावे तो ऐसा ! अरे भले आदमी, जिसके सामने इस तरह कहोगे, वह तुम्हें मूर्ख समझेगा । पाँच हजार—बिना जमानत के, या रजिस्ट्री कराये बिना—कौन देगा ?

केशव ने माथा थामकर कहा—श्यामदास, तुम्हारे हाथ के लिखे पत्र भी रक्खे हैं । ईश्वर से तो डरो । क्या वह दिन भूल गये ?

श्यामदास ने पहले ही जान लिया था कि इस समय केशव की स्थिति बिगड़ी हुई है—वह मुकदमा भी नहीं चला सकते । अतएव बड़े साहस के साथ बोले—मेरे हाथ का लिखा है, तो जाओ, मुकदमा चलाओ ।

श्यामदास, यही तुम्हारा अंतिम उत्तर है ?

हाँ, मैं तुम्हारा रुपया नहीं जानता—कहते हुए श्यामदास अपने काम में लग गये ।

निराश होकर केशव चले आये । उनका छोटा सा संसार टूट फूटकर टुकड़े टुकड़े हो गया ।

(२)

बहुत समय बीत गया ।

नगर में श्यामदास की तूती बोल रही थी । कुछ ही समय में वह आनरेरी मजिस्ट्रेट, म्युनिस्पल कमिश्नर आदि सब कुछ हो गये । पिछले वर्ष रायबहादुर का खिताब भी मिल गया ।

अपनी सफलता पर वह फूले न समाते थे । एक साधारण व्यक्ति अपनी चतुराई से अब एक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित पुरुष समझा जाने लगा । इसपर अभिमान होना स्वाभाविक ही था ।

उसके हृदय में यह बात समा गई थी कि लोग उन्हें अब मान और आदर की दृष्टि से देखें; किंतु जनता एक साधारण सच्चरित्र पुरुष के समान

भी उनसे व्यवहार करने को तैयार नहीं थी। वह सरल नहीं थे; विशेष शिक्षित भी नहीं। उनमें अभिमान था। और, अपने धन के अहंकार में सबके ऊपर प्रभुत्व जमाना चाहते थे।

धीरे धीरे जनता में उनके प्रति असंतोष फैला। लोग कहते गवर्नमेंट का खुशामदी है।

आनरेरी मजिस्ट्रेटी में कभी कभी उनके फैसले अन्यायपूर्ण होते थे। कोई कुछ कर ही क्या सकता था ? सब उनसे डरते थे। असहयोग के समय में उन्होंने सरकार की बड़ी सहायता की थी। इसी पर तो 'रायबहादुर' का खिताब मिला था।

नगर के बहुत लोगों का रुपया उनकी कोठी में जमा था। वह उन्हीं रुपयों का हेरफेर इस ढंग से करते थे कि लोग उन्हें बड़ा धनी समझते थे; पर वास्तव में वह उतने धनी नहीं थे, जितना लोगों का अनुमान था। यह था उनका रहन सहन और बड़े बड़े अफसरों से मिलने का परिणाम, जिसने उनको प्रतिष्ठित बना दिया था।

कई वर्ष बीत गये।

दिन दिन लोगों में उनके प्रति अश्रद्धा बढ़ती गई। यहाँ तक कि जिनके रुपये उनकी कोठी में जमा थे, सब निकालने लगे। उनकी समझ में यह बात न आई। उनका कारबार शिथिल होने लगा। अब घर के रुपये भी खर्च होने लगे। आमदनी का ढंग बिगड़ गया था, और अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के लिए साधारण व्यय में कमी कर ही नहीं सकते थे।

(३)

केशव ने सब कुछ खो दिया था; परंतु लोगों में उनका मान पहले-ही-जैसा था। उसका कारण था—उनका सद्व्यवहार, धार्मिक जीवन और ईमानदारी।

अमीरी के बाद जब बुरे दिन आ जाते हैं, तो वे मनुष्य के लिए मृत्यु से भी अधिक भयानक होते हैं। कितना कष्ट होता है, यह सबके लिए अनुभव करना बड़ा कठिन है।

कहाँ तो वह समय था, जब मूल्यवान कपड़ों से ट्रंक भरे रहते थे, और कहाँ अब एक ही कुर्ता धोती से दिन कट रहा था! अब कपड़े मैले

हो जाते, तो उमा उन्हें साबुन से साफ करती, और केशव उन्हीं को पहन कर बाहर निकलते थे।

एक दिन आँखों में आँसू भरकर केशव ने कहा—उमा, तुम्हें परिश्रम करते देखकर मेरा हृदय फटने लगता है। इस जीवन से तो मृत्यु अच्छी है।

स्वामी! एक से दिन नहीं रहते। यदि मनुष्य का सदाचार बना रहे, तो कभी उसका पतन नहीं होता। मैं तो अपने को उतना ही सुखी समझती हूँ, जितना पहले समझती थी।

यह सब मुझे सांत्वना देने के लिए तुम कहती हो उमा! वास्तव में क्या तुम ऐसा ही समझती हो?

मैं सच कहती हूँ, मुझे तो ऐसा अनुभव होता है कि मैं पहले से अधिक सुखी हूँ।

सो कैसे?

दिन रात मैं आपके कष्टों का अनुभव करती हूँ, और उसका परिणाम यह होता है कि दिन दिन आपकी सहानुभूति मेरे प्रति बढ़ती जाती है। यही मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

केशव ने कुछ उत्तर नहीं दिया। ऐसी गृहलक्ष्मी पाकर मन में वह अपने को परम सौभाग्यशाली समझते थे।

दिन-पर-दिन और महीने के बाद महीने आये और चले गये। केशव के दूर के एक संबंधी की अकस्मात् मृत्यु हो गयी। वही उसकी संपत्ति के अधिकारी हुए।

दिन बदलने लगे।

केशव ने फिर पहले की भाँति अपना व्यवसाय आरंभ कर दिया। उनकी इस सफलता पर, बहुत से नास्तिक लोग भी, ईश्वर के भरोसे पर रहनेवालों को देखकर, आश्चर्य करते।

धार्मिक लोग कहते—ईश्वर ईमानदार का साथी है।

(४)

श्यामदास के धन के लोभ ने तांडव नृत्य दिखलाया—कभी आता, कभी चला जाता। इधर उधर से आता, इधर-ही-उधर चला जाता। मान के लिए कुछ चंदा, डाली और भेंट में चला जाता—कुछ रसीली मदभरी आँखों की खोज और रूप की प्यास में!

केशव ने उनसे मिलने पर एक दिन फिर कहा—भाई, अब भी रुपया दे दो। क्या तुम्हें यही उचित था ?

मैंने एक बार कह दिया; मैं आपका रुपया नहीं जानता—बस।

अच्छा तो अब अदालत में देना, कहे देता हूँ।

अगर तुम्हारा हो, तो ले लेना।

श्यामदास को अदालत पर विश्वास था। सभी लोग उनके परिचित थे। उन्होंने समझा, मुकदमा खारिज हो जायगा।

कुछ दिनों के बाद केशव ने उनपर पाँच हजार का दावा किया। कई वर्ष मुकदमा चलता रहा। अंत में वह हार गये—बड़े संकट में पड़े, तब आँखें खुलीं। देखा; क्षितिज से दौड़ते हुए विपत्ति के काले बादलों के झुंड ने सुख सूर्य के प्रकाश को मिटा दिया था।

उनकी सब संपत्ति के बिक जाने पर भी केशव को सब रुपये नहीं मिले—कुछ बाक़ी ही रह गया। तब उनके वकील ने संमति दी कि बाक़ी के लिए आप उन्हें जेल भेज सकते हैं।

केशव ने चिंतित भाव से कहा—ऐश्वर्य के बाद दरिद्रता के दिन क्या जेल से कम होते हैं वकील साहब ? श्यामदास पर और कष्टों का बोझ लाद देने का साहस अब मुझमें नहीं है।

श्यामदास को देखकर लोग कहते—बुरे कर्मों का आरंभ बड़ा सुंदर होता है, किंतु अंत बड़ा भीषण !

भूली बात

जवानी के सरस दिनों में, किसी के ऊपर अपना सर्वस्व निछावर कर देने की, अथवा उस पर मर मिटने की कल्पना कितनी प्यारी और सुखद होती है ! दुनिया में लोग इसे पागलपन समझते हैं; लेकिन कौन ऐसा है, जिसने अपने जीवन में एकबार इसका अनुभव न किया हो ?

एक वह दिन था, जब कमल ने कहा था—तारा ! इस जीवन में क्या तुम्हारे प्यार का मूल्य चुका सकूँगा ? संसार हँसता है, हँसने दो; समाज गालियाँ देता है, देने दो; तुम मेरी हो मैं तुम्हारा हूँ ! यह कठोर सत्य है। विश्व की सारी शक्ति इस संबंध को न छुड़ा सकेगी।

यौवन की अतृप्त प्यासी तारा ने मुस्कुराकर उत्तर दिया था—मुझे तुम्हारा विश्वास है।

\+ \+ \+ \+

दिन बीतने लगे।

बड़ा सुख था। दोनों एक दूसरे की तरफ देखते ही रह जाते, एक थाली में बैठकर भोजन करते; किसी तरह का भेद भाव न था।

उस दिन संध्या समय, कमल तारा को साथ लेकर मन बहलाने के लिए निकला था। जनपथ के कोलाहल से भय था। वह निर्जन मार्ग की ओर बढ़ा। बहुत दूर निकल गया था।

एक ऊँचे करारे पर चढ़ते हुए कमल ने कहा—तारा ! यहाँ से गिरने पर हड्डियों का पता नहीं चल सकता !

तारा ने भयभीत होकर कहा—बड़ा विकट स्थान है !

प्रेम की क्षणिक भावुकता में कमल ने कहा—यदि हम दोनों आलिंगन करते हुए कूद पड़ें तो···

तारा चुप थी, जैसे किसी विचार में पड़ गयी।

बोलो, तुम प्रस्तुत हो ?

तुम्हारे साथ मरने में भी मुझे सुख है। क्या मेरी परीक्षा लेना चाहते हो ?

नहीं, तारा ! मुझे स्वयं अपने मन की दृढ़ता पर विश्वास नहीं है ।

कमल तारा की ओर देखने लगा । क्षणभर के लिए उस समय मृत्यु की कल्पना भी बड़ी प्यारी लगी ।

दोनों घर लौटे ।

आकाश के रंगीन चित्रों को बटोरकर सुंदरी संध्या खिसक गई थी ।

(२)

वर्ष के बाद वर्ष आए और गए !

परिस्थितियों ने उलझन का जाल बनाया । ऐसा जाल जिसमें फँसकर मनुष्य न जाने कहाँ-से-कहाँ चला जाता है ।

सुख, विलास, ऐश्वर्य से भरे संसार को कोई नफरत की नजरों से क्यों देखता है ? पागल आँखें जिन्हें देखने को तरसती रह जाती हैं—वही आँखें—एक दिन ऐसा आता है, जब पलकें बंद कर उनसे दूर भागने की चेष्टा करती हैं ।

उस मधुर राग से जी भर जाता है, तबीयत ऊब उठती है जो कुछ भी हो, हम मिलकर भी अपने को दूर रखना चाहते हैं ।

विश्व की सारी शक्ति भी जिसे नहीं छुड़ा सकती थी, कमल अपने आप उसी बंधन को तोड़ डालता है । तारा को जिन बातों पर वह मुग्ध था, उन्हीं से अब घबड़ा उठा ।

कायर आदमी अपने ऊपर जिम्मेदारी का बोझ नहीं उठाना चाहता । वह अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रहता । वह कल्पनाओं का दास है । कमल भी ऐसे ही लोगों में था ।

(३)

शराब की बेहोशी से जैसे उठकर कोई रात की बीती बातों को सोचता है, ठीक वही दशा तारा की थी । ओह ! सुख कितना मँहगा हो गया था ।

उस पवित्र प्रेम के दम भरनेवाले भाव, तब गंदी नालियों में बहने लगे । काले हृदय में स्मृति की वैसी ही एक दो रेखाएँ थीं, जैसे परखने में कसौटी पर स्वर्ण की रह जाती हैं ।

तारा बैठी सोचा करती है । दीन दुनिया से वह ठुकराई हुई है । उसका कोई नहीं है । संसार में कौन किसका होता है ? किंतु तारा को इतनी फुर्सत कहाँ कि वह इसपर विचार कर सके ।

उसके प्रेम के आँगन में आग बरस पड़ी। जलन में बड़ी मधुरता है, आह है, बेचैनी है, दर्द है !

अविश्वास की गहरी खाईं में तारा को अकेला छोड़कर कमल चला गया।

ऐसा क्यों हुआ ? इसका विस्तृत वर्णन करना व्यर्थ है; क्योंकि तारा जैसी भटकने वाली स्त्रियाँ प्रायः संसार की आँखों के सामने आ जाया करती हैं।

(२)

बहुत समय बीत गया। पता नहीं, कमल अगर जीवित होगा, तो उसकी जवानी ढल गई होगी।

तब से अब तक कितना परिवर्तन हो गया।

तारा, बैठी हुई घाट किनारे माँग रही थी भीख ! और सोच रही थी—अपनी सुनहरी जवानी की बातें ! कैसी विडंबना थी ! वे बातें उसे क्यों याद आईं ? इसका भी एक कारण था। अपने सुख के दिनों में कमल की गोद में सिर रखकर ऊपर देखती हुई, कमल की आँखों से आँखें मिलाकर, वह प्रायः गाया करती—

आँखों में समा जाना,
पलकों में रहा करना।
दरिया भी इसी में है,
मौजों में बहा करना।

आज पेट के वास्ते, कुछ दानों को जुटाने के लिए, वही गीत घाट पर बैठी, वह गा रही थी।

गाते गाते रुककर वह सोचने लगी—अपने विलास के स्वप्न ! सामने उसके कपड़े के टुकड़े पर कुछ चावल और पैसे पड़े थे।

माला फूल से सजी हुई, चाँदी की डोलची हाथ में लिए हुए एक अधेड़ भक्त पुरुष, गंगा स्नान करके मंदिरों में दर्शन करने जा रहा था।

ठिठक कर उस आधे गीत को अपने मन में सोचने लगा।

भगवान् की माया ममता का उस गाने में कोई जिक्र न था। फिर भी भक्तराज की आँखें न जाने क्यों भर आईं।

चुपचाप एक चवन्नी—चाँदी का गोल टुकड़ा—उसी फटे कपड़े पर फेंकते हुए, वह जल्दी से आगे बढ़ गया; किंतु, बढ़ते ही राह में खड़ी हुई एक सीधी गाय से टकराते टकराते बच गया। शायद कोई भूली बात सोचने लगा था।

वह लौट आया। सामने से देखने का साहस न हुआ—कतराकर, बगल में खड़ा होकर, तारा को पहचानने की कोशिश करने लगा। और तारा अभी चवन्नी देने वाले की दयालुता पर विचार कर रही थी। उसने देने वाले की पीठ पर सिल्क की चादर तो देख ली थी, चेहरा नहीं देखा था। वह घूमकर देखने लगी।

वह कहना ही चाहती थी कि भगवान तुम्हारा भला करें; किंतु उसे भी कोई भूली बात याद आ गई। उसने असीस न दिया! न दिया!!!

भोले बाबा

जिन चंद्रमुखियों को कभी देखने का सौभाग्य किसी को न प्राप्त होता था, वे बड़ी स्वच्छंदता से भोलानाथ के हाथों में अपना बहुमूल्य आभूषण सहेजकर गंगा में डुबकियाँ लगाती थीं। लेकिन भोला के चरित्र के संबंध में किसी को कभी शंका या उलाहना का अवसर नहीं मिला था। हो सकता है कि निरंतर सौंदर्य के उपवन में रंग बिरंगी मकरंद भरी कलियों को खिलते देखकर उसकी आँखें तृप्त हो उठी हों, ठीक उसी तरह, जैसे भोजन बनानेवाले या वाली की क्षुधा की क्षणिक प्रवृत्ति शांत हो जाती है।

भोला के घाट पर स्त्रियाँ ही स्नान करने आती थीं, और इसीलिए वह जनाने घाट के नाम से प्रसिद्ध था। भोला ने अपना स्वरूप भी विलक्षण बना रखा था। मस्तक पर भस्म और गले में रुद्राक्ष का कंठा था। उसकी बढ़ी हुई डाढ़ी और मोछ ने किसी तांत्रिक या योगी का रूप धारण कर लिया था। वह चुपचाप गोमुखी में माला फेरता रहता था।

भोला का अधिकांश समय पूजा पाठ और जप में ही व्यतीत होता था। उससे परिचित महिलाएँ उसके संकेतों का तात्पर्य भी समझती थीं। उसकी आँखों से आँख मिलाते हुए कभी किसी को संकोच अथवा लज्जा की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी। इसमें भी एक रहस्य था। स्त्रियाँ पुरुषों की दृष्टि को बड़ी सरलता से परख लेती हैं। खरे और खोटे की पहचान उन्हें क्षणभर में ही हो जाती है।

भोला के घाट पर नियमित स्नान करनेवाली बड़ी बहू को अस्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई भोला के जीवन की गुप्त कहानी को सुलझाने में विशेष समय लगा था। और उसके बाद तो सभी महिला भक्तों को विदित हो गया था कि भोला की धर्मपत्नी अपना मुँह काला कर घर से निकल गयी थी।

दो युग से अधिक समय बीता। उस समय भोला और बड़ी बहू दोनों के निर्भीक उमंगों के दिन थे। तिल के लड्डू में छोटी चाँदी की दुअन्नी के स्थान पर भोला को गिन्नी तक प्राप्त हुआ था। बड़ी बहू की उदारता की

गाथा गंगा तट पर रखे लकड़ी के लंबे चौड़े तख्ते, छतरी और गर्मी में स्त्रियों के स्नान के लिये फूस का घटातोप घेरा, सब पर अंकित है।

भोला के जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर बड़ी बहू का सहयोग छाया की भाँति उसके साथ रहा। घर बनाने, चारों धाम की यात्रा करने में और माता की क्रिया कर्म आदि सब में भोला उनका आभारी रहा।

भोला का एकाकी जीवन कुछ परिवर्तन की प्रतीक्षा में था। प्रति दिन सबेरे का कृत्य समाप्त कर दोपहर में घर जाकर स्वयं अपने हाथ से पेट पूजा की व्यवस्था करता। बर्तन चौका, दाल चावल बीनना और तरकारी छीलने का कार्य लछमीना कर जाती थी, किंतु चूल्हे की क्रिया से वह उदासीन रहा करता था। माता के देहांत के पश्चात् उसे यह सबसे बड़ा बोझ प्रतीत होता। लेकिन यह चांडाल पेट! दूसरे के हाथ का बनाया खा भी नहीं सकता था, धर्म का प्रश्न था!

इधर कई दिनों से भोला की गोमुखी सामने दौरी में ही पड़ी रहती। उसके जप करने में कुछ अन्यमनस्कता सी दिखायी पड़ती थी। उसकी गंभीर और चिंतित आकृति को देखकर भी किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया; लेकिन बड़ी बहू की आँखों से रहस्य छिपा नहीं रहा। भोला की जीवन कहानी से वह भलीभाँति परिचित थीं। उनके सामने पूरे विवरण की आवश्यकता नहीं थी, केवल एक संकेत पर ही समूचा वातावरण उनके संमुख आ जाता था। भोला को विचलित देखकर बड़ी बहू स्नान करने के बाद तख्ते पर बैठ कर बातें करने लगीं। भोला ने अपनी समस्त स्थिति बड़ी बहू के सामने स्पष्ट की। लोगों की धार्मिक मनोवृत्ति संकुचित होने के कारण दान पुण्य में घोर त्रुटि होने लगी है। जहाँ पहले प्रति दिन तीन चार रुपये प्राप्त हो जाते थे, वहाँ अब केवल तीन चार आने के पैसे भी कठिनाई से मिलते हैं। अब घाट पर बैठना व्यर्थ है। दर्शन, यात्रा में भी बाधा पड़ती है। भोला अब घाट पर बैठकर लोगों के कपड़ों और चट्टी की रखवाली करने से मुक्त होगा। उसे इस व्यवसाय से अरुचि हो गयी है। उसे करना ही क्या है, अकेले पेट के लिए इतनी हाय हाय, किच किच!

उसी समय एक वृद्धा हाथ में एक पैसा लिये हुए भोला के समीप आयी। पंचपात्र से गंगाजल उसके हाथ में देते हुए भोला उच्चारण करने लगे—मासानाम मासोत्तमे, काशी पुण्य क्षेत्रे गंगास्नान, फल प्राप्त्यर्थम् स्वस्ती...

एकांत पाकर बड़ी बहू ने मंद मुस्कान से कहा—भोले बाबा, बिना औरत के भोजन की सुविधा नहीं हो सकती। अपनी जाति की कोई खोज क्यों नहीं लेते ?

—सरकार, अब चलने के दिन आये, अब क्या खोजूँ ? जब भाग्य में नहीं था, तो अब क्या ?

– अरे, अभी तो आप साठ के भीतर ही हैं,—चलते हुए बड़ी बहू ने कहा।

(२)

मंदिर के घंटे की ध्वनि सुनकर बालक घर से दौड़ पड़ते थे। प्रसाद का प्रलोभन रहता था। पड़ोस के सभी बालक, बालिकाएँ मंदिर के द्वार के संमुख पंक्ति में खड़ी होकर उत्सुकता से प्रतीक्षा करतीं। प्रसाद मिलते ही बाल मंडल सब उसका स्वाद लेते हुए लौट जाते थे। जिन्हें कुछ विलंब हो जाता, वे बाद में आकर पुकारते—भोले बाबा ! हमें भी दो !

भोलानाथ सभी बाल गोपाल को संतुष्ट कर देते थे। उनके एक बताशे से ही वे खिल उठते थे। इस तरह भोलानाथ ने बाल मंडल को अपना कर अपना एक परिवार बना डाला था। संध्या समय आरती के पहले जब भी श्री राम, जय जय राम का स्वर गूँज उठता···उस समय सचमुच बालकों का दल तन्मय होकर उसमें भाग लेता था। दर्शकों पर भी इसका विशेष प्रभाव पड़ता था।

बालकों के समुदाय ने भोले बाबा को विख्यात कर दिया। घाट छोड़कर, घर में बैठकर मंदिर के राग भोग में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती थी। प्रति दिन की आय के अनुसार ही राग भोग की व्यवस्था भी होती थी। इसीलिये कभी मिठाई और कभी बतासा बँटता था।

इस लोक के संपूर्ण कर्तव्यों का पालन करते हुए, माता के आदेशों पर पग पग चलकर भोले बाबा ने अपना कार्यक्रम समाप्त किया था। परलोक के लिए भी जितने आवश्यक कृत्य थे, उनका भी शास्त्रानुसार अनुसरण किया गया था। अब भोले बाबा के जीवन में कोई कार्य शेष नहीं था। केवल भगवान की आराधना में लीन होकर एक दिन पंचभूत के अधम शरीर को छोड़कर चले जाना है। भोला गोस्वामी जी के उस पद की अगणित बार

व्याख्या कर चुका था। फिर भी उसके गूढ़ अर्थ को उसने समझ कर भी कहाँ तक समझा था, यह खुद उसकी समझ में नहीं आता था, क्योंकि जीवन में मूक आकांक्षाओं की समाधि के समीप बैठा वह धूनी रमाये था। निराशा के पवन के थपेड़ों से सुलग कर कभी कभी चिनगारियाँ कितना विशद रूप धारण कर लेती हैं, तब भयभीत होकर भोला सब कुछ देखता ही रह जाता है।

पिछली रात जैसे किसी स्वप्न से चौंककर भोला प्रकृति के करुण क्रंदन को सुनने लगता। उसकी नींद उचट जाती। तारों से भरा आकाश रात्रि के अंधकार को कोई संदेश दे रहा होता। तब भोला को ऐसा ज्ञात होता, जैसे उसके अपने खोखले मन से निकले हुए चीत्कार की प्रतिध्वनि लौटकर आती थी। उसकी वासनाएँ अतृप्त ही रहीं।

देवता की पूजा की सामग्री में भी पैसों की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही मन मंदिर की देवि की उपासना खाली हाथों नहीं हो सकती।

(३)

भोला के जीवन का एक नया अध्याय आरंभ हुआ था। महीनों से उसका चचेरा भाई भागीरथ शय्या पर पड़ा था। भोला की तरह वह भी अकेला था। गंगातट पर तख्ता लगाकर बैठना और दान दक्षिणा लेना उसके पूर्वजों का व्यवसाय था। नियमित समय पर चार बजे रात में गंगा में डुबकी लगाकर, संध्या पूजा कर, घाट पर दौरी सामने रख कर भागीरथ आसन पर बैठ जाता था। मध्याह्न में गठरी लेकर घर जाता। भोजन बनाता और खाकर विश्राम करता। संध्या समय डोंगी लेकर उस पार निपटने जाता। यही उसका निश्चित कार्यक्रम था। उसको बीमार पड़ते कभी किसी ने देखा नहीं। लेकिन इस बार शय्या से उसका उठना असंभव सा प्रतीत होता था।

बीमार पड़ने के कई दिनों बाद भोला ने गेंदा को भागीरथ की सेवा के लिए बुला लिया था। गेंदा विधवा थी। तीन भाइयों की तीन संतानें संकट के समय एक सूत्र में बँधी हुई थीं। तीनों की अवस्था में तीन तीन वर्ष का अंतर था। गेंदा सबसे बड़ी थी।

महीनों से भोला इस छानबीन में था कि भागीरथ के पास कुल कितना रुपया है? लेकिन उसे वास्तविक पता नहीं लगता था, क्योंकि भागीरथ

कुछ बताता नहीं था। जिस कोठरी में वह पड़ा था, उसकी बगल में ही एक लंबी कोठरी थी, इसमें सूर्य की किरणें कभी भी प्रवेश नहीं कर सकी थीं। इस अंधकारपूर्ण स्थान में भागीरथ के जीवन का समस्त संचित धन रखा था। साधारण वस्तुएँ संदूक आदि में थीं, किंतु सोने का गहना जमीन के अंदर गड़ा था।

एक दिन गेंदा जब भागीरथ के सिर में तेल लगा रही थी, तब बड़े धीमे स्वर में भागीरथ ने कहा—बहिन···

गेंदा उसकी ओर देखते हुए पूछने लगी—क्या है, भय्या ?

भागीरथ मौन होकर कोठरी की धरन की ओर दृष्टि गड़ाये था।

गेंदा ने फिर पूछा—पानी दूँ ?

सिर हिलाकर उसने नहीं किया।

—तब क्या है भय्या ?—गेंदा जानती थी कि भागीरथ सदैव मौन ही रहता है, अतएव कोई विशेष बात करना चाहता है। उसने आग्रह से कहा—कहो न ?

भागीरथ ने गेंदा से बहुत सी गुप्त बातें बतलायीं और अंत में कहा कि यह भोला चाहता है कि कैसे जल्दी से मेरा प्राण निकल जाय और सब कुछ उसके हाथ लगे।

गेंदा ने भागीरथ को परामर्श दिया कि जो कुछ दान पुण्य करना हो, वह सब अपने सामने कर दो। दबे पाँव इसी समय भोला ने दालान में प्रवेश किया। वह चुपचाप दरवाजे के चौखट पर बैठ गया। उसकी चढ़ी हुई भवें देखकर गेंदा ने पूछा—क्या बात है, इतने सुस्त क्यों हो ?

भोला ने आवेश में कहा—देखो, बहिन ! मैं सब जानता हूँ, भय्या सोचते हैं कि मैं इनके धन के लालच में पड़ा हूँ, लेकिन मैं इनका एक पैसा भी नहीं चाहता। यह जो चाहें करें, जिसे चाहें दे दें।

इसके बाद किसी ने कुछ कहा नहीं। वातावरण शांत था। गेंदा समझ गयी कि उन दोनों की बातें भोला ने कान लगाकर सुनी थीं।

उस दिन से भोला खिंचा हुआ था। काम काज सब नियमित रूप से होता रहा, किंतु उसके व्यवहार से रूखापन और चेहरे पर गंभीरता छायी हुई थी। गेंदा इन सब बातों का तत्व समझती थी। भोला ने गेंदा को भली

भाँति सब बातें समझा दी थीं कि भागीरथ के मरने के बाद बंक का रुपया डूब जायगा और किसी के हाथ नहीं लगेगा। बहुत समझाने पर भी भागीरथ कोई उत्तर नहीं देता था। उसे आशा थी कि शय्या से उठकर खड़ा हो जायगा।

महीनों से केवल दूध पर ही चलता रहा। गेंदा चम्मच से दूध और कभी पानी बराबर देती रही। कई दिनों से अब भागीरथ दूध नहीं पीता था। वह आँखें बंद किये पड़ा रहता। शरीर गलकर कंकाल हो रहा था, लेकिन प्राण साथ नहीं छोड़ना चाहता था। गेंदा भी ऊब गयी थी।

गेंदा के बहुत समझाने पर भागीरथ ने बंक की पासबुक संदूक से निकालने के लिये कहा। भोला ने बहुत प्रयत्न कर दे लेकर, सब व्यवस्था की। गवाही और अंगूठे के निशान पर ही घर बैठे खजांची रुपया दे गया था।

एक हजार भोला, एक हजार में अस्सी बरना के प्रत्येक घाटिये को एक एक रुपया दक्षिणा और सवा पाव का पेड़ा बँटेगा। शेष पाँच सौ भागीरथ के क्रिया कर्म के लिए रहेगा। यह व्यवस्था कुछ बिरादरी के लोगों के संमुख भागीरथ ने रखी थी। उसके बाद उसकी समस्त संपत्ति की मालिक गेंदा होगी और भोला केवल एक हजार का हकदार होगा।

उस दिन से फिर भागीरथ कुछ बोला नहीं। उसकी आँखों से कभी कभी अश्रुधारा बहती रहती, जिसे गेंदा गमछे से बराबर पोंछती रहती थी।

भागीरथ का प्राण जिस कठिनाई से निकला, उसका विवरण और चित्र गेंदा अपने जीवन भर न भूल सकी। भागीरथ के मरने के दूसरे दिन ही कोठरी का सब सामान निकाला गया; जिसमें अधिकतर घाट पर दान मिली हुई चीजें थीं, जैसे छाता, गमछा, पंचपात्र, लोटा आदि और टीन के कनस्टर में पैसे भरे थे।

भोला ने सब हिसाब जोड़कर बैठाया था। बेचने पर सात आठ सौ रुपये गेंदा को मिल जायँगे। भोला ने ऐसी तरकीब से चाल चली कि गेंदा को सब सामान लेकर अपने घर जाना ही पड़ा। वह बार बार भोला से कहती रही कि जमीन खोदकर देखना है; लेकिन भोला ने कहा कि तुम जानती हो कि भागीरथ भैया कितने बड़े कंजूस थे, वह भला गाड़कर रख सकते थे? इस तरह उलटी सीधी सब बातें बनाकर भोला ने गेंदा को वहाँ

से विदा किया ! भागीरथ की प्रेतात्मा के भय ने ही गेंदा को जो कुछ मिला, उसे लेकर जाने के लिए बाध्य किया ।

गेंदा अपने घर जाकर भी शांति से नहीं रह सकी । उसकी आँखों के संमुख जितने भी रोगी के कारुणिक चित्र समा गये थे, उनमें सबसे भीषण भागीरथ के शव को नहलाते समय पीठ के भयानक घाव थे ।

(४)

भोला ने रात में कोठरी के अनेक स्थानों को खोदकर गड़ी हुई चीजें निकालीं । वहाँ स्वर्ण के आभूषण और गिन्नी इत्यादि भी मिली थीं । अपने गमछे में सब कुछ बाँधकर वह चुपचाप ताला बंद कर अपने घर चला गया । रातभर यही सोचता रहा कि संभवतः बहुत सामान और कहीं गड़ा हो, जिसका पता उसे नहीं लगा ।

भागीरथ के दसवाँ के पहले ही भोला ने उस कोठरी की समस्त भूमि खोद डाली थी और कहीं कही दीवार पर भी रम्मा चलाया था, लेकिन फिर उसे कुछ प्राप्त हुआ नहीं । भोला ने जो अनुमान लगाया था, उसमें दस की पुड़िया मजे में बन जायगी ।

तेरहवाँ के दिन सब कृत्य समाप्त कर भोला के जीवन का काया पलट हुआ । उसकी घुटी हुई आकृति शीशे में स्वयं उसे विशेष प्रिय लगी ।

दिन-पर-दिन बीतने लगे ।

भोला के सूखे जीवन की डाल पर हरी पत्तियाँ लहराने लगीं । पुष्ट भोजन के पदार्थों ने भोला के शरीर में नवजीवन का संदेश दिया । और एक दिन अनायास वर्षों की पूर्व परिचिता भक्ता उसके मंदिर के द्वार पर आई । बहुत देर तक बातें हुईं । पति के देहांत के बाद वह अनाथ हो गई है । भोला को उसके प्रति सहानुभूति हुई, अपनी ही जाति की होने के कारण सहायता की भावना जागृत हुई । भोला ने खुलकर उसे मंदिर में ही रहने का आमंत्रण दिया । दूसरे दिन सबेरे ही वह अपना पुराना संदूक लिये भोला के यहाँ आ गई ।

पड़ोस की स्त्रियों में भोला के भाग्य का वर्णन सर्वत्र होने लगा । कुछ रसिक व्यक्तियों ने भोला की सराहना भी की, लेकिन भोला को किसी का भय नहीं था । वह चैन की वंशी बजाने लगा । भागीरथ के आदेशानुसार उसने कुछ न किया था । न तो हजार रुपये घाटियों को वितरित किये गये

और न क्रिया कर्म में ही विशेष खर्च हुआ। भोला ने सब रुपया बचा लिया। केवल दस ब्राह्मणों को खिलाकर रास्ता साफ किया। भागीरथ कोई देखने को आता नहीं है !

अब मंदिर में कीर्तन और कथा भी होने लगी।

भोला के जीवन की इस परिवर्तन का प्रभाव लछमीना के ऊपर विपरीत ही पड़ा। उसका विश्वास था कि भोला धोखा खायेगा और अंत में हाथ मलकर पछतायेगा।

और हुआ भी ऐसा ही। एक दिन भोला की रखी सभी पूँजी जब वह लेकर चलती बनी, तब भोला को चारों ओर अंधकार दिखाई पड़ने लगा। धन जैसे आया, वैसे ही चला भी गया।

भोला अपनी मूर्खता पर स्वयं पश्चात्ताप करता। किसी से कहने पर वह हँसी का कारण बनता, अतएव मौन ही रहकर इस व्यथा को वह पीता रहता था।

एक दिन समाचार मिलने पर वह गेंदा को देखने गया था। उसका अंतिम समय था। भोला को देखते ही उसने अपने समीप बुलाया। भोला उसकी खाट के पास बैठा था। गेंदा ने एक विचित्र आकृति बनाकर भोला से कहा—देखो, भैया, यहाँ ही गड़ा है, इसे निकाल लेना, किसी को बताना नहीं···

भोला को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन बाद में यह रहस्य उसकी समझ में आया कि गेंदा का मस्तिष्क विकृत हो गया था और सबसे वह यही कहती कि देखो, यहीं सब गड़ा है, निकाल लेना···

गेंदा का अंत भी दुखदायी ही हुआ। भाई और बहिन को धोखा देकर भोला की आत्मा शांति नहीं पा सकी। उसकी आत्मग्लानि ने वैराग्य का वास्तविक रूप धारण किया। संसार का यथार्थ तत्व भोला की आँखों के संमुख आया। जीवन से कोई ममता नहीं रही। उसका शरीर शिथिल होता गया।

भोला के बाद तो उसका दाह कर्म करनेवाला भी कोई नहीं, और धन भी नहीं, फिर पूछेगा कौन ?

भोला ने संन्यास ले लिया। अब उसे क्रिया कर्म की चिंता से छुटकारा मिला। दंड कमंडल लेकर भोला बाबा ने संन्यासी का रूप धारण किया।

भोला की परलोक यात्रा की योजना पूर्ण होते ही शरीर से उसका प्राण भी विलग हो गया।

शंख और घंटा बजाकर गंगा तट पर उसका शव गया। चंदे से एक पत्थर का टाँका आया; इसी में भोला बाबा का शव रखा गया।

बड़ी बहू ने भोला के अंतिम संस्कार के लिए पैसों से हाथ नहीं खींचा था, लेकिन उन्हें इस बात का पश्चाताप था कि शव के लिए पत्थर का टाँका छोटा था और प्रबंधकर्ताओं की संकुचित मनोवृत्ति का परिणाम था।

लछमीना की आँखों में वह दृश्य चढ़ा हुआ था, जिस समय टाँके में ठूस ठाँसकर शव भरा गया और अंत में गर्दन चाँपकर पत्थर से ढँक दिया गया।

मंदिर में अब घंटा नहीं बजता। फिर भी बालकों का दल कभी कभी आकर मंदिर के सामने पुकारता है—भोले बाबा!

लेकिन उन्हें कोई उत्तर नहीं मिलता है।

महाबली

चाँदपुर गाँव से एक बहुत बड़े जंगल का मार्ग जाता है । यही कारण है कि कभी कभी जंगली भालू, शेर, चीता आदि भटके हुए जंतु गाँव पर आक्रमण कर बैठते थे । गाँव की सरहद पर जहाँसे जंगल में प्रवेश करनेकी पगडंडी बनी हुई है—वहाँ बड़ा ही भयानक स्थान है । सात पीपल के वृक्ष आमने सामने घिरे हुए हैं । इस चौड़े मैदान पर प्रकृति ने स्वयं खेमा गाड़ दिया है । थके हुए पक्षियों के लिए वह निश्चय ही विश्राम का स्थान है, किंतु भय से वहाँ कोई मनुष्य नहीं ठहर सकता ।

पीपल के वृक्षों में सैकड़ों मिट्टी की हँड़ियाँ और घड़े लटक रहे थे । पेड़ों के समीप कुछ विकराल पत्थर की मूर्तियाँ पड़ी थीं । दूर दूर से ओझा भूत, प्रेत की व्याधि से ग्रस्त स्त्री पुरुष को लेकर वहाँ आते । हाँड़ी में भरकर मदिरा रख दी जाती और अपने आप समाप्त हो जाती । लोग वहाँ खूब पीते खाते और गाते नाचते व्याधिग्रस्त का विलक्षण खेल दिखलाते ।

उसी स्थान पर एक समाधि थी, जो अत्यंत रहस्यपूर्ण समझी जाती थी । उसमें से आवाज सुनाई पड़ती थी । कोई ताल ठोंककर ललकारता था । इस समाधि के संबंध में बहुत सी कथाएँ प्रचलित हैं, लेकिन चाँदपुर के लोग उनका यथार्थ वर्णन करते हैं ।

चाँदपुर का जमींदार राजा की भाँति राज्य करता था । ६ फुट से अधिक लंबा उसका शरीर था । देखने में वह दैत्य की भाँति था । उसकी लंबी मूछें और लाल आँखें बड़ी डरावनी मालूम पड़ती थीं । कर्मचारी अथवा असामी उसके सामने थर थर काँपा करते थे । उसका नाम महाबली था ।

महाबली अपने बल के लिए विख्यात था । उसके तगड़े जवान सिपाही उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे । किसी में साहस नहीं था जो उसकी बात का विरोध कर सके ।

गाँव के मध्य में उसका कोट था । यह एक देहाती महल की भाँति था । उसमें चारों ओर बाग लगा था । हाथी, घोड़ा, बैल, नौकर चाकर सभी के

लिए उनका निश्चित स्थान बना था, जो आवश्यकता पड़ने पर उसके संकेत पर काम करते थे।

कोट के दालान में उसका दरबार लगता था। एक ऊँची गद्देदार चौकी पर मसनद के सहारे वह गुड़गुड़ी पीता रहता। दस गज लंबा सटक मुँह में लगाये वह बातें करता था।

जब वह कोई नवीन कार्य करता तो रिआया पर कर लगा देता। जैसे हाथी खरीदना होता तो हथिऔनी लगती। नाच कराता तो नचौनी लगती। इस तरह जब भी वह कोई कार्य करता तो कर का रूप भी उसके साथ बन जाता था। गाँव भर संमिलित होता और महाबली के चरणों पर रुपये बरस उठते थे। उसके आतंक से सब त्रस्त थे।

एक वर्ष फसल मारी गई थी। गाँव में अकाल पड़ा हुआ था। मनुष्य भूखों मर रहे थे। ऐसे समय में भी महाबली का अत्याचार चलता रहा। उसे तनिक भी दया ममता न थी। वह लोहे और पत्थर की बुनियाद से बना था। भूखे बच्चे और औरत उसके कोट के सामने घिरे रहते, लेकिन उन्हें कोड़े से पिटवाकर वह दूर कर देता था।

सोना, चाँदी, जवाहरात और अनाज से उसका भंडार भरा हुआ था, लेकिन उसमें से वह एक कण भी नहीं निकालना चाहता था। गाँव की समस्त भूमि उसकी थी। जो जोतता उसे आधा मिलता। उस आधे में भी अनेकों कर लगाकर उसे भी वह समाप्त कर देता था। किसान सदैव भूखे और असंतुष्ट रहते, किंतु महाबली का सामना करने का उनमें साहस नहीं था।

गाँवभर में एक तेजा ही ऐसा था जो महाबली की आँखों में गड़ा था। उसका खेत बेदखल करके भी महाबली को संतोष नहीं हुआ था। उसकी गाय, भैंस भी नीलाम कराकर वह किसी तरह का आश्रय उसके लिए नहीं छोड़ना चाहता था। सब कुछ चले जाने पर भी तेजा महाबली के सामने झुकना नहीं चाहता था। उसे अपने शरीर और परिश्रम का भरोसा था। गाँव के सभी लोग उसके साहस से परिचित थे। कितनी बार केवल लाठी से उसने चीते को निर्जीव कर डाला था।

महाबली ने जिस दिन उसे 'सूअर का बच्चा' कहकर पुकारा था, उसके बाद फिर उसने उसका सामना नहीं किया था। उसके मन में भयानक आग

सुलग रही थी। शिकारियों के इनाम और जंगल की छानबीन से ही उसकी जीविका चलती रही।

महाबली के अत्याचार ने विद्रोह का वातावरण खड़ा कर दिया। तेजा अगुआ बना। गुप्तरूप से सब निश्चित हो गया था। रात को हमला हुआ। चारों ओर से महाबली का कोट घिर गया।

भीतर महाबली को उठाते हुए तेजा ने आवाज दी—ठाकुर, लाठी लेकर सामने आओ।

महाबली चकित होकर देखने लगा। क्षणभर में खूँटी पर टँगी हुई तलवार खींचकर वह वार करने लगा। तेजा के तीसरे वार में महाबली की तलवार हाथ से छूट पड़ी। तेजा ने तलवार हाथ में लेकर महाबली के पेट में भोंक दी। महाबली के शरीर से रक्त की धारा बह रही थी। तेजा ने उसके पेट की अँतड़ियाँ तक बाहर निकाल दी थीं।

महाबली का प्राण पखेरू उड़ गया। उसकी सब धन संपत्ति उसी रात लुट गई। आसपास के गाँव के ठाकुरों ने मिलकर बदला लिया। तेजा उसी पीपल के वृक्ष की छाया में अपने साथियों के साथ था। गोलियों की वर्षा हुई। उसी में कितनों के साथ तेजा भी मारा गया।

गाँव के अहीरों ने तेजा की समाधि बनाई।

आज तक तेजा की समाधि से जो ललकार सुनाई पड़ती है उसे बड़े बड़े नगरों के महाबली नहीं सुन पाते। केवल गाँव के लोग ही सुनकर उसे भूत प्रेतों का चीत्कार समझते हैं।

———

मान का प्रश्न

बचपन खेलता हुआ चला गया। जवानी इठलाती हुई आ रही थी। नस नस में यौवन विद्युत का संचार हो रहा था। सुभद्रा ने एक बार सुख की अँगड़ाई ली वह बड़ी मधुर प्रतीत हुई। उसने आँखें खोलकर देखा—प्रकृति मुस्कुरा रही थी। गंभीर होकर सुना—प्रेम कुछ संदेश दे रहा था।

दोपहर का समय था। वर्षा हो चुकी थी। शनिवार—बड़ा सुहावना दिन था; वह अपने पति की प्रतीक्षा में थी।

सिद्धेश्वर प्रति शनिवार को आते, रविवार बिताकर चले जाते थे। यही उनका एक नियम सा हो गया था। गाँव में घर होने के कारण नित्य शहर जाना उनके लिए कठिन था। वह स्कूल में पढ़ाते थे। उनकी अवस्था पैंतीस वर्ष के लगभग होगी। यह उनका दूसरा विवाह था।

वह मन ही मन कुछ विचार कर रही थी। गाड़ी का समय हो गया था। रसोई घर में भोजन बना रही थी। दिन भर में यही समय उसे एकांत और अवकाश का मिलता था। वह भोजन बनाते समय ही प्रायः अपने हृदय की बातों पर विचार करती। विचार करते करते वह ऐसी बेसुध हो जाती कि कभी कभी तवे की रोटियाँ जल जाती थीं।

आज उसका हृदय जोश में था। विचारधाराएँ, समुद्र की उत्ताल तरंगों की भाँति, आकाश से टकराने का प्रयत्न करती हुई लौट आती थीं।

ठीक समय पर सिद्धेश्वर घर आये। संध्या ढल चुकी थी। देखा, घर में सब प्रसन्न हैं। आते ही माता पंखा झलने लगी, छोटा भाई बातें करने लगा। सुभद्रा हाथ मुँह धोने के लिये पानी और अँगौछा रख गई। छोटी बहू पान बनाने लगी। एक पूरी गृहस्थी उनकी सेवा में प्रस्तुत थी।

उन्होंने ध्यान से देखा—सुभद्रा का घूँघट में छिपा हुआ सौंदर्य—जैसे सुंदर गुलाब के गुच्छे को आबरवाँ के रूमाल से ढँक दिया हो! देखकर उन्हें अपने जीवन पर तरस आया। उनमें अब वह उत्साह न रहा।

पहले विवाह के समय उनका हृदय ही दूसरा था। अपनी पत्नी के देहांत के पश्चात् उन्होंने दूसरा विवाह न करने का निश्चय कर लिया था।

किंतु घर वालों के कहने पर, और जीवन को सुखी बनाने के उद्देश्य से, उन्हें दूसरा विवाह करना ही पड़ा।

सुभद्रा से विवाह हुए और अभी छः मास ही बीते होंगे। इस बीच में वह सुभद्रा से जी खोलकर बातें भी न कर सके थे। घर पर, सप्ताह में एक दो दिन छोड़कर, रहते ही कहाँ थे ?

भोजन इत्यादि करने पर सिद्धेश्वर अपनी कोठरी में चले गये। पानी बरस रहा था। गाँव में उन्हीं का मकान दोमंजिला था ! उसमें शहर के ढंग के कमरे, खिड़कियाँ और आलमारियाँ बनी थीं। यह सब उनके पिता के पुरुषार्थ का फल था। कुछ जमींदारी भी थी। छोटे भाई महेश्वर घर ही का काम काज सँभालते थे। कारण, वह विशेष पढ़े लिखे न थे।

सिद्धेश्वर अपने साथ अँगरेजी का एक अखबार लाये थे। उसे पढ़ने लगे। सुभद्रा घर के कामों से निवृत्त होकर आई। सिद्धेश्वर ने अखबार से दृष्टि हटाकर देखा—सुभद्रा चुपचाप खड़ी थी। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—आओ, बैठ जाओ !

क्या पढ़ रहे हैं ?

अखबार।

मुझे भी पढ़ना सिखला दीजिये।

पढ़कर क्या करोगी ?

आपके पास चिट्ठी लिखा करूँगी।

वह बैठ गई। सिद्धेश्वर ने खिड़की से देखा—बादलों में छिपी हुई चाँदनी सुबह की सफेदी सी जान पड़ती थी; किंतु रात अभी दो ही घड़ी बीती थी। लैंप के प्रकाश में सुभद्रा के पतले ओठों पर पान की लाली साफ दिखाई देती थी।

दोनों एक दूसरे को देखने लगे—सुभद्रा ने कहा, आप सब को एक साथ ही क्यों नहीं रखते ? यहाँ गाँव में मन नहीं लगता।

शहर का खर्च बहुत है। वहाँ सबको कैसे ले चलूँ ? और फिर, माँ को वहाँ आराम भी न मिलेगा। गाँव के लोगों को शहर नहीं पसंद है, और शहर के लोगों को ग्राम्य जीवन नहीं अच्छा लगता।

तो आप मुझे ही अपने साथ रक्खें।

यह कैसे हो सकता है ? मैं जानता हूँ कि तुम शहर के वायुमंडल में पली हो। किंतु क्या किया जा सकता है; घर में सबको बुरा लगेगा।

सुभद्रा चुप हो गई। सिद्धेश्वर ने फिर कहा—मैंने अपने जीवन को सुखी बनाने के उद्देश्य से तुम्हारे साथ विवाह किया था, किंतु अब देखता हूँ कि वह मेरा भ्रम था। वास्तव में मैंने तुम्हारे सुख को मिट्टी में मिला दिया।

आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

और क्या सुभद्रे ! मैं तुम्हें पूर्ण रूप से प्रसन्न नहीं रख सकता। जब तुम्हें ध्यान से देखता हूँ, तो अपने जीवन की बहुत घटनाओं का स्मरण हो आता है।

सुभद्रा ने फिर कुछ न कहा। उसने अपने जीवन के परिवर्तन पर एक दृष्टि डाली। बाल्य जीवन अत्यंत मनोरम प्रतीत हुआ। घर पर माँ उसे एक भी काम न करने देती थी। किंतु विवाह होने पर पूर्ण गृहस्थी का भार उसे सँभालना पड़ रहा था; क्योंकि छोटी बहू प्रायः बीमार ही रहती।

सुभद्रा ने सोचा कि उसका सुख स्वप्न संपत्ति की तरह लुप्त हो गया। विवाह के पूर्व उसने अपने भविष्य की—अपने पति के संबंध की—अनेक कल्पनाएँ की थीं; किंतु आज उनमें से एक भी प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं देती। उसने पति का जो काल्पनिक चित्र अपने अंतरपट पर अंकित किया था, वास्तव में सिद्धेश्वर वैसे नहीं थे। उसे चाहिये था—प्रेम का कोई उन्मत्त भ्रमर; तभी वह अपनी प्रेम-तृष्णा को बुझा सकती थी। फिर भी, सिद्धेश्वर को पाकर ही, वह अपने को संतुष्ट रखने की चेष्टा करती थी।

उसने धीमे स्वर से पूछा—पैर दबा दूँ ?

सिद्धेश्वर ने कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा।

वह पैर दबाने लगी। रात अधिक हो गई थी। कुछ देर में लोग स्वप्नों के देश में भ्रमण करने लगे। रजनी निशाकर से किलोल करने लगी। प्रकृति शांत होकर देखने लगी।

(२)

दिन दुखदायी होने लगे।

वर्षाऋतु में, मार्ग की असुविधा के कारण सिद्धेश्वर प्रायः घर आते

सुभद्रा दिन रात घर के काम काज में काट देती थी। गाँव में बीमारी फैली थी। सिद्धेश्वरी की माँ भी बीमार पड़ी। समाचार सुनकर सिद्धेश्वर को आना पड़ा। दैवयोग से उनपर भी बीमारी ने आक्रमण किया। माँ की अवस्था सुधर गई; उनकी बीमारी बढ़ने लगी। वह स्वयं अपने जीवन से निराश हो गये। गाँव में रोज दो चार मौतें हो रही थीं।

रात्रि का समय था। सुभद्रा दवा दे रही थी। उनकी आँखें बन्द थीं। सुभद्रा ने जगाया। उन्होंने अधखुली आँखों से देखा, ध्यान से देखते रहे। सुभद्रा ने दवा के गिलास की ओर संकेत किया। उन्होंने धीमे स्वर से कहा—मैं अब न बचूँगा; मुझे विश्वास है—आज मेरा अंतिम दिवस है सुभद्रा !

सुभद्रा की आँखें बरसने लगीं। उसने धैर्य देते हुए कहा—आप ऐसा न सोचें, बहुत जल्द अच्छे हो जायँगे।

नहीं सुभद्रा, मुझे अपने कथन पर विश्वास है। उस जन्म में जो किया था, उसका फल भोग रहा हूँ—जीवन भर अशांति में था। अब इस जन्म के कर्म को लेकर जा रहा हूँ। मेरे बाद मेरा मान बचाना। और तुमसे क्या कहूँ। मेरे कारण तुम्हारा जीवन नष्ट हो गया। ईश्वर तुम्हें शांति दें।

इतना कहकर उन्होंने सदा के लिए आँखें बंद कर लीं।

अभी रात का ही समय था। सन्नाटा शासन कर रहा था। मृतक की क्रिया बाकी थी। गाँव में हाहाकार मच रहा था। भयानक दृश्य था।

ऐसे समय में सिद्धेश्वर का शव लेकर श्मशान जाना बड़े साहस का काम था। किसी की हिम्मत न होती। कई बार बुलाने पर भी कोई न आया। अंत में महेश्वर कुछ लोगों को बुला लाये। शव लेकर चले। नदी तट पर देहाती श्मशान था। एक तो बरसात की गीली लकड़ी, दूसरे—मेघों की निरंतर झड़ी, तीसरे—हैजे के प्रकोप से श्मशान की भयंकरता ! चिता में आग लगाकर जल्दी जल्दी लोग चल देते।

स्त्रियों के साथ सुभद्रा भी उसी समय नदी तक स्नान करने गई। उसकी आँखें मेघों से होड़ लगाये हुई थीं। बिजली तड़पती थी आकाश में और गिरती थी उसके हृदय पर। उसने बिजली कौंधने पर एक बार देखा—मुर्दों को कुत्ते और सियार घसीट रहे हैं ! वह सिहर उठी। उसका सारा शरीर थरथर काँपने लगा।

रिमझिम बूँदों के साथ हवा छेड़खानियाँ कर रही थी। एकाएक सिद्धेश्वर की नई चिता अंतिम बार धधककर बुझ गई। सुभद्रा उस प्रकाश को देखकर चौंक पड़ी और चीख मारकर रो उठी। अरे अभी तो सारा जीवन रोने को पड़ा था!

न जाने कौन, नदी के उस पार कुछ दूरी पर, गा रहा था—ऊधो! मन की मन ही माँहि रही!

(३)

समय की गोद में कई मास खेल गये।

सुभद्रा जैसे दूसरे संसार में चली आई हो। वह बड़े कौतूहल से अपने जीवन के परिवर्तन को देख रही थी। न उसके हाथों में चूड़ी, न मस्तक में रोली, न अधरों में तांबूल राग! पर सचमुच यह सब कुछ न होने पर भी उसकी जवानी फटी पड़ती थी, सौंदर्य उमड़ा आ रहा था!

सुभद्रा ने देखा, घर के लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं—उसके प्रति किसी की सहानुभूति नहीं। पड़ोस की स्त्रियाँ कहतीं—जब से आई, घर का नाश हो गया। गाँव के लोग कहते—रूपवती युवती विधवा शत्रु-रूप है!

विचित्र परिस्थिति थी! एक वृद्धा ने प्रस्ताव किया कि सुभद्रा के केश कटा देने चाहिये! यह सब सुन सुनकर बेचारी सुभद्रा बार बार अपने जीवन को धिक्कारती। सोचती—पूर्व जन्म का कर्मफल भोग रही हूँ।

दिन किसी तरह बीतते रहे।

नित्य नवीन कष्ट आने जाने लगे। घर में कलह भी बढ़ता ही गया। वह एकांत में बैठकर अश्रुपात करती। जब बीती बातों पर ध्यान जाता, तो हृदय की धड़कन बढ़ने लगती। अंत में विचारशून्य होकर मरने के लिये तैयार हो जाती; किंतु तत्काल ही अपने को सँभालकर सचेत हो जाती।

संसार परिवर्तन से खेल रहा था।

अभागी हिंदू अबला—सुभद्रा—अपने भविष्य पर विचार कर रही है। चंद्रमा को देखती है, देखकर फिर देखती है! जी नहीं भरता। उसने हँस दिया। जीवन भी हँस पड़ा। संतोष की किरणें आकाश पर बिखर गईं।

रजनी की निस्तब्धता क्षितिज से किसी को अपनी ओर खींच रही थी। तारे टूट रहे थे। वह खिड़की पर थी। कोई भूली बात याद आ गई, सोचने लगी। तब तक कानों में एक हलकी गूँज दौड़ गई। ध्यान से सुना, कोई अलाप ले रहा है! धीरे धीरे स्पष्ट होकर वह स्वर सुनाई दिया—यह ऋतु रूठ रहन की नाहीं!

गायक की ओर ध्यान जाता है। मन ही मन विचार करती है—चंद्रधर बड़ा विचित्र जीव है। सदैव मलार ही गाता है, जीवन के भयंकर दिनों में भी मलार ही! न जाने उसके हृदय में किस आनंदवीणा के तार बजते रहते हैं!

सुभद्रा, चिक की तीलियाँ तोड़कर—उसी में से, कई बार चंद्रधर की मस्ती के ढंग देख चुकी थी। वह सामने के चबूतरे पर बैठकर भंग घोंटता था; फक्कड़ था ही, रुपये पैसे की परवा न थी। तो भी सदैव प्रसन्न रहता। अपने रंग में मस्त इधर उधर इठलाता फिरता। बरसाती संध्या की गहरी लाल किरणों को बादलों पर घूमते हुए खूब देखता। रजनी जब निशाकर से क्रीड़ा करती, तब हृदय खोलकर गाने लगता। गाते गाते उन्मत्त हो जाता। आँखों से आँसू उमड़ने लगते। यही उसका वशीकरण था।

एक दिन चिक उठी रह जाने के कारण, उसने सुभद्रा के अल्हड़ यौवन को खूब देखा! सुभद्रा अनमनी सी होकर जैसे उसे अपने को दिखा रही थी—सहसा दृष्टि फेर कर देखा, आँखें चार हो गईं। फिर, क्षण भर में ही गंभीर बनकर आकाश की ओर देखने लगी। चंद्रधर के हृदयाकाश में बिजली दौड़ गई

श्रावण का सोमवार था—प्रदोष का व्रत। सुभद्रा पास ही के शिव मंदिर में दर्शन करने गई। संध्या बीत रही थी। साथ में एक महरी थी। शिव दर्शन करके उसने एक बार सर्चलाइट वाली आँखों से देखा—चंद्रधर पास ही के एक घने पेड़ के नीचे चुप खड़ा था। उसकी मस्ती मानों शिथिल सी हो गई थी! वह किसी विचारधारा में बेसुध बहा जा रहा था।

❀ * ❀

इस बार गाँव में फिर बीमारी फैली; किंतु अगले वर्ष की भाँति नहीं। फिर भी कई आदमी मर चुके थे। महेश्वर अपनी स्त्री को लेकर ससुराल चले गये थे। अपनी सास के साथ सुभद्रा ही घर में रह गई थी। अवसर

मिलने से भावुकता बढ़ने लगी। जब गाँव भर में हाहाकार हो रहा था, तब वह प्रेम की उपासना कर रही थी।

आज भोर से ही बड़ी बेचैन थी। रह रह कर हृदय दलक उठता था। आधी रात को उसने देखा—सास सो रही थी। चुपचाप धीरे धीरे, द्वार के पास आई। बार बार रुक कर धीरे से द्वार खोला; बड़े साहस से पैरों को चौखट के बाहर रक्खा। सीधे मंदिर तक पहुँच कर दूर पर खड़ी हो गई। किसी की कराहने की ध्वनि आ रही थी। वह भय से रोमांचित हो उठी।

आहट पाकर चंद्रधर ने बड़े धीमे स्वर में कराहते हुए पूछा, कौन है?

वह बोली मैं हूँ।

चंद्रधर सोचने लगा।

सुभद्रा उसका स्वर पहचान गई। पूछा—कैसी तबियत है?

अच्छी नहीं है। भला इस समय तुम यहाँ कहाँ?

यों ही आ गई; अब जाती हूँ।

चंद्रधर ने जैसे एक सपना देखा!

सुभद्रा आगे बढ़ कर एक पक्के कुएँ पर बैठ गई। एक साथ अनेक विचारधाराएँ उसे बहा ले चलीं। उसने लंबी साँस खींच कर एक बार आकाश की ओर देखा—चंद्रदेव की शुभ्र कांति क्षीण हो गई। वह बार बार यही सोचती—उन्होंने कहा था मेरा मान बचाना!

उसका हृदय असीम आकांक्षा के साथ उदासीनता की नींद से चौंक उठा। उसने हल्की साँस भर कर कहा—अवश्य मानूँगी!

हृदय ने घबरा कर पूछा—फिर क्या उपाय है?

उसने मन-ही-मन कहा—अब मेरे लिये संसार में कहीं स्थान नहीं है। इस जीवन से छुटकारा पा जाने में ही सुख है।

जैसे अपनी मनोवृत्तियों पर से उसका विश्वास उठ रहा था। छलकता हुआ यौवन बार बार उसका मुँह जोहता था। उसने झुक कर बड़े साहस से कुएँ में देखा। चारों तरफ सायँ सायँ हो रहा था। लालसाएँ उसे पीछे ढकेलना चाहती थीं। किंतु निराशा और ग्लानि उसे आगे ठेल रही थीं।

क्षण भर में सब साहस बटोर कर सहसा वह कूद पड़ी! जोरों से धमाके का शब्द हुआ। कोई उसे सुन न सका। स्वर्ग में बैठे सिद्धेश्वर भी न देख सके कि उसके अंतिम शब्दों का उसने कहाँ तक पालन किया!

(५)

रजनी अपने आँचल से प्रकाश को छिपाये बैठी थी। चाँद को बादलों ने कारावास में डाल दिया था। प्रभात की सफेदी बड़ी उत्सुकता से झाँक रही थी। पाँच बज चुके थे। चंद्रधर का ज्वर उतर गया था। उसे बड़ी प्यास लगी; किंतु पानी पिलाने वाला कोई न था! उसने छलछलाई आँखों से लोटा-डोरी की ओर देखा। फिर कुँए से पानी लेने के लिए चल पड़ा।

कुएँ में रस्सी डाल कर कई बार पानी निकालने का प्रयत्न किया; किंतु लोटे में पानी भरता ही न था! उसने बड़े आश्चर्य से देखा—कुएँ में एक शव पड़ा था!

हाथ से रस्सी छूट गई! रोंगटे खड़े हो गये। आवाज दी, लोग जुट पड़े। शव निकाला गया।

चंद्रधर अभी तक प्यासा बैठा था। शव देखते ही उसकी आँखों के सामने अंधकार छा गया। वह थरथरा कर उठा और सम्हलते सम्हलते प्यासा ही चला गया!

मोह

रम्मू तीन वर्ष का हो चुका था। अब वह अपनी तोतली भाषा में कुछ बोल भी सकता था। बूढ़े बिहारीलाल को उससे बड़ा स्नेह था। रम्मू भी उन्हें अपना खिलौना समझता था। प्रातःकाल उठते ही रम्मू बिहारी के कमरे का द्वार लटखटा कर कहता—बाबा, ऊतो!

रम्मू की पुकार से बिहारीलाल को उठना ही पड़ता था।

(२)

बिहारीलाल ने सरकारी नौकरी में ही अपने सिर के बाल पका दिए थे। इस समय उनकी अवस्था ६० वर्ष की थी। नौकरी से पेंशन लेकर वह अपने जीवन का शेष समय, रम्मू के पिता के मकान में किराये पर एक कमरा लेकर, व्यतीत कर रहे थे। रम्मू का उनका दिन रात का साथ था।

रम्मू अक्सर बिहारीलाल की पीठ पर सवार होकर बाजार घूमने जाता। बूढ़े के बिना न रम्मू को चैन और न रम्मू के बिना बूढ़े को।

रम्मू बिहारीलाल की बहुत सी चीजें नष्ट कर देता। उसने उनकी बहुत सी पुस्तकों पर पेंसिल से चिह्न बना बना कर रँग डाला था, उनके कमरे की दीवारों पर सैकड़ों रंगीन लकीरों से चित्रकारी कर दी थी; किंतु बिहारी लाल कुछ न कहते थे। रम्मू की इन क्रियाओं में बाल्य-कला-कुशलता देख कर वह मन ही मन मुस्कराते थे।

जब कभी रम्मू की माँ उसे मारती, वह रोता हुआ बिहारीलाल के पास जा पहुँचता। वह उन्हें ही अपने दुख सुख का साथी समझता था।

बिहारीलाल के कोई संतान न थी—पर, रम्मू के क्रीड़ा कौतुक में तन मन की सुध भूल जाने से उन्हें यह अभाव कभो खला नहीं। रम्मू को देखते ही वह कभी कभी कह बैठते—देखो, वह स्वर्ग का हँसता हुआ खिलौना मेरे पास आ रहा है।

(३)

रम्मू अब पाँच वर्ष का हो गया था।

एक दिन रम्मू की माँ और बिहारीलाल की स्त्री में खटपट हो गई। बात यहाँ तक बढ़ गई कि रम्मू के पिता ने बिहारीलाल को मकान छोड़ देने के लिये कह दिया।

बिहारीलाल बड़े संकट में पड़े। वे सोचते—हाय, मेरा कलरवमय सुखमय बसेरा अब किस पाप से छूट रहा है भगवन् !

पर उनकी स्त्री मकान छोड़ देने की शपथ खा चुकी थी। संध्या का समय था। बिहारीलाल अपने कमरे में उदास बैठे थे। रम्मू ने कहा—बाबा, क्या करते हो ?

कुछ नहीं रम्मू, अब तो तुम्हारा साथ छूट जायगा !

क्यों ?

तुम्हारे पिता की आज्ञा है कि मकान छोड़ दो।

तो अब कहाँ जाओगे बाबा ?

जहाँ ईश्वर ले जायगा बच्चा !

(४)

ठीक उसी समय रम्मू की माँ ने उसे पुकारा।

अपनी माँ की तीव्र ध्वनि से रम्मू समझ गया कि मुझसे कोई ऐसा अपराध हो गया है, जिसके दंड के लिये अम्मा बुला रही हैं।

डरते डरते वह माँ के पास पहुँचा। पीठ पर एक धमाका लगाते हुए माँ ने कहा—उस बुड्ढे के यहाँ मज जाया कर !

बालक ने सिसकते हुए पूछा—क्यों अम्मा ?

मैं कहती हूँ।

बाबा बड़े अच्छे हैं, बाबूजी उनको क्यों निकाल रहे हैं ?

एक बार कह दिया—अब बाबा के यहाँ जाओगे तो मार खाओगे।

रम्मू की समझ में कुछ न आया। मार खाने के भय से वह आगे कुछ न पूछ सका।

बिहारीलाल के कानों में ये बातें पड़ गईं। उनके नयनों की निर्झरिणी बह चली।

उनकी स्त्री ने कहा—देखा, बच्चे का क्या दोष था जो उसे मारा। हम लोगों के कारण ही तो उसे मार खानी पड़ी ! अब कल ही मकान छोड़ दो !'

बिहारीलाल मन ही मन सोचने लगे—यदि आज ईश्वर ने मुझे भी एक प्यारा बच्चा दिया होता तो उस पर मेरा पूर्ण अधिकार होता। रम्मू दूसरे का

बालक है, उस पर मेरा क्या चारा ? हाय, रम्मू का साथ तो छूट जायगा, अब बाबा कह कर मुझे कौन पुकारेगा ? अब मेरी आँखों की ज्योति किसे देख कर दुगुनी होगी ! मेरे तन मन किसे देख कर खिलेंगे !

* * *

बिहारीलाल ने वह मकान छोड़ दिया।

कई दिन तक दूसरे मकान में रहे, किंतु उस मकान की दीवारों पर न तो रम्मू के हाथ की रंगीन लकीरें थीं और न कोई स्वर्गीय कलरव। हाँ, कमरे के नीरस निस्तब्धता में कभी कभी उनके आँसुओं का उज्ज्वल कंपन मोतियों की तरह चमकता हुआ दिखलाई पड़ता था।

अंत में वह शहर छोड़कर चले गये। उन्होंने कहा—यहाँ रहूँगा तो रम्मू के देखने की इच्छा को न रोक सकूँगा। यहाँ न रहूँगा तो फिर क्या ? कुछ शांति अवश्य मिलेगी।

(५)

बहुत समय बीत गया। अब बिहारीलाल का समय ईश्वर की आराधना में ही लगता था।

* * *

हरिहरक्षेत्र का मेला था। बिहारीलाल स्नान करके हरिहरनाथ महादेव के दर्शन करने जा रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि एक तरफ को चली गई। उन्होंने देखा—यह क्या ! रम्मू की तरह एक बालक कुछ दूर पर खड़ा दिखाई पड़ा !! उनकी आँखों की तृष्णा बढ़ गई। वह खड़े खड़े कुछ सोचने लगे। क्षण भर बाद उन्होंने वहीं से कुछ सुंदर खिलौने खरीदे।

रम्मू का किशोर स्वरूप उन्हें और भी आकर्षक प्रतीत हुआ। बड़े साहस से वह उसके सामने आकर खड़े हो गए, और खिलौने देते हुए कहा—अच्छे हो बच्चा ?

वह विस्मित नयनों से उनकी ओर देखने लगा। उसकी आँखों में जिज्ञासा मँडराने लगी।

मैंने आपको नहीं पहचाना, आप कौन हैं ?—कहते हुए वह आगे बढ़ा।

बिहारीलाल कुछ उत्तर न दे सके, उनके हाथों से खिलौने छूटकर गिर पड़े !

———

रंगीन रातें

अपनी अत्यंत जवानी में हम दोनों ने एक बड़ी विचित्र प्रतिज्ञा की थी दो में से किसी एक के मरने के बाद, एक जशन होगा जिसमें नगर की प्रमुख गायिकायें नृत्य और संगीत में भाग लेंगी और, दौर चलता रहेगा। पीते पीते जब जमीन और आसमान एक हो जायगा और पूर्व दिशा जब रक्तावर्ण हो उठेगी तब जम्हाइयों के साथ मंडली विसर्जित होगी।

हम दोनों के साक्षी थे शुद्धानंद जो अवस्था में हम दोनों से लगभग पचीस वर्ष पहले ही दुनियाँ में पदार्पण कर चुके थे। उस समय इस बात पर ध्यान नहीं था कि शुद्धानंद हम लोगों से पहले चले जायगें अथवा हम में से एक।

यह प्रतिज्ञा एक ऐसे अवसर पर हुई थी जो आज भी धुंधली आँखों में प्रत्यक्ष बन कर समा गई है।

उस समय काशी नगरी की विख्यात गायिका, प्रतिष्ठित नहीं कहूँगा क्योंकि संभवतः हमारे सम्मानित कलाकार अपने नाम के साथ जुड़े हुए शब्द को किसी वेश्या के नाम के साथ लगा देख कर चौंकेंगे। लेकिन केवल विख्यात से ही उसका परिचय पूर्ण नहीं होगा। खैर शब्दों को छोड़िये घटनाओं पर आइये।

हाँ, बाई जी के यहाँ श्री सत्यदेव की कथा की योजना थी। कथावाचक थे पंडित शुद्धानंद जी। वह नगर में बहुतों के मंत्रदाता अथवा गुरू थे, किंतु विशेष रूप से वेश्याओं के समाज में उनका अत्यधिक आदर था। उनका व्यक्तित्व भी अपना निजीपन लिए हुए था। शुद्ध आचरण, मस्तक पर त्रिपुड, आँखों में चश्मा और लंबी शिखा कथावाचक जी की विशेषता अपने आप प्रकट कर रही थी।

प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर घड़ी घंटा और शंख ध्वनि के पश्चात् अल्हड़ अठखेलियों के अट्टहास को भी अवसर मिल जाता था। इस सचित्र जमघट में श्री सत्यदेव की कथा बड़ी आकर्षक प्रतीत हो रही थी। सब ध्यान लगा कर सुन रहे थे। हम दोनों को भी कथावाचक के निकट ही

स्थान मिला था। क्योंकि उनके आग्रह पर ही हम दोनों भी संमिलित हुए थे।

कथा समाप्त हुई। कपूर की आरती होकर चरणामृत और प्रसाद बट रहा था। कथावाचक सब के बीच में घिरे हुए थे। कोई दिल्लगी कर रहा था, कोई कुरता पकड़ कर खींच रहा था, लेकिन इस परिस्थिति में वह झिड़कते, हँसते और बातें करते जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि इस छेड़ छाड़ के वह अभ्यस्त हो गए हैं।

दूसरे कमरे में ढोलक मजीरे की गति चल रही थी। शुद्धानंद बीच में मसनद के सहारे बैठाये गये थे और हम दोनों भी उनके बगल में बैठाये गये। रंग विरंगी साड़ियों से कमरा जगमगा रहा था। मेरे ऊपर जब सभी थिरकनेवालियों की दृष्टि एक साथ पड़ती तो ऐसा प्रतीत होता कि जैसे किसी पहाड़ी स्थान पर वर्षा की बूँदें थपेड़ा मार रही हैं।

मेरे हृदय में बिजली चमक रही थी। मैं उर्वशी और मेनका की वंशावली की किसी पीढ़ी के संमुख बैठा हूँ यही अटकल लग रहा था। जीवन कितना रसीला है मनुष्य तो सुख उपयोग के लिए ही उत्पन्न किया गया है। वे अभागे हैं जो आकर्षण की कसौटी पर न घिसे गये हों। आयु की जितनी घड़ियाँ समय के पर्दे में छिपकर अठखेलियाँ खेलें वे ही मधुर हैं, सुंदर हैं और सुखद हैं।

कथा के बाद इस घरेलू संगीत का आयोजन बड़ा मनमोहक था। ताक धिनाधिन और सारंगी के स्वर में चलनेवाली गायिकायें ताली मजीरा और ढोलक को अपनाये बैठी थीं। किसी ने पहली कड़ी आरंभ की बलमुआ घर नहीं आये मोर, उमरिया सारी बीती जाय। सब ने मिलकर उसे पहाड़े की तरह दुहराया। उनका उखड़ा स्वर बता रहा था कि ताल पर थिरकनेवाली घरेलू संगीत में अभ्यस्त नहीं हैं। फिर भी इस नवीनता का खेल उन्हें शोभा दे रहा था।

कुछ समय बाद मोहनी मूरतें खिसकने लगीं क्योंकि बार बार उन्हें अपने डेरे पर प्रतीक्षा करनेवालों का ध्यान अनमना बना देता था। उनके साथ ही जमघट का भी अंत हुआ।

शुद्धानंद को अनेकों आग्रह के मध्य में रोक रखना मेरा ही काम था।

अब कमरे में हम तीन और सामने बाई जी बैठी थीं। मसनद के पीछे झोले में व्हिस्की और पोर्ट की बोतलें रखी थीं!

मेरे मित्र ने कहा—अब निकालते क्यों नहीं?

संकेत पाकर चार शीशे के ग्लास सामने आये।

शुद्धानंद ने कहा—मैं नहीं पीऊँगा।

मैंने कहा—यहाँ कोई देखता तो है नहीं फिर आपस में बनने से क्या फायदा बाबा।

लेकिन उनका स्वभाव था कि नहीं नहीं करते ही ग्लास उठाते थे।

दौर चलने लगा। स्वर में आवेग ने अपना स्थान बनाया। मनोरंजन और मजाक के बाद जीवन दर्शन पर चर्चा छिड़ी। भाग्यवादी, निराशावादी और आनंदवादी सूत्रों की व्याख्या हुई। शुद्धानंद संस्कृत के विद्वान थे अतएव अनेकों उद्धरण उन्होंने संमुख रखे। अंत में तत्व यही निकला कि खाओ पीयो, मस्त रहो। इससे अधिक जिंदगी का कोई उपयोग नहीं है।

और उस अंतिम दौर के साथ हम दोनों ने वह प्रतिज्ञा की थी।

रात में तीन पहर बीत चुके थे। बाजार में अब भी चहल पहल थी। बहुत से डेरे बढ़ चुके थे और साजिंदे तमोली की दूकान पर बैठे मुजरों का अपना हिसाब लगा रहे थे।

हम तीनों एक दूसरे के सहारे उखड़े पैर जमाने की सावधानी सम्हालते बाजार में आ पहुँचे थे। भादों का महीना था चाँदनी के प्रकाश में बूँदा बूँदी करके बादल छूट रहे थे।

और उस चिरस्मरणीय रंगीन रात के साथ हम तीनों अलग हुए थे।

(२)

पैंतिस वर्ष बाद।

भाई······

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने पूछा है कि क्या वह प्रतिज्ञा भूल गये या याद है क्योंकि नशे की बहुत सी बातें आदमी भूल जाता है। तुम्हें स्मरण दिलाऊँ कि उस रंगीन रात को शुद्धानंद बाबा के सम्मुख हम दोनों ने एक

दूसरे से निश्चय किया था कि यदि हम दोनों में से एक उठ जायगा तो उसका अंत कैसे मनाया जायगा।

तुमने यह भी लिखा कि मैं संपन्न हूँ और मेरे पास उस जशन करने के साधन भी हैं।

आज तुम्हारा पत्र पाकर पूर्वकाल के जीवन के सजीव चित्र आँखों के सम्मुख अंकित हो उठे हैं। तब से कितना परिवर्तन हो चुका है। उस साम्राज्यवादी युग से जनतांत्रिक युग में पहुँच कर हम भाग्यशाली हैं या अभागे यही बात मेरी समझ में नहीं आ रही है।

कौन संपन्न है और किसके पास साधन है यह तो तुम ही भली भाँति जानते हो। जब बड़े बड़े रूलिंग चीफों का तख्ता उलट गया तो मेरी बात ही क्या ?

तुम्हारा यह व्यंग बड़ा रूखा सा प्रतीत होता है। और तुम्हारे इन व्यंगों के कारण ही युगों तक पत्र व्यवहार शिथिल हो जाता है। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम दिल में कुछ न रख कर साफ साफ लिख देते हो। तुम्हारी इसी विशेषता के अवलंब पर हम दोनों की अभिन्नता की कड़ी आज तक टूटी नहीं।

इस जीवन के बहुतेरे साथी एक एक कर चले गये। हम दोनों अभी तक जीवित हैं यही विधाता का वरदान है। उस प्रतिज्ञा में आनंदवाद का संपूर्ण दर्शन निहित है और मरने के बाद भी गम से दूर रहने का लक्ष्य है। लेकिन अब मेरे बूढ़े मन में उल्लास की तरंगें कहाँ विलीन हो गई नहीं जानता। अनुभव की अवस्था मनुष्य में घोर परिवर्तन कर देती है।

एक पेट से निकले हुए दो भाई तथा पिता पुत्र आपस में आर्थिक प्रश्नों द्वारा कटुता बढ़ाकर घृणा के वातावरण का सृजन करते हैं। जिस प्रेमिका के लिये जीवन उत्सर्ग करने की लालसा समाई रहती है उसका मुँह न देखने की भावना का जीवन पथ में कितने मील के पत्थरों को पीछे छोड़ कर आगे आने पर पता लगता है। यह सब रहस्य बनकर मानव जीवन को उलझाये रहता है।

कब क्या होगा कोई नहीं जानता। सब कुछ विधाता के ऊपर छोड़कर अपना कर्तव्य करते रहना यही एक उपाय ठीक जँचता है।

जशन में पैसों के प्रश्न से अधिक हृदय का संबंध है और कम से कम मैं तुम्हारे चले जाने पर खुशियाँ नहीं मना सकता यह निश्चित है। इसलिये

इस प्रतिज्ञा का अब कोई अस्तित्व नहीं रहा यह निश्चित है। रही तुम्हारी बात वह तुम्हीं जानो। बस।

तुम्हारा

....

(३)

भाई.........

तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। तुमने संसार की नश्वरता पर जो विस्तृत विवरण दिया है वह मैं भी समझता हूँ। कल्पना की बहुत सी बातें वास्तविक रूप में जटिल नहीं हो पातीं। उस रावन वीर की बात छोड़ो जिसने रात भर सुंदरियों के साथ नृत्य और मदिरा से मदहोश होकर अपने जीवन का उत्सर्ग किया था।

तुमने शुद्धानंद बाबा का हाल पूछा है। वह एक बड़ी कारुणिक कहानी है। उनके स्वभाव से तो तुम भलीभाँति परिचित थे। उनके ऐसा जिंदादिल आदमी बिरला ही कोई हो। मैंने तो अपने जीवन में उनके जैसा अन्य व्यक्ति नहीं देखा।

अपनी जिंदगी के आखरी कुछ महीनों में उनकी परिस्थितियाँ अत्यंत विकट हो उठी थीं। तुम जानते हो कि उनके खर्च की व्यवस्था गायिकाओं द्वारा होती थी। वेश्यावृत्ति निर्मूल करनेवाले कानून ने गणिकाओं के साथ जैसे उन पर भी प्रहार किया। क्योंकि जब वेश्या का व्यवसाय ही लुक छिप कर होने लगा तो उन्हें कहाँ से प्राप्त होता।

दूसरी बात यह थी कि वह चवन्नी भर अफीम प्रति दिन खाते थे। अफीम पर कड़े प्रतिबंध ने उन्हें विक्षिप्त कर दिया था। वह विकल होकर प्रलाप करते और उनकी बातें सुनकर उनके प्रति सभी की सहानुभूति जागरित हो उठी थी। लेकिन कानून के बंधन को कोई भी क्या कर सकता था। उनका कहना था कि इस जनतांत्रिक शासन में धनियों के लिये सभी द्वार खुले हैं; लेकिन मरण तो निर्धनों का ही है और उन्हीं के लिये यह कानून का बंधन बनाया गया है।

मेरी भेंट उनसे अंतिम बार एक इत्रवाले की दूकान पर हुई थी। वह अपने अभाव की गाथा विस्तृत रूप से सुना रहे थे। सुननेवाले मन में यही कहते कि इतने अभाव के बाद भी मुश्क का इत्र उनके लिये कैसे आवश्यक

हो सकता है, लेकिन मैं उनकी मनोवृत्ति और रहन सहन से पूर्ण परिचित होने के कारण सब समझता था। कितनी रंगीन रातें उनके साथ बाजार में कटी थीं।

चलते समय उन्होंने कहा था कि अब जिंदगी पहाड़ हो गई है काटते नहीं कटती, भगवान बुला लेते तो बड़ा अच्छा होता और उसी के एक महीने के बाद सुना कि बात करते वह चल बसे थे।

मेरा हाल यह है कि तुम्हारी तरह अब मैं भी एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ और रात सोते समय यही वंदना करता हूँ कि प्रभो तुम्हारी माया कुछ समझ में नहीं आती तुम्हीं जानो और सुबह नींद खुलने पर फिर नया दिन आरंभ होता है।

रहस्य

मैंने कहा—प्रिये !

उसने कहा—प्राण !

मैंने कहा—मनुष्य संपूर्ण विश्व को हथेली में रखकर मसल देने की कामना रखते हुए भी, मृत्यु से पराजित हो जाता है। भयभीत हो उठता है। सभी जानते हैं कि एक-न-एक दिन उसके शिकंजे में जकड़कर कहीं जाना होगा। कहाँ जाना होगा, यह कोई नहीं बता सकता !

उसने कहा—सृष्टि के सुकुमार खिलौने जब हँसते, बोलते चल बसते हैं तब कैसा अनहोना सा मालूम पड़ता है। प्रकृति एकाग्र होकर देखने लगती है। सब सूनसान। कहीं कुछ नहीं। यह संसार स्वप्न चित्रों का अलबम !······

मैंने कहा—मेरा भी अंत होगा और एक दिन ऐसे ही, पता नहीं कैसे मौन होकर मैं पलकें बंद कर लूँगा।

उसने कहा—मृत्यु की सत्यता की पुकार के साथ भगवान के नाम की सत्यता बड़ी करुण मालूम पड़ती है।

मैंने कहा—जीवन में इतनी ममता क्यों ? प्रतिक्षण इसे मिटाने के लिये बैठा हुआ 'मैं' इतना बिचलित क्यों होता हूँ कुछ समझ में नहीं आता।

उसने कहा—समझकर क्या होगा ? दो घड़ियों के इस क्षणभंगुर जीवन का जो होना होगा सो होगा, व्यर्थ इसकी चिंता क्यों ?

मैंने कहा—बड़ी विचित्र समस्या है।

उसने कहा—हटाओ, इन बातों को, जरा हँसो तो। सब समस्या हल हो जायगी।

मैंने कहा—कैसे ?

वह खिलखिला पड़ी।

मैं भी अपनी हँसी रोक न सका··· !

———

रधिया

पूस का जाड़ा था। चारों ओर अंधकार! कुहरे के धूमिल परदे में आकाश छिपा हुआ था। गंगा के उस पार बादलों का एक देश दिखलाई देता था। चंद्रदेव रजनी के स्नेहांचल में दुबककर सो रहे थे।

गंगा तट पर वृक्षों के नीचे सैकड़ों भिखारी ठिठुरकर गठरी बने हुए पड़े थे। उनमें कोई लँगड़ा था, कोई लूला। कोई अंधा था तो कोई एकदम हाथ पाँव से हीन। कोई सरदी से खाँस रहा था और कोई दमे से बेहाल था। कोई ज्वराक्रांत था और कोई क्षुधार्त। कहीं से 'आह आह' सुनाई पड़ती थी, तो कहीं से चीत्कार और हाहाकार। यहाँ था दुःखमय संसार के सच्चे धनियों का दल!

तट के ऊपर अट्टालिकाएँ आकाश छू रही थीं, जिनमें सुखमय संसार के धनियों का दल आनंद कर रहा था। कहीं से सितार की मीठी झंकार आ रही थी, तो कहीं से पियानो और हारमोनियम की सुरीली तान। कहीं कहीं से वंशी की जादू भरी फूँक श्रोताओं के रोम रोम में गुदगुदी पैदा कर देती थी। इन वाद्य यंत्रों की स्वर लहरी में किसी के सुखमय अतीत का संगीत तरंगित हो रहा था, तो किसी की दर्द भरी आहें क्रंदन कर रही थीं।

वहीं एक वृद्धा स्त्री पेड़ के नीचे एक छोटी सी बालिका के साथ विश्राम कर रही थी। चिथड़े ही उसके ओढ़ने और बिछौने थे। वृद्धा अंधी थी, बालिका पर उसकी बड़ी ममता थी—वही उसके जीवन की 'हीरा मोती' थी।

वृद्धा ने कहा—रधिया, तुझे नींद नहीं आती क्या? जाड़ा लगता है; आ मेरे कलेजे से लगकर सो जा।

रधिया बोली—नहीं नानी! जाड़ा तो नहीं लगता। एक बात है, आज मुझे चार पैसे एक साथ ही मिल गये थे।

सो कैसे बच्ची?

आज एक राजा गंगा स्नान करने आए थे। उनके साथ रानी भी थीं। उनकी देह पर नाना प्रकार के रत्नजटित आभूषण जगमगा रहे थे। उन्हीं के नौकर ने मुझे चार पैसे दिए। अच्छा नानी एक बात बताओगी?

क्या बात है बेटी ?

रानी को इतना गहना कहाँ से मिला नानी ?

उन्हें ईश्वर ने दिया है बेटी।

तो ईश्वर हम लोगों को क्यों नहीं देता ?

ईश्वर गरीबों को नहीं देता ?

क्यों ?

इसलिये कि फिर तो संसार भर धनी हो जायगा। तब न गरीब रहेंगे और न दया परोपकार के पुण्यकर्म ही हो पाएँगे।

रधिया की समझ में कुछ न आया। वह बार बार यही सोचती थी कि रानी के हाथ का कड़ा कितना चमकता था।

वृद्धा ने कहा—बेटी, अब सो जा। बहुत रात बीत गई।

(२)

रधिया जब छः वर्ष की थी, तभी उसकी माँ इस कोलाहलमय संसार को छोड़कर चली गई थी। वृद्धा ने बड़ी बड़ी तकलीफें उठाकर उसे पाला पोसा और इतना बड़ा किया। जब वह भीख माँगने जाती, तो साथ में रधिया को भी ले जाती; रधिया अंधी के हाथ की लकड़ी थी। उसे पाकर बुढ़िया अपने को बहुत ही सुखी समझती थी।

इधर रधिया भी दिन-पर-दिन बढ़ रही थी।

× × × ×

वृद्धा का शरीर जर्जर हो गया था। अब वह भीख माँगने भी न जाती थी—चलने की सामर्थ्य न थी। रधिया जो कुछ माँगकर लाती, उसी में दोनों का निर्वाह होता था। वह बड़े प्रेम से नानी को दिन भर की कहानी सुनाती थी। एक बालक को जिस तरह अपने प्यारे खिलौने का मोह होता है, उससे कहीं अधिक रधिया को उस वृद्धा का मोह था।

(३)

बहुत समय बीत गया।

रधिया अब सयानी हो गई थी।

एक दिन उसने देखा—वृद्धा का शिथिल कंकाल ज्वर की भीषण ज्वाला से धधक रहा है। उसके रोम रोम से चिनगारियाँ निकल रही थीं। बेचारी रह रहकर कराह उठती थी।

रधिया ने कहा—नानी, यह बुखार तो चूल्हे की आँच से भी अधिक तेज होता जा रहा है। अच्छा, जाती हूँ। देखूँ जो दूध के लिये कहीं चार पैसे मिल जायँ।

रधिया दिन भर राह में भटकती रही। उसे कहीं कुछ न मिला।

उसे जो मिलता, कहता—छिः! इतनी बड़ी लड़की होकर भीख माँगती है। ईश्वर ने हाथ पैर दिए हैं, जा कहीं नौकरी कर ले।

अक्सर लोग दिल्लगी कर बैठते थे!

अंत में बेचारी मर्माहत होकर लौट आई। अब उसे भीख माँगने में संकोच होता था।

वृद्धा ने टूटे स्वर में कहा—बेटी, क्या मिला?

कुछ भी न मिला, नानी! लोग कहते हैं—इतनी बड़ी लड़की होकर भीख माँगती है! जा नौकरी कर ले।

वृद्धा ने आँखें बंद करते हुए कहा—हाँ बेटी, तू नौकरी कर। मैं भी जाती हूँ, मेरी नौकरी पूरी हो गई।

कहाँ नानी?

यहाँ की नौकरी से मन भर गया। वहाँ की नौकरी करने जाती हूँ।

रधिया की समझ में कुछ न आया।

उसने कई बार पूछा—कहाँ नानी? किंतु उसे कोई उत्तर न मिला।

रसिया

विधाता ने जिसे रूप दिया, धन दिया, घर गृहस्थी दी, वह भी यदि दुखी रहा करे तो फिर संसार में सुख की परिभाषा क्या है ?

मदन अनमना रहता है। उसका मन नहीं लगता। मानव जीवन में मन लगाने की सामग्री बड़ी मूल्यवान होती है। दिन भर परिश्रम करनेवाला साधारण मजदूर उसे खरीद भी नहीं सकता। वह उसके सामर्थ्य के बाहर की बात है, किंतु जिन्हें संसार में कोई काम नहीं है, जो केवल सुख की गोद में हँसने, बोलने और खेलने के लिए पैदा हुए हैं, उनके लिए मन न लगाना एक बड़ी भारी बात है। जब मन ही नहीं लगता तो इस जीवन से क्या लाभ ? यही प्रश्न बार बार आकर उन्हें खटखटा जाता है।

संपन्न पुरुष के लिये मनचाही नारी का अभाव ही मन न लगने की सबसे बड़ी पहेली बन जाती है। घर में अपनी पत्नी के होते हुए भी मदन अन्य स्त्रियों के प्रति तृषित नयनों से देखता है। उसकी प्यासी आकांक्षा अतृप्त ही रहती है।

अपने नगर में मनुष्य को लोकलज्जा का अधिक ध्यान रहता है, अतएव वर्ष में एक दो बार देश के प्रमुख नगरों का भ्रमण कर मदन स्वतंत्रतापूर्वक वेश्याओं का निरीक्षण करता, किंतु किसी को अपना बना लेने में जितना सुख है, वह इस तरह दर दर फिर कर कभी नहीं प्राप्त हो सकता ! अनुभव ने भली भाँति उसे यह समझा दिया था। यह सब समझते हुए भी वह विवश था। परिवार में बड़ों का भय और पत्नी के बंधन ने सब ओर से उसका मार्ग बंद कर दिया था। अब वह इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकता था ?

बी० ए० में दो बार फेल होने पर काशी जाकर अध्ययन करने का उसे अवसर मिला। पिता की स्वीकृति मिलने पर कुछ काल के लिए मुक्त छंद की गति की भाँति चलने के लिए वह स्वच्छंद हो गया। तीर्थस्थानों की कलुषित कथाएँ वह सुन चुका था। इसलिए प्रातःकाल और संध्या समय घाट और मंदिरों की यात्रा कर उसके जीवन में एक नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ। यही कारण था कि कालेज के छात्रावास में मदन को रहना पसंद नहीं था।

उसने नगर के मध्य में किराये पर एक मकान लिया था। पड़ोस भी गुलजार था। थोड़े ही समय में वह सब का परिचित बन गया। उसकी बैठक में काफी चहल पहल रहती। वहाँ शतरंज के खिलाड़ियों की चालें निर्जीव मोहरों को चलाने में व्यस्त रहतीं।

मदन का मन उस दिन खेल में नहीं लग रहा था। संध्या हो रही थी। किसी तरह वह बाजी समाप्त करना चाहता था। वह घाट पर जाने के लिये उतावला हो रहा था। कल उसने जो एक सजीव प्रतिमा देखी थी उसके संबंध में उसकी जिज्ञासा प्रबल हो उठी। अपनी ओर उसे कई बार देखने के प्रश्न ने कौतूहल उत्पन्न कर दिया था।

अंत में अधूरी बाजी छोड़कर ही वह उठ पड़ा।

(२)

बसंत का पवन उल्लास से भरा हुआ अपनी चंलल गति में बह रहा था।

गंगा तट पर कथा, कीर्तन और व्याख्यान का समारोह चल रहा था। अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोग उनमें संमिलित हो रहे थे।

दूसरी ओर नौका विहार का दृश्य था।

मदन इधर उधर भटक रहा था। उसने देखा एक स्थान पर पंजाबी ज्योतिषी बैठे हुए हैं, जो रमल फेंककर प्रश्नों का उत्तर देते हैं और भूत, भविष्य और वर्तमान हस्तरेखा द्वारा भी बतलाते हैं। मदन को इस पर विश्वास नहीं था, फिर भी मनोरंजन के लिए वह वहाँ खड़ा होकर देखने लगा।

ज्योतिषी ने उसे देखकर कहा—बच्चा तू बड़ा भाग्यवान है। तेरे मस्तक की रेखाएँ बड़ी उज्ज्वल हैं। कुछ पूछ तो बतलाऊँ ?

मदन ने हाथ सामने करते हुए कहा—बतलाइये, जो कुछ बतला सकते हों ?

ज्योतिषी ने हाथ की रेखाओं को देखकर कहा—आयु ३० वर्ष की है। माता, पिता जीवित हैं। दो संतान हैं, तीन और होंगी। पत्नी से बनती नहीं। धन का कभी अभाव न होगा। जिस स्त्री को प्राप्त करना चाहता है, वह मिलती नहीं ?

मदन ने उत्सुकता से पूछा—लेकिन महाराज, क्या जीवन में स्त्री सुख से वंचित रहूँगा ?'

ज्योतिषी ने कहा—विवाह तो एक ही लिखा है। इस संबंध में प्रयत्न करने पर असफलता ही मिलेगी।

दक्षिणा देकर मदन ने सोचा, ज्योतिषी ने बहुत कुछ बातें ठीक बतलाई हैं।

सहसा उसकी आँखें एक ओर स्थिर हो गईं। यह वही स्त्री है, जिसे वह खोज रहा था। उसकी सादगी पर वह मुग्ध था। शरीर पर एक भी आभूषण नहीं था। हाथ में एक झोला लिए और चप्पल पहने वह स्वतंत्रतापूर्वक अकेली आ रही थी।

मदन उसकी ओर एकटक देखता रहा। उसके इस तरह बार बार देखने की अशिष्टता ने ही उसे भी उसकी ओर देखने के लिए बाध्य किया। नारी, पुरुष की आँखों को खूब पहचानती है। मदन की भावनाओं की कालिमा उसकी आँखों से न छिप सकी। उसने देखा, मदन छाया की भाँति बराबर उसके साथ चल रहा है।

झुँझला कर वह घाट के एक तख्ते पर बैठ गई। मदन भी समीप में ही खड़ा था। बहुत देर तक उस पार की धुँधली हरियाली देखने में वह उलझी हुई थी, किंतु मदन भी वहाँ से हटा नहीं।

अस्ताचल से अपनी बिखरी लालिमा समेट कर जब दिनकर खिसक रहे थे, तब रमणी भी चुपचाप वहाँ से उठ कर जाने लगी। सीढ़ियाँ चढ़ कर गली की मोड़ पर जब वह पहुँची तो उसने देखा, मदन ने अभी तक उसका साथ नहीं छोड़ा था। वह एकांत स्थान में रुक गई। मदन सामने आ गया। उसने पूछा, आप क्या चाहते हैं जो इस तरह मेरे साथ लगे हुए हैं ?

आपकी दया ?

मेरी दया से भला आपको क्या लाभ होगा ?

मेरा जीवन सार्थक हो जायगा, सुंदरी।

सचमुच ?—कहते हुए रमणी ने मुस्करा दिया।

मदन खिल उठा।

अच्छा, आज चले जाइये। कल फिर उसी स्थान पर भेंट होगी। तब मैं अपने साथ ले चलूँगी।—कह कर रमणी चली गई।

(३)

रात के सन्नाटे में मदन अपने पलंग पर पड़ा हुआ कितने ही प्रश्नों में उलझा हुआ था। उस रमणी की उदारता पर उसे आश्चर्य था। उसकी कुलीनता में उसे शंका उत्पन्न हो रही थी। कारण, बाजार में बैठनेवाली पालतू पक्षियों के अतिरिक्त इतनी कुशलता से कौन बात कर सकता है ?

एक सभ्य परिवार में उत्पन्न स्त्री को इतना साहस कैसे हो सकता है ?

अपने तर्कों से ऊब कर मदन ने मन ही मन संतोष की साँस ली। उसने निश्चय किया कि वह चाहे जैसी भी हो, किंतु जीवन में सरसता का संचार करने में वह पर्याप्त है।

निद्रा ने थपकियाँ देकर सुलाया। सबेरे उठकर मदन ने अपने एक अंतरंग मित्र से सब कहानी कह सुनाई। मित्र को भी उसे देखने की उत्सुकता हुई। मदन यह नहीं चाहता था कि एक और साथी लेकर वह अपनी स्वतंत्रता में बाधा उपस्थित करे।

निश्चित समय पर मदन वहाँ पहुँचा। बहुत खोजने पर भी उस रमणी का दर्शन नहीं हुआ, किंतु मार्ग में मित्र से साक्षात् होने पर मदन उससे बातें करता हुआ आगे बढ़ा।

वह निराश होकर घर लौटने का विचार कर रहा था, उसी समय उसने देखा, पीपल के वृक्ष के नीचे वह खड़ी थी।

उसे देख कर मदन अपने साथी से अलग होकर साथ चलने का संकेत कर वहाँ पहुँचा।

मुझे कुछ विलंब हो गया क्या ?

मैं निराश हो रहा था।

नहीं जब बचन दे चुकी थी तो, ऐसा नहीं हो सकता था।

मेरा भाग्य है।—कहते हुए मदन बड़ी सरलता से उसकी ओर देख रहा था।

उसने अपने साथ चलने का संकेत किया। अनेक गलियों को पार करने के बाद रमणी ने एक मकान में प्रवेश करते हुए कहा—चले आइये, आप बड़े साहसी मालूम पड़ते हैं ?

गर्व से मस्तक ऊँचा करते हुए मदन ने देखा उसका साथी दूर पर खड़ा हो गया था। मदन ने घर में प्रवेश किया।

रमणी ने एक बार जोर से पुकारा।

मदन भयभीत होकर काँपने लगा। एक बलवान पुरुष हाथ में डंडा लिए हुए उतर पड़ा। बिना कुछ पूछे हुए ही सटासट प्रहार होने लगा।

असहाय मदन बड़े कातर स्वर में क्षमायाचना करने लगा।

रमणी की आकृति विलीन हो ही गई थी।

एक गहरी ठोकर खाकर मदन द्वार के बाहर आया। उसने सुना—ओ रसिया! तेरी रसिकता का यही उपहार है।

दूसरे दिन पड़ोस में रसिया की आप बीती किसी से छिपी नहीं रही।

रामजनी

देश में सुधार का युग था। समाज के प्रत्येक अंग में सुधारवाद की ध्वनि गूँज रही थी। ऐसे समय में विलासिता ऊँघती हुई अपने सुधार का स्वप्न देख रही थी। यौवन का उन्माद अपनी परिष्कृत आकृति बनाना चाहता था।

छिप कर किसी वेश्या गृह में घुसने से कहीं अच्छा है कि अपने को स्पष्ट कर दे। समाज में कुछ प्रगतिशील विचार का चलन हुआ। स्कूल और कालेज से हताश कितने विद्यार्थी इस विचारधारा के अग्रदूत बने। उनमें से अधिकांश डाक्टरों की सुई के शिकार हुए और कुछ विवाह के बंधन का प्रदर्शन करते हुए आदर्श का उदाहरण उपस्थित करने लगे।

गाँधी टोपी का सहारा लेते हुए, खद्दर के आवरण में निरंजन प्रतिदिन नगर की हाट में वारांगनाओं का अन्वेषण करने लगा। अर्थाभाव के कारण वाक्पटुता ही उसका धन बना। 'माता जी' और 'बहन जी' के संबोधनों को सफलता मिली। हाट में निरंजन परिचित सा प्रतीत होने लगा। वह जिस समय जहाँ चाहता चला जाता। रात पैसों के साथ सौंदर्य का फाटका खेलती। इसीलिए उसे दोपहर में अधिक सुविधा मिलती थी। वह खुलकर बातें कह सुन सकता था।

वेश्या जीवन के गूढ़ रहस्यों को समझने की उसकी प्रबल कामना थी। निरंजन अपने अगणित प्रश्नों को पहेली बनाकर रखता। वह इस पतित जीवन का लेखा एकत्रित करना चाहता था। निरंजन ने 'वारांगना' नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन करना भी निश्चित किया था। उसकी जिज्ञासा जीवन में प्रथम रात्रि के प्रथम पुरुष की ओर सदैव ही आकर्षित रहती थी; किंतु यथार्थ उत्तर न मिलने पर स्थिर न रहता। एक स्थान से दूसरे स्थान की परिक्रमा करता।

निरंजन की प्रतिष्ठा निरंतर घटने लगी। प्रायः सब उसे मुफ्तखोर और खोपड़ी चाटनेवाला ही मन में समझतीं। 'लेना देना कुछ नहीं व्यर्थ समय नष्ट करना' सबको पसंद नहीं था। केवल फोटो और आत्मकथा प्रकाशित

कर देने से ही उस समुदाय का संतोष न हो सकता था। निरंजन की योजना सफल नहीं हो रही थी। वह मन ही मन खीझ उठा था।

लाजवंती के प्रयत्न से एक धनी सज्जन द्वारा उसे कुछ आर्थिक सहायता भी मिली थी। निरंजन लाजवंती के व्यवहार पर मुग्ध था। उसे इस समाज की वही रानी प्रतीत होने लगी। नगर में उसका नाम अपरिचित नहीं था। निरंजन को एक सहारा मिला।

संध्या हो गयी थी। निरंजन जब लाजवंती के यहाँ पहुँचा तो उसने देखा, बड़े शीशे के सामने बैठी वह श्रृंगार कर रही थी। उसके लंबे केश उलझे हुए थे। काली आँखों की पुतलियों में आकर्षण भरा हुआ था। निरंजन को शीशे में उसकी आकृति बोलते हुए चित्र सी प्रतीत हुई। वह समीप ही जाकर बैठ गया।

लाजवंती ने पूछा—'कहिए, क्या समाचार है ?'

सब ठीक है। पत्रिका अब छपने के लिए देना चाहता हूँ। आपकी 'आप बीती' भी पहले अंक में प्रकाशित करूँगा।'

मैं लिखना क्या जानूँ ?'

जो कुछ भी लिख सकें, लिखिये—उसे शुद्ध कर लिया जायगा।

मेरा लिखना कठिन है आप जो चाहें लिख सकते हैं।

अच्छी बात है। —कहते हुए निरंजन ने अपने जेब से फाउंटेन पेन और नोटबुक निकाली।

निरंजन ने गंभीर होकर पूछा—अपने पहले प्रेमी की कहानी आरंभ कीजिए।

बीती बातों को स्मरण करते हुए रोमांच हो उठता है। उन बातों को जानने से किसी को क्या लाभ होगा ? नहीं जानती।

उससे समाज की आँखें खुल जायँगी।

समाज की आँखें हम लोगों के लिए कभी नहीं खुल सकतीं। जिस समाज में धोबिन और चमारिन भी झगड़ा करते समय कह बैठती हैं कि क्या रंडी पतुरिया समझ लिया है ? उस समाज में हमारा स्थान ही क्या है ?

प्राचीन काल से लेकर आज तक वह स्थान वैसा ही बना हुआ है। किसी के कहने से क्या होता है ?

निरंजन उसकी कहानी सुनने के लिए उत्सुक था। उसने कहा—'यथार्थ वर्णन ही जीवन का कठोर सत्य है। उसमें संकोच करना व्यर्थ है।

लाजवंती ने एक आह खींचते हुआ कहा—१० वर्ष पहले की बात है, उस समय मेरी अवस्था १३ वर्ष की थी। गान, नृत्य और भाव प्रदर्शन की मुझे शिक्षा मिल रही थी। अचानक एक धनी व्यापारी वज्र की तरह मेरे भाग्य पर टूट पड़ा। मुझे कुछ भी पता न था। वह बहुत देर तक मेरी माँ से बातें करता रहा। अंत में रात्रि के समय अपने कमरे में उसे देखकर मैं भयभीत हो उठी। उसने मुझे बहुत समझाया; लेकिन कमरे के बाहर आकर मैं रोने लगी। माँ ने डाटते हुए संकेत किया कि उसने पाँच सौ रुपये दिए हैं। इस तरह मूर्खता करना उचित नहीं।

निरंजन स्तब्ध होकर सुनता रहा।

लाजवंती ने फिर कहा—सुबह उठकर जब मैं माँ के सामने गयी तो उसकी आँखें नहीं उठती थीं। मैंने कहा—उसके मुँह से भयानक दुर्गंध आ रही थी, धत् माँ तू इतनी बड़ी चांडालिन है! यह मैं नहीं जानती थी।

उसने कहा—बेटी, रुपया ही तेरा पति, प्रेमी सब कुछ है। इसमें मेरा अपराध नहीं। यही हमारा लक्ष्य है।

लाजवंती की आँखें सजल हो उठी थीं। उसने अपना श्रृंगारदान बंद करते हुए कहा—अब इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहती।

बगल के कमरे से कुछ मिठाई लाकर निरंजन के सामने रखते हुए उसने मुस्कुरा कर कहा—पड़ोसी के यहाँ की है।

निरंजन ने खाते हुए मुस्कुराने का कारण पूछा, पर लाजवंती ने यह नहीं बतलाया कि प्रथम रात्रि के उत्सव के बैना में आयी हुई मिठाई कहानी की तरह स्पष्ट नहीं की जा सकती।

(२)

लाजवंती की स्पष्टवादिता से निरंजन प्रभावित हुआ। वह नियमित रूप से प्रतिदिन उसके यहाँ जाता। उसने अपना घरेलू व्यवहार बना लिया था। कभी लाजवंती को अवकाश न भी रहता तो वह घंटों बैठा पुस्तक पढ़ता अथवा ताश की गड्डी लेकर अकेला चानस लगाता।

उस दिन पड़ोस की सहेलियों के साथ बैठकर लाजवंती ताश खेल रही थी। निरंजन भी वहाँ पहुँचा। 'कोट पीस' से 'गन' का पत्ता बँटने लगा। खेल जम गया था, बीच में परिहास भी चलता रहा।

लाजवंती ने पानदान में से पान बनाकर निरंजन को दिया और खुद भी खाया।

निरंजन ने आश्चर्य से कहा—आपने इन लोगों को पान नहीं दिया।

ये लोग मेरे पानदान का पान नहीं खाती हैं। बाजार से मँगाया है।

क्या कारण है ?

जातिभेद है।

क्या आप लोगों में भी अनेक जातियाँ हैं ?

हम लोगों की दो जातियाँ हैं। एक रामजनी और दूसरी गंधर्व।

निरंजन ने लाजवंती से पूछा—'आप क्या हैं ?'

मैं रामजनी हूँ और ये लोग गंधर्व।

आपस में खान पान क्यों नहीं है ?

परंपरा और आडंबर, इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।

गंधर्व जाति का वर्णन तो प्राचीन पुस्तकों में मिलता है, लेकिन रामजनी का क्या अर्थ है ?

विशेष अर्थ तो मेरे मामा से पूछने पर मालूम होगा। इतना मैं जानती हूँ कि राम जाने कैसे जनमी ?

ताश का खेल शिथिल हो रहा था। दो एक 'गन' के खेल में अभ्यस्त नहीं थीं। खेल बंद हुआ।

निरंजन अपनी पत्रिका के लिये और प्रश्न करने लगा।

उसने पूछा—'इस जाति का इतिहास क्या है ?'

गंधर्व जातिवाली वेश्याओं में से एक बोली—हम लोग गंधर्वराज के वंश की हैं।

लाजवंती ने कहा—हम लोग भी उर्वशी और रंभा की संतान हैं। हमारी अप्सरा जाति है।

इस विवाद से निरंजन को विदित हुआ कि दोनों जातियों में अपने को एक दूसरे से उच्च समझने का अभिमान है।

सहसा निरंजन के मुँह से निकल पड़ा—समाज से अलग होकर भी जिनके समाज की रचना हुई है वे भी जाति का गर्व करें !

(३)

'वारांगना' पत्रिका के लिये निरंजन ने निरंतर परिश्रम किया किंतु अधिकांश लोगों का व्यंग्य और लेखकों का स्पष्ट सहयोग न मिलने के कारण उसका उत्साह शिथिल पड़ गया। बदनाम होकर भी कार्य सिद्ध न हुआ। निरंजन के मन में पश्चात्ताप का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ उपार्जन न करने के प्रश्न पर घर में भी झगड़ा हुआ करता था।

लाजवंती के यहाँ जब निरंजन पहुँचा तो उसने देखा कि कोलाहल मचा हुआ है और लाजवंती बैठी रो रही है।

निरंजन उसके समीप जाकर बैठ गया। उसे देख कर लाजवंती के रोने की गति और भी बढ़ गयी।

सभ्य और बहिष्कृत परिवार में द्वंद्व का रूप एक ही समान होता है। निरंजन यही सोच रहा था।

लाजवंती ने सिसकते हुए कहा—माँ, बहन और बेटी की कमाई खाकर भी ऐसे लोगों की आँखें चढ़ी रहती हैं। जब देखिये तब मिजाज ही बना रहता है।

निरंजन को आभास मिला कि लाजवंती और उसके भाई में झगड़ा हुआ है। उसने कहा—इससे लाभ क्या, अब और बात बढ़ाना ठीक नहीं।

लाजवंती ने उत्तेजित होकर कहा—यहाँ न जाने किस तरह से पैसा पैदा करना पड़ता है और उसे उड़ाकर लोग मजा करते हैं। कल रात में कई सौ रुपये गायब हो गये। उनके सिवाय कौन ले सकता है ?

रात अधिक बीत चुकी थी। द्वार बंद करने का समय हो गया था। निरंजन ने कहा—अब आज यहीं रह जाऊँगा। मेरे यहाँ भी इसी तरह का क्रम चल रहा है।

लाजवंती बगल के कमरे में चली गयी। निरंजन को एक तकिया और चादर प्राप्त हो गयी थी। उसने देखा कि लाजवंती अपने पलंग पर जाकर सो गयी। दोनों कमरे को अलग करनेवाला कपाट बंद नहीं हुआ था।

रात्रि का सन्नाटा निरंजन के कान में कुछ गुनगुना गया। उसके श्वाँस की गति तीव्र हुई। मस्तक में एक चक्र सा चल रहा था। वह उठा और

बगल के कमरे में गया। लंप का प्रकाश बढ़ा कर उसने देखा लाजवंती नींद में सो रही है।

वह देखता रहा। लाजवंती का संपूर्ण सौंदर्य उसे उन्मत्त बनाने में सहायक हो रहा था। सहसा उसका हाथ उसके मस्तक पर पड़ा। लाजवंती की आँखों ने उसकी आँखों की लाली देखते हुए कहा—यह क्या ?

निरंजन ने कुछ उत्तर न देकर अपना मस्तक उसके हृदय पर रख दिया।

लाजवंती चौंक कर उठी। उसने निरंजन को सावधान करते हुए कहा—अपना भाई तो धन नष्ट कर रहा है और आप धर्म के भाई, पता नहीं क्या चाहते हैं ?

निरंजन एक टक उसकी ओर देखता रहा। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था।

लाजवंती ने कहा—जाति पर गर्व करनेवाले सुधारवादी सभ्य समाज की प्रवृत्ति का पतन ठीक नहीं।

निरंजन चुपचाप वहाँ से खिसक गया। द्वार खोलकर बाहर आते हुए उसने देखा, रात्रि की कालिमा धुलकर प्रभात की सफेदी के साथ आकाश पर अंकित हो चुकी थी।

रूखा स्नेह

प्रभात का समय था। पूर्व दिशा में कुछ कुछ लाली छा रही थी। रसीले मलय पवन के आलिंगन से जूही की कलियाँ चिटक रही थीं; मीठी मीठी सुगंध चारों तरफ फैल रही थी। पक्षियों के कोलाहल से उपवन गूँज उठा था।

मैं बहुत देर से उस उपवन में पास की एक पत्थर की चट्टान पर बैठा हुआ दिनकर की लीला देख रहा था। मधुप फूलों का रस पान कर रहा था। सहसा एक तितली सेवती की डाल से उड़कर जूही की झाड़ी की तरफ गई। मेरी दृष्टि उसी के साथ घूमी। देखा—एक नवयुवती पुष्पों को एकत्र कर रही है। उसकी सुंदरता फूलों की अपेक्षा अधिक मनोरम थी। वह उम्र में लगभग १९ वर्ष की जान पड़ती थी। भ्रमर के समान उसके काले केश बड़ी निपुणता से बाँधे गये थे। गौर वर्ण था! मृग के समान नयन थे। मुख पर एक अद्भुत कान्ति थी। शरीर पर केवल एक सादी धोती थी। आभूषण एक भी न थे। पैर में एक मखमली चट्टी थी। एक हाथ में थाली लिए हुए वह फूल तोड़ रही थी।

मेरे नेत्र मुग्ध हो गए। मैं चकित होकर उसकी तरफ देखने लगा। मुझे यहाँ कई मास हो गये थे; किंतु उस नवयुवती को देखने का मेरा यह प्रथम अवसर था।

मैं एक देवी के समान उसकी आराधना करने लगा। नित्य प्रातःकाल मैं उस स्थान पर आकर बैठ जाता था, और तृषित नयनों से उसकी तरफ देखता था।

एक दिन, बहुत साहस करके मैं उस स्थान से उठा, और जूही की झाड़ी के समीप जाकर उस युवती से कहा—क्या इस झाड़ी से कुछ पुष्प मैं ले सकता हूँ?

एकाएक मुझे देखकर वह कुछ डर गई। उसके नेत्र चढ़ गये। उसने एक तीखी दृष्टि से मेरी तरफ देखते हुए कहा—यहाँ किसी के आने की

आज्ञा नहीं है। तुम यहाँ क्यों आये ? इस झाड़ी में से पुष्प नहीं मिल सकता।

मैं निराश होकर उलटे पाँव लौट रहा था। इतने में एक आवाज आई—मालती यहाँ आओ।

उस युवती ने कहा—क्या चाय तैयार हो गई ? अच्छा, अभी आती हूँ।

मुझे यह ज्ञात हो गया कि उसका नाम मालती है।

उस उपवन में एक अतीव सुंदर और बहुत बड़ा मकान था। वह गर्ल्स स्कूल का छात्रावास था। उसमें बहुत सी लड़कियाँ रहती थीं। मालती भी उसी में रहती थी।

मालती एक धनी की कन्या है। उसकी हर एक चीज से अमीरी टपकती थी। उसकी प्रत्येक बात में घमंड भरा था।

मैं चट्टान पर लौट आया और विचार करने लगा—देखो, कितनी सुंदर युवती है ! एक बार उसे देखकर ही कोई संसार का सब सुख त्याग कर उसे अपना जीवन समर्पित कर सकता है। किंतु; हाय ! उसका हृदय पत्थर है !

(२)

मेरे घर की अवस्था इतनी अच्छी न थी कि उससे मेरी पढ़ाई का खर्च निकलता ! मुझे स्वयं धन उपार्जित कर अपना काम चलाना पड़ता था। कुछ तो कालेज से मुझे छात्रवृत्ति मिलती थी, और कुछ मुझे लड़कों को पढ़ाकर मिल जाता था। इसी प्रकार अध्ययन करते करते मैं बी० ए० में पहुँचा, और यही मेरी अंतिम परीक्षा थी। कारण, धन के अभाव से आगे और अध्ययन करना कठिन था।

मैं अपना निर्वाह केवल दो खद्दर के कुरतों और दो धोतियों से कर लेता था। मुझे स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाना पड़ता था। सब प्रकार की चिंताओं ने तो मुझे घेर ही रक्खा था; किंतु उस दिन से मुझे मालती की एक नवीन चिंता लग गई। मैं जानता था कि मालती स्वप्न में भी मेरी तरफ न देखेगी; किंतु फिर भी मैं उसके लिए आहें भरता, अश्रुपात करता और कभी कभी व्याकुल हो जाता था।

नित्यप्रति मैं मालती के रूप रस का पान करने लगा। अब कभी कभी मालती भी मेरी तरफ दृष्टि फेर देती थी; किंतु वह दृष्टि प्रेम की नहीं होती थी—उसमें रूखापन भरा रहता था; पर मैं इतने ही को अपना सौभाग्य समझता था।

अब मेरा पढ़ने में तनिक भी मन न लगता था। पुस्तक खोलकर मैं पढ़ता, तो उसके प्रत्येक अक्षर में मुझे मालती की सूरत दिखाई पड़ती थी। इसी तरह मालती के ध्यान में मेरे दिन कटने लगे।

एक दिन गर्ल्स कालेज के वृद्ध चपरासी से मैंने मालती के संबंध में कुछ बातचीत की। उससे मालूम हुआ कि मालती बी० ए० में पढ़ती है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वृद्ध ने कहा—कालेज में मालती देवी का बड़ा मान है। वह एक धनी की कन्या हैं। सब अध्यापिकाएँ उनसे प्रेम करती हैं।

उस दिन से मेरा प्रेम और बढ़ने लगा!

परीक्षा का समय आ गया था। मेरा कालेज जाना भी एक तरह से छूट गया था। कभी जाता, कभी न जाता। प्रोफेसर लोग समझते कि शायद बीमार रहा करता है; क्योंकि मैं बहुत दुर्बल हो गया था।

* * *

दस बज चुका था। मैंने उन्मत्त की भाँति परीक्षा भवन में प्रवेश किया। देखा, सामने मालती बैठी थी। मेरी उसकी चार आँखें हुईं। वह मेरी तरफ देखकर विचार करने लगी। मैं अपने स्थान पर जाकर बैठ गया।

परीक्षा का पर्चा बँटा। मालती ने उसे बड़ी प्रसन्नता के साथ लिया। मुझे भी मिला। मैंने एक बार उस पेपर को बड़ी निराशा से देखा। मैं पहले ही से हताश था कि कुछ भी न लिख सकूँगा। मेरी दृष्टि मालती की तरफ थी। वह भी आज बार बार मेरी तरफ देखती थी। मैंने एकाध प्रश्न का उत्तर लिखा; बाकी यों ही छोड़ दिया।

परीक्षा का समय समाप्त हो गया। आखिरी घंटा बजा। मैं उठा। मालती भी उठी। सामने से मेरे एक अध्यापक ने पूछा—क्यों राजेंद्र, कैसा किया?

मैंने कहा—कुछ भी न लिखा, अबकी मैं निश्चय सफलता न प्राप्त कर सकूँगा।

फिर मैं मालती की ओर देखता रहा !

❀ ❀ ❀ ❀

परीक्षा अब पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी थी। अब केवल परीक्षा फल की प्रतीक्षा थी।

अब मैंने मालती में एक नई बात देखी—वह स्वतंत्र हो गई। उसके यहाँ उसके प्रोफेसर अभयकुमार आया करते थे। मालती बड़े प्रेम से उनसे हँस हँस कर बात करती थी। चलते समय उनसे हाथ मिलाती थी। प्रोफेसर साहब प्रति दिन उसके यहाँ आने लगे।

इसी तरह एक मास बीत गया।

(३)

वृक्षों की धूल झाड़कर शीतल समीर का एक झोंका चला गया—उन्हें धो पोंछ कर काली घटा चली गई। संध्या में निकलने वाले पहले तारे, दो चार, आकाश के अंचल में फूल के समान दिखलाने लगे थे। मैं टहल रहा था कि देखा—मालती आ रही है।

मैं खड़ा हो गया। वह अब मुझे एक परिचित की भाँति देखने लगी। उसने मुझे नमस्कार किया। मैंने भी उसे नमस्कार किया। मेरे जीवन में मुझे आज जैसी प्रसन्नता कभी न हुई होगी। उसके नेत्रों में क्षण भर के लिये मेरे प्रति अपार प्रेम अपनी झलक दिखलाकर लुप्त हो जाता। मेरी समझ में यह लीला न आती; मैं चुपचाप बैठकर यही विचार करता।

मालती वहाँ ठहर गई थी। उसने पूछा—कहिये, बी० ए० पास करने के बाद क्या निश्चय किया ? क्या एम ए० पढ़ियेगा ?

मेरा हृदय उमड़ रहा था ! इच्छा होती थी कि आज मालती से अपनी दुःखमय कहानी कह सुनाऊँ; किंतु दूसरी भावना कहती—अभी समय नहीं आया, ठहरो। फिर भी मैंने उससे कहा—मेरा जीवन बड़ा दुःखमय है। अब तक किसी प्रकार अपने जीवन का निर्वाह करते हुए अध्ययन करता रहा, अब आगे नहीं पढ़ूँगा। परंतु अभी तक यह नहीं स्थिर कर सका हूँ कि आगे किस प्रकार अपना जीवन काटूँगा।

मालती ने मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट की। फिर उसने कुछ न पूछा। चली गई।

कई दिन बीत गये।

उस दिन अखबार में बी० ए० का परीक्षाफल निकला। मैं बहुत व्याकुल होकर अपना नाम ढूँढ़ने लगा—शायद मैं उत्तीर्ण होऊँ। मालती का नाम मुझे द्वितीय श्रेणी में मिला। मेरा नाम ही न था। समझ गया कि मैं फैल हो गया।

मैं बहुत चिंतित हो गया। विचारने लगा कि अब क्या करूँ। अब मेरे लिए मार्ग ही न था। मेरे दुःख के काले बादल आकाश में मँडराने लगे। मैंने निश्चय किया कि अब नौकरी करूँगा!

किंतु आज कल के समय में नौकरी मिलना सहज नहीं है। मैं नित्य समाचार पत्र देखने लगा—शायद कहीं कोई नौकरी का विज्ञापन हो। एक दिन मैंने देखा—उसमें लिखा था आवश्यकता है गर्ल्स स्कूल के लिए क्लर्क की; वेतन योग्यतानुसार।

मैंने प्रधानाध्यापिका के पास अपना प्रार्थना पत्र भेज दिया। एक सप्ताह के पश्चात् मुझे यह उत्तर मिला—

आप हेड क्लर्क के स्थान पर नियुक्त किये गये। वेतन ६०) है। इसी सप्ताह से आपको काम करना पड़ेगा।

—सुभद्रा बाई; मालती देवी

मुझे आश्चर्य हुआ! एक बार दिल में सनसनी फैल गई। मालती का नाम मस्तिष्क में घूमने लगा। क्या वही मालती है?

परंतु मुझे अपनी अवस्था गुदगुदा रही थी। मैं अपनी सफलता पर प्रसन्न हो रहा था। मुझे विश्वास हो चला कि यह केवल मालती की कृपा का फल है। मैं मुग्ध होकर मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगा। पर क्या यह वही मालती है?

मुझे काम शुरू करने पर मालूम हुआ कि सचमुच वही मालती है। वह सहकारिणी अध्यापिका है!

मेरे काम से सब प्रसन्न थे। मुझे काम करते दो मास बीत गये। मालती की मुझपर अब विशेष कृपा रहती थी।

किंतु हाय मुझे मालती की स्वतंत्र चाल ढाल से बड़ी जलन होती थी—अब उसने अपने लिये अलग बंगला ले लिया था—स्वतंत्रतापूर्वक उसमें

रहती थी। अब वह स्वयं पुष्प नहीं तोड़ती; माली उसके लिए गुलदस्ता बनाता है! उसका कमरा अंगरेजी फैशन से सजा हुआ है। नौकर चाकर सभी हैं। एक तो वह धनी की कन्या थी ही, दूसरे अब उसे २००) महीना स्कूल से मिलता है। वह बड़े ठाट बाटसे रहती है।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रोफेसर अभयकुमार दर्शनशास्त्र के अध्यापक थे। वह नित्य प्रति मालती के यहाँ आते। दिन-पर-दिन मालती से उनकी घनिष्टता बढ़ती जाती। मैं जब कभी सायंकाल मालती के बँगले की तरफ से जाता, तो देखता कि प्रोफेसर साहब बैठे हैं। यही मेरे लिये बड़ी जलन की बात थी। मेरी आँखों में खून चढ़ जाता था। मैं यह बरदास्त नहीं कर सकता था। इससे मेरे हृदय पर एक ऐसा अघात हुआ कि मेरे शरीर की हालत बिगड़ती गई। मैं दिन रात चिंतित रहने लगा।

मैं कभी विचार करता—क्या इस संसार में केवल रुपये का ही सब खेल! इसी से मान है, इसीसे प्रतिष्ठा है। संसार के सब सुख इसी आश्रय में पनपते हैं। और, क्या इसी से प्रेम भी होता है? जिसे देखो, धन के लिये पागल रहता है! धन्य ईश्वर! तेरी लीला समझ में नहीं आती।

मेरे पास धनोपार्जन का और कोई साधन न था। केवल नौकरी करता और दो चार सूखी रोटियाँ खाकर दिन काटता। मुझे अपने जीवन से घृणा होने लगी। मैंने फिर एक बार निश्चित किया कि अब घर पर खूब अध्ययन करके पुनः बी० ए० की परीक्षा दूँगा।

आफिस का सब कार्य समाप्त करने के पश्चात् मुझे जितना समय मिलता, उसे मैं पठन पाठन में ही लगा देने लगा।

एक दिन मैं दफ्तर में बैठा कुछ लिख रहा था। उसी समय मालती देवी किसी काम से वहाँ आईं! बोलीं—आज कल तो आप बड़े कार्यव्यस्त रहते हैं।

मैंने रूखेपन से कहा—हाँ।

उन्होंने फिर कहा—अबकी आप घर पर अध्ययन करके परीक्षा क्यों नहीं दे देते?

मैंने कहा—कोशिश कर रहा हूँ।

मालती मेरी तरफ बहुत देर तक देखती रही। मैंने मस्तक नीचा कर लिया, और अपने काम में लग गया। बीच बीच में उसकी तरफ देखता भी जाता था। बहुत देर तक बेतार के तार की तरह हम दोनों में दिल की बातें होती रहीं। फिर उसने नमस्कार किया। वह चली गई।

कभी कभी मुझे मालती पर क्रोध आ जाता कि हाय! मैं तो इसके लिए अपनी जान तक दे सकता हूँ और यह मेरे प्रेम को कौड़ियों के मोल भी नहीं पूछती।

क्या संसार में धनी ही प्रेम करने का अधिकारी है—गरीब नहीं? क्या निर्धनों के पास हृदय नहीं होता? प्रेम का भिक्षुक भ्रमर अकिंचन है, काला होने की वजह से बदसूरत है; पर क्या कलिका उसके प्रेम को नहीं अपनाती? अवश्य अपनाती है। फिर, मालती ही मेरी ओर से रूखी क्यों रहती?

प्रोफेसर साहब की तरफ जब मेरा ध्यान जाता, तो मुझे विश्वास हो जाता कि मालती मुझे नहीं चाहती है।

मैं सोचने लगा—प्रोफेसर साहब तो सपत्नीक हैं। उनके एक छोटा सा लड़का भी है। फिर वह मालती से क्यों इतना अनुराग बढ़ा रहे हैं? उनका और मालती का प्रेम होना असंभव है।

\+ \+ \+ \+

प्रोफेसर साहब और मालती की बदनामी पूर्ण रूप से हो गई। जिसे देखो, वही उन दोनों के संबंध में बातचीत करता—यहाँ तक कि वह बुड्ढा चपरासी भी प्रोफेसर साहब की निंदा करता। गर्ल्स स्कूल की सब अध्यापिकाएँ और कालेज के प्रायः सभी लड़के और प्रोफेसर इस बात को जान गये।

मेरे हृदय में बड़ा कौतूहल हुआ। एक दिन दफ्तर के कुछ कागजात लेकर मैं मालती के बँगले पर गया। नौकर से कुछ देर तक बातचीत करने के बाद मैंने पूछा—क्यों जी, प्रोफेसर साहब तुम्हारी मालकिन से क्या बातें करते हैं?

उसने कहा—बाबू जी, उनकी बातें मेरी समझ में कुछ भी नहीं आतीं। रोज कई घंटे तक न जाने क्या गिटपिट करते हैं।

उस समय गुलदस्ते से सजी हुई मेज के पास बैठकर मालती और प्रोफेसर साहब बातें करते थे। मैं एक आड़ में खड़े होकर उनकी बातें गौर से सुनने लगा। प्रोफेसर साहब धीरे धीरे कह रहे थे - देखो, संसार में प्रेम सबसे बड़ा सुख है। जो वास्तविक प्रेम को जान जाता है, वह ईश्वर को पहचान जाता है। प्रेम अमर है, प्रेम ईश्वर है, प्रेम स्वर्ग है। प्रेम सब कुछ है।······

इतना वह कह ही रहे थे कि मालती ने पीछे की तरफ घूमकर मुझे एकाएक आड़ में छिपे हुए देख लिया। मैं वहाँ से चुपचाप चलता हुआ।

अब मालती का मेरा जब सामना होता, तो वह आँख बचा कर चल देती। मुझे शक हो गया कि नौकर से उसने पूछा और उसने सब बातें कह दी हैं।

इधर प्रोफेसर साहब का निकलना मुश्किल हो गया। जो उन्हें देखता, वही उन पर उँगली उठाता। मालती से उन्होंने अब मिलना तक छोड़ दिया। उनकी बदली हो गई। वह बंबई के एक कालेज में नियुक्त होकर चले गये।

* * *

मालती अब मुझसे साफ साफ घृणा करने लगी। मुझसे बात करना तो दूर, मेरी तरफ देखती तक नहीं। उसे विश्वास हो गया कि मैं उसकी बदनामी के षड्यंत्र में प्रधान कार्य करता था; किंतु वास्तव में ऐसा न था। मैंने आज तक किसी से इस विषय पर बात नहीं की।

मैं दिन रात उदास रहने लगा कि उसके इस विचार को किस प्रकार दूर करूँ। यदि उसने कहीं प्रधानाध्यापिका से मेरी कुछ भी निंदा कर दी, तो नौकरी चली जायगी।

मैं बड़ा विकल हुआ। किस तरह मैं मालती को सब बातें सुनाता—मेरे हृदय पर एक बड़ा सा बोझ पड़ गया। मुझसे अब दफ्तर का भी कुछ काम नहीं होता। शरीर प्रायः अस्वस्थ रहता।

एक दिन, मुझे जोरों से बुखार आ गया। मैं कई दिनों से अपने बिस्तर पर कराहता था। नौकरी छूटने के समाचार आफिस में विश्वस्त रूप से प्रकट किये जाने लगे।

एकाएक मुझे मालती का ध्यान आया। मैं ज्वर के आवेश में कहने लगा—हाय मालती! एक बार तू मुझे देख ले। मैंने तेरे लिये अपना जीवन मिट्टी में मिला दिया! कितनी रातें मैंने आहें भर कर, आकाश के तारे गिनकर, आँसू बहाकर तेरे लिये बिताई हैं; किंतु तूने तनिक भी मेरे प्रेम पर ध्यान नहीं दिया। तूने मुझे कुछ का कुछ ही समझ लिया। हाय, मैं किस तरह तुझे अपने हृदय की व्यथा सुनाऊँ! मालती! मालती! एक बार तेरे लिये मैं अपने इस जीवन का अंत कर सकता हूँ............। हाय मैं क्या करूँ!

एक बार मेरे कमरे का द्वार खुला। मुझे बड़ा जाड़ा लगा। मैं कंबल से मुँह ढाँक कर बेहोशी में कहने लगा—मालती! तूने मेरा अविश्वास किया, मुझसे घृणा की! क्या मेरे पास हृदय नहीं था? तूने मेरे हृदय को ठुकरा दिया।

इतना मैं कह ही रहा था कि किसी ने मेरे मस्तक पर हाथ रक्खा। मैंने मुँह पर से कंबल हटाकर देखा, यह क्या! मालती! मालती! तुम यहाँ कैसे?

वह चुपचाप खड़ी एकटक करुणा दृष्टि से मेरी तरफ देखती थी। उसकी आँखों में दया उमड़ रही थी। मेरी आँखें ज्वर की तीव्र वेदना से लाल थीं, स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता था। मुझे उसकी उपस्थिति भ्रांति सी मालूम पड़ने लगी। मैंने अनुभव किया कि कोई शीतल हाथ मेरे मस्तक पर यूडीकलोन का काम कर रहा है।

मैं कुछ स्वस्थ होकर देखने लगा—वह सचमुच मेरे सिरहाने बैठी थी, धीरे धीरे कह रही थी—क्षमा, क्षमा करो राजेंद्र, मैं अपने अभिमान में तुम्हें पहिचान न सकी। मैंने अविश्वास किया। मैं अपनी असली आकांक्षा को दबाये रही। पर तुम मेरे अज्ञात आराध्य देवता थे। मैं प्रेम करती थी; पर पहचानती न थी। मेरा हृदय मुझे धोखा दे रहा था।

मैं अवाक् होकर उसकी बातें सुन रहा था। वह फिर कहने लगी—मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया। क्या तुम मुझे क्षमा करोगे?

मैंने कहा—मालती! प्यारी मालती! यह आज क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? तुम मुझे चाहती थी! हैं!

उसने कुछ उत्तर न दिया। उसके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था। यह ज्ञात होता था; मानों वह अपने विगत कार्यों पर पश्चात्ताप कर रही है।

तब से दिन रात वह मेरी सेवा शुश्रषा करने लगी। वह मेरी हो गई, मैं उसका। ईश्वर की दया से मैं जल्द नीरोग हो गया! तब मैंने उसकी मदद से बी० ए० की परीक्षा दे डाली।

(५)

कई दिन बीत गये। एक दिन हँसती हुई मालती मेरे पास आई, और एक समाचार पत्र मेरे हाथ में देते हुए कहा—लीजिये न, आप फर्स्ट डिवीजन में बी० ए० पास हो गये!

मुझे विश्वास नहीं हुआ। गौर से जब मैंने अखबार देखा, तो बात सच निकली!

× × × ×

मैंने गर्ल्स स्कूल की क्लर्की छोड़ दी। एक राज्य में मुझे प्राइवेट सेक्रेटरी का स्थान मिल गया। वहाँ मालती के साथ मेरे दिन सुख से बीतने लगे।

× × × ×

बहुत दिनों के बाद मैं एक दिन अपने सेक्रेटरियट की छत पर बैठा था। पहाड़ी पर चाँदनी मचल रही थी। चमेली की माला लेकर मालती के जूड़े में लगाते हुए मैंने कहा—प्रिये, क्या सचमुच तुम मुझसे पहले भी प्रेम करती थी?

मालती ने मुस्कुराकर कहा—क्या अब भी संदेह है?

मैंने कहा—प्रिये! इतना रूखा स्नेह?

लीला

श्री ने हँसते हुए कहा—आज आप के गुप्त प्रेम का हाल मालूम हो गया।

कैसा प्रेम ?

छिपा हुआ, जिसे आप नहीं जानते।

मैंने श्री की तरफ देखते हुए कहा—बात क्या है ?—बतलाओ न।

कुछ नहीं, लीला आज आपकी बड़ी प्रशंसा कर रही थी।

मुझमें कौन सा गुण है, जिसकी कोई प्रशंसा करेगा ?

आपके आकर्षणशक्ति की !

क्यों मेरा उपहास करती हो श्री ! मैं तो किसी की तरफ देखता भी नहीं।

यदि आपकी तरफ कोई देखे तो ?

तो, मैं उसकी तरफ देखने की चेष्टा न करूँगा।

रहने दीजिए; ये सब आपकी कोरी बातें हैं।

कुछ देर तक मैं विचार करने लगा, फिर मैंने पूछा—वास्तव में बात क्या है श्री ? क्या तुम मुझे नहीं बतलाना चाहती हो ?

श्री ने कहा—क्या आज तक कभी कोई बात मैंने आपसे गुप्त रक्खी है ? बात यह है कि लीला आपको हृदय से प्यार करती है। आपको देखकर वह खिल उठती है। आपके दर्शन के लिए वह व्याकुल रहती है। वह आपकी आराधना करती है, उपासना करती है किंतु आप उसे नहीं जानते।

श्री की बातें सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। मधुर प्रेम की एक लहर ने मेरे हृदय को गुदगुदा दिया। मुझे विश्वास ही न होता कि लीला मुझे चाहती है।

लीला शांत एवं सुशील बालिका थी। उसका भोलापन देखकर किसी को भी यह ज्ञात न हो सकता था कि वह प्रेम की रोगिणी है। मकान के

समीप होने के कारण कभी कभी खिड़की से लीला और श्री की दो चार बातें हो जाया करती थीं। दोनों में बड़ी घनिष्ठता थी, अतएव मुझे श्री की बातों का विश्वास करना ही पड़ा।

अब प्रतिदिन लीला का कार्य मेरी समझ में आने लगा। वह प्रायः छत पर बैठी रहती थी। संयोग से यदि मेरा उसका सामना हो जाता, तो वह लज्जा से हट जाती थी; किंतु कई बार मैंने लीला को अपनी तरफ देखते हुए पाया था।

श्री ने एकदिन पूछा—अब आप चिंतित क्यों रहते हैं? क्या लीला के प्रेम ने विकल किया है?

मैंने कुछ उत्तर न दिया। श्री ने भी आगे कुछ कहना सुनना उचित न समझा।

(२)

उस दिन संध्या समय लीला की एक झलक दिखाई दी। अभी तक तो मैं लीला को देखकर आँखें नीची कर लेता था, किंतु श्री के वार्त्तालाप से बड़ा साहस हो गया था; अतएव मैंने खुली आँखों से उसकी तरफ देखा। वह भी मेरी तरफ देख रही थी। आँखें चार हुईं। लीला आकाश की तरफ देखती हुई फिर गई। मैं भी अपनी राह लगा। इसी तरह प्रायः मेरी और लीला की भेंट हो जाया करती थी।

दिल में जलन बढ़ गई थी। यदि एक दिन भी लीला को न देख पाता, तो विकल हो उठता। अब मेरी रात आँखों में कटने लगी। लीला के प्रेम की तरंगें हृदय में उथल पुथल मचा देती थीं। मैं यह भली प्रकार जानता था कि लीला का और मेरा प्रेम बड़ा भयंकर होगा, स्थायी न रह सकेगा; कारण—मेरा विवाह हो चुका था। श्री मुझे बहुत चाहती थी। लीला के साथ प्रेम कर श्री के साथ विश्वासघात करना और समाज में कलंकित होना पड़ेगा। किंतु मैं फिर भी अपने को सँभाल न सकता, लीला को देखने की इच्छा मन से हटा न सकता था। समय पर हम एक दूसरे को देख लेते थे।

श्री अब दुःखी रहा करती थी। वह मेरे स्वभाव से खूब परिचित थी, अतएव अब उसे भी विश्वास हो चला था कि मैं लीला से प्रेम करता हूँ।

अब वह मुझसे लीला के संबंध में कुछ न कहती और मैं भी उसके संबंध में उससे कुछ न पूछता था। इसी तरह कई मास बीत गए।

(३)

अब लीला दुर्बल हो गई थी। दिन प्रतिदिन उसका शरीर सूखा जा रहा था। धीरे धीरे चेहरा भी मुरझा रहा था। उसकी दशा देखकर मेरा दुःख बढ़ने लगा, किंतु करता ही क्या? विवश था।

उस दिन मेरे घर देवपूजा थी। श्री ने लीला को भी निमंत्रण दिया था। लीला आई। मेरे हृदय की विचित्र गति हो गई। मुझे इतनी भी सुध न रही—मैं कहाँ हूँ, क्या करता हूँ! मैं बार बार श्री के पास आता, ताकि लीला को भर आँख देख लूँ। श्री समझ गई। वह लीला को बहलाते हुए मेरे कमरे के समीप ले आई। मुझे यह मालूम नहीं था। मैं योंही कमरे के बाहर निकला—देखा, लीला और श्री बातें कर रही हैं। लीला मुझे देखते ही लज्जा से जमीन में गड़ गई। श्री ने कहा—बहन, लज्जित क्यों होती हो? उनसे क्या छिपाव है? वे बड़े सीधे हैं, बड़े साधु हैं; किसी की तरफ आँख नहीं उठाते!

मैं श्री का व्यंग्य समझ गया। कुछ कहना चाहता था, पर साहस न हुआ। कुछ देर तक चुप रहा। फिर मैंने मुस्कराते हुए कहा—श्री, तुम्हारे साथ यह कौन है?

तत्काल श्री ने कहा—आपकी हृदये ··।

किंतु लीला ने श्री का हाथ दबा दिया और भौंहें चढ़ा लीं।

मैंने कहा—श्री, तुम ऐसी बातें क्यों करती हो?

श्री ने कहा—केवल आपकी प्रसन्नता के लिये।

कुछ देर बाद लीला अपने घर चली गई। चलते समय लीला ने श्री से कहा—उनसे मेरा प्रणाम कह दो।

श्री ने कहा—तुम्हीं कह दो न!

लीला ने दोनों हाथ जोड़ दिए।

मैंने सिर झुकाकर उसका प्रेमाभिवादन स्वीकार किया।

उसीदिन लीला मेरी आँख बचाकर अपने अंचल में मेरे हृदय को बाँधकर ले गई।

मैंने श्री से कहा—तुम्हें अपनी चीज योंही फेंक देते हुए डर नहीं लगा, दुःख नहीं हुआ?

मैं भयभीत था कि यह हँसी कहीं घातक न हो।

श्री ने हँसकर कहा—चीज तो मेरी ही है। माँगनी चाहे कोई ले जाय, कुछ हानि नहीं; परंतु अपना कहने का दूसरे को अधिकार न होना चाहिए।

वंशीवाला

अब वंशी न बजाऊँगा—यह उसने प्रतिज्ञा कर ली थी। पहले वह बड़ी कुशलता से वंशी बजा लेता था। उसके बजाने में उसकी आँखों के सामने कल्पना का संसार दिखता था। उस ध्वनि में दर्द था, उसमें सम्मोहन था। वंशी बजा कर ही शायद वह अपनी आंतरिक पीड़ा को शांत करता था।

उस घटना को भी ५ वर्ष हो गये थे। वह निर्जन स्थान में इधर उधर शांति के लिये भटकता रहा।

उसने सोचा कि यह पीड़ा वंशी के कारण ही उत्पन्न होती है, अब वह भी नहीं बजाऊँगा।

घर छूट गया था। बहुत समय चला गया। उसके घुँघराले बालों ने बढ़ कर जटा का रूप धारण कर लिया था। उसकी जादू भरी सफेद आँखों ने धँस कर अपने चारों तरफ काली रेखाएँ बना ली थीं।

वह योगी नहीं था, महात्मा नहीं था और दार्शनिक भी नहीं था। फिर क्या था? हाँ, उसे प्रेम का उन्माद था। संसार की घटनाओं से वह हताश हो गया था। प्रेम के कलंक का टीका उसके मस्तक पर लग चुका था। संसार ने उसकी ओर चकित होकर देखा था। उसी दिन उसे अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ। वह रोया, फूट कर रोया, और जी भर कर रोया। उस रोने में बड़ा स्वाद था।

उसी दिन से वह अपना घर छोड़ कर चला गया था। तभी से वंशी बजाने लगा। वंशी उसके प्रेम का गान करती थी, और उसकी प्रतिध्वनि उसे सांत्वना देती थी।

वंशी उसकी दिनचर्या को समाप्त करती थी; किंतु आधी रात का चंद्र-मंडल और तारे उसे प्रेम पथ को भूल जाने का आदेश दिया करते थे।

उस दिन उषा की लाली के साथ ही उसके प्रियतम का उसे दर्शन हुआ था। वह अवाक् रह गया, भयभीत हो उठा। वह उसे न देखने की चेष्टा करने लगा। किंतु आँखों को वश में न कर सका। वह मचल गया।

हृदय की व्याकुलता के कारण वंशी की ध्वनि बेसुरी होने लगी। वह उठा और चला गया। अपने प्रणय पात्र को भूल जाने के लिये ही उसने वंशी न बजाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। वंशी की ध्वनि के साथ उसके सम्मुख जो प्रतिमा प्रत्यक्ष हो जाती थी, वह लुप्त होने लगी।

उसने समझा, अब मैं विजयी हुआ।

× × × ×

उस दिन चंद्रदेव को क्रीड़ा करते देख कर उसने मन ही मन कहा—क्या अब मैं हृदयहीन हो गया? क्या वास्तव में हृदय से प्रेम की भीषण लहरें चली गईं? उस घटना का रेखा चित्र भी अब मेरी आँखों के सामने नहीं आता। तब तो मेरे पास कुछ भी न रहा।

वह उठा। गंभीर होकर विचार करने लगा। उसने रोने की चेष्टा की, किंतु रो न सका। फिर गाने का विचार किया, और कुछ गुनगुनाने लगा। वंशी बजाने की कामना उसके हृदय में प्रबल हो उठी।

दूसरे दिन वह नगर की ओर लौटा।

फिर उसने वंशी ली और उसे बजाने लगा। सदा की भाँति वंशी बजाने का उसका नियम हो गया। वंशी की स्वर लहरी ने उसके मर्मस्थल पर सोये हुए प्रेम को फिर से जगाया। वह उन्मत्त हो चला। अपने भूले हुए प्रियतम को देखने के लिये उसकी आँखें चंचल हो उठीं।

वंशी के साथ साथ उसकी अंतर वीणा बजने लगी। उसी राग में मस्त होकर वह अपने प्रणय पात्र को एक बार फिर देखने के लिये चल पड़ा।

वह आया। बहुत समय व्यतीत हो गया था। वही घर था। उसने ध्यान से देखा। बहुत देर तक देखता रहा। किंतु कुछ दिखलाई न दिया। वह चुपचाप वहीं बैठ कर वंशी बजाने लगा। खूब बजाया। बहुत से लोग सुनने के लिये एकत्र हो गए थे, किंतु उस घर में कोई न था। किसी ने उसे योगी समझ कर नमस्कार किया, किसी ने साधु समझ कर भक्ति प्रकट की। किंतु उसे समझने वाला कोई न था, वह केवल वंशी ही थी।

निराश होकर उसने पूछा—इस घर में अब कोई नहीं रहता?

किसी ने उत्तर दिया—इस घर के निवासी अब दूसरे प्रांत में चले गए हैं।

वंशी वाले के जीवन के रहस्य को कोई समझ न सका। वह टहलता हुआ आगे बढ़ा। कुछ दूर चला आया, गंगातट पर उसने एक टूटा हुआ शिवाला देखा। उस दिन से वह उसी शिवाले में निवास करने लगा।

सावन भादों की निचाट रात में अब भी उसकी वंशी कभी कभी सुनाई पड़ती है!

वासना की पुकार

मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई अपनी पत्नी का हाथ चूमते हुए श्री कांत ने कहा—प्रिये, मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन भर किसी को प्यार न करूँगा। मैं तुम्हारा हूँ, हजार बार जन्म लेकर भी तुम्हारा ही रहूँगा। तुम मेरी प्रतीक्षा करना।

अटल श्रद्धा और प्रेम से उसकी पत्नी की आँखें बंद थीं, जैसे उसे विश्वास था कि श्रीकान्त अपनी प्रतिज्ञा से कभी विचलित न होगा।

उसने एक बार देखा और आँखें एक धारा बहा कर सदैव के लिए बंद हो गईं।

श्रीकांत अपने दोनों बच्चों के साथ विलख रहा था। श्मशान से दाह क्रिया समाप्त करके श्रीकांत निराशा शोक और हाहाकार की धूल अपने मस्तक पर लगा कर बैठा था। जिसकी आँखों में सुख मदिरा की लहरों की भाँति खेल रहा था, उसे क्या पता था, कि जीवन का अस्तित्व क्या है ?

दूसरे दिन तक आकाश और पाताल की दूरी का एक डोर उसने बाँध रखा था। वह किसी तरह नहीं मानेगा। इस जीवन का अंत कर देगा। अब उसका कौन अवलंब शेष रहा। लेकिन जीवन का अंत करने में ही क्या शांति है ?......वह इस संसार से विरक्त होकर अकेला रहेगा ! ऋषिकेश से आगे एक झोंपड़ा में वह निवास करेगा। एक कंबल और दो धोतियाँ ही उसके लिए पर्याप्त होंगी। अकेले बैठ कर वह भगवान की आराधना करेगा। नहीं, भगवान की इतनी भयानक कठोरता पर भूल कर वह भी उनका नाम न लेगा। जिस भगवान ने चैन से कटने वाले सुनहले दिन को क्षण भर में नष्ट कर दिया, उनसे अब वह क्या माँगेगा। जिसने इतनी बड़ी सृष्टि की रचना की है, क्या वह उसकी पत्नी को जीवित नहीं रख सकता था।

अगणित प्रश्नों के उत्तर प्रतिउत्तर की लहरियों की माला गूँथ कर, निराशा के अंधकार में, न जाने किस अज्ञात प्रतिमा की उपासना में वह

लीन रहता। उसकी आकृति गंभीर रेखायें अंकित कर रही थीं। जैसे उसका कोई कार्यक्रम शेष नहीं रहा।

पत्नी के देहांत के बाद श्रीकांत ने व्यवसाय इत्यादि से भी अपनी रुचि हटा ली थी। उसने थोड़े समय में ही काफी धन उपार्जन कर लिया था। इसका कारण यही था कि वह अपने धुन का पक्का था। जिस काम को करने के लिए वह निश्चय कर लेता, उसे अटल होकर करता। सफलता सदैव दौड़ी पड़ती थी। लेकिन अब उसे किसी तरह का प्रलोभन न था। महीनों बीत गये। वह मौन होकर सब कुछ छोड़ बैठा।

कौन कह सकता है कि श्रीकांत अब क्या करेगा?

अपने दोनों बच्चों के साथ उनके खेल कूद में ही श्रीकांत को अधिकांश समय व्यतीत होता। जब वे थक जाते तो श्रीकांत उन्हें पलंग पर थपकियाँ देकर सुला देता। वह उनके मुख को देखा करता। कभी निद्रित अवस्था में ही वह उनके कपोलों को चूम लेता। सब कुछ छोड़ने की भावना होते हुए भी ममता उसे छोड़ न सकी।

घर से बाहर निकलने पर श्रीकांत श्मशान को दूर से खड़ा होकर देखा करता। अब वह किसी मृतक शरीर को जलते हुए देखकर भयभीत न होता। मृत्यु ही अनंत शांति है, ऐसी उनकी धारणा हो गई थी।

बचपन से ही श्रीकान्त को संगीत से विशेष प्रेम था। वह नियमित रूप से इसका अभ्यास करता था। हारमोनियम वह कुशलता से बजाता था। दिन भर अपना कार्य समाप्त करके संध्या समय, जब वह घर लौटता तो हारमोनियम लेकर बैठ जाता। उसकी पत्नी भोजन के लिए कहती तो वह कहता जरा ठहर जाओ, बड़ा सुंदर राग है। हारमोनियम की स्वर लिपियों के साथ वह तन्मय होकर गाने लगता था।

आज इतने दिन के बाद, अर्धरात्रि में अपने पलंग से उठ कर वह कमरे में टहलने लगा। जैसे किसी मनोरम स्वप्न ने उसकी आँखें खोल दीं। वह गुनगुनाने लगा।—मेरी आँखों की पुतली में, तू बन कर प्राण समा जा रे।

उसने कमरे का द्वार खोला। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। आकाश नक्षत्रों के साथ चुपचाप मानव जीवन की करुण रागिनी को अपनी ओर खींच रहा था। प्रकृति स्तब्ध थी।

श्रीकांत विचार करने लगा—तीन वर्ष हुए वह एक गायिका के गाने पर मुग्ध हुआ था। उसके हृदय में कितना दर्द था। श्रीकांत के कानों में आज भी वह स्वर गूँज रहा था।

श्रीकांत प्रायः सरिता का गाना सुनने के लिये उसके यहाँ जाता था। उसे समाज और लोगों के व्यंग की परवाह न थी। वह कला का उपासक था। गाना सुनते सुनते उसकी भावुकता उमड़ पड़ती। उसकी आँखें डबडबा जातीं, हृदय में उथल-पुथल होने लगती। वह न जाने किस उदारता से किसी को क्षण भर में अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए प्रस्तुत हो जाता। ऐसे समय सरिता बड़ी उत्सुकता से पूछती—गाना सुनकर तो लोग प्रसन्न होते हैं, लेकिन आप उदास क्यों हो जाते हैं।

श्रीकांत ने कहा—तुम्हारा यह अनुमान ठीक है, सरिता। संगीत प्रसन्नता को नहीं जागृत करता। उदासीनता और हृदय की पीड़ा ही उसकी सहचरी हैं।

सरिता इस रहस्य को समझने में असमर्थ थी। फिर भी वह श्रीकांत के व्यक्तित्व से प्रभावित हुई थी। वह उसका आदर करती थी।

किंतु पता नहीं किस शक्ति की प्रेरणा से श्रीकांत सरिता से दूर रहने लगा।

तीन वर्ष के बाद सरिता की सौम्य आकृति उसके सामने जैसे आकर खड़ी हो गई।

उसका मन चंचल होकर पुकार उठा—सरिता! सरिता!!

उसने एक बार भी सरिता से यह पूछना उचित नहीं समझा कि तुम अपनी कागज की नाव पर बैठा कर इस अथाह जीवन समुद्र में मुझे कितनी दूर ले चल सकोगी।

कड़े शीत में वह ठिठुर रहा था। उसने कमरे का द्वार बंद कर लिया। रजनी की निविड़ता उसे सांत्वना दे रही थी।

(३)

उस दिन संध्या समय श्रीकांत घर से निकला। वह सरिता के मकान पर पहुँचा। पूछने पर पता लगा कि वह यहाँ से कुछ दूर एक दूसरे मकान में रहती है। उसने सोचा जाने दो, अब न चलूँगा, किंतु हृदय की उन्मत्त

भावनायें उसे आगे बढ़ाती जाती थीं। अंत में वह सरिता के गृह में उसके संमुख जाकर खड़ा हो गया।

सरिता ने आश्चर्य से पूछा—अरे आप, इतने दिनों पर ...

श्रीकांत देखता रहा। उसने कहा—तुम्हारा पता लगाते हुए, आज न जाने कैसे चला आया हूँ।

सरिता ने पूछा—ऐसा क्यों ?

श्रीकांत ने कहा—तुम्हारा गाना सुनना चाहता हूँ।

सरिता ने कहा—अच्छा अब आप में तो बड़ा परिवर्तन हो गया है। बहुत दुर्बल हो गये हैं।

श्रीकांत ने धीमे स्वर में कहा—समय की गति में चला जा रहा हूँ—सरिता।

सरिता के नेत्र सहानुभूति प्रगट कर रहे थे।

उसने कहा—बैठिये।

श्रीकांत बैठा। सामने सरिता बैठ गई। कमरा प्रकाश से जगमगा रहा था। कुछ देर इधर उधर की बातों के बाद गाना आरंभ हुआ।

श्रीकांत भावों के साथ द्वंद्व कर रहा था। वह बहुत देर तक सुनता रहा।

सरिता ने ध्यान से देखा—श्रीकान्त की आँखें भरी हुई हैं और वह चुपचाप अपने रूमाल से पोंछ रहा रहा है।

सरिता सबके सामने ऐसा गंभीर प्रश्न न पूछ कर मौन रही। वह बड़े कौतूहल से उसकी ओर देखने लगी। उसी समय कुछ आगंतुक सरिता का गाना सुनने के लिये आये। श्रीकांत सचेत हुआ! अवसर पाकर वह उठा।

सरिता ने कहा—बैठिये, इतनी जल्दी क्यों ?

उसने कहा—नहीं कुछ कार्य है।

सरिता ने पूछा—फिर दर्शन कब मिलेगा ?

देखो—कहते हुए श्रीकांत चला गया।

घर आते ही उसके ६ वर्ष के बड़े लड़के ने पूछा—पिता जी कहाँ गये थे ?

अपराधी की भाँति अपनी संतान के संमुख वह खड़ा था। कमरे में दीवार पर अपनी पत्नी का चित्र वह देख रहा था। चित्र देखते देखते उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि उसकी पत्नी कह रही है—इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, तुम लज्जित क्यों होते हो। मैं जानती हूँ, मनुष्य अपनी दुर्बलताओं को इतनी जल्दी नष्ट नहीं कर पाता।

श्रीकांत अधीर होकर कहना चाहता था, वह केवल वासना की पुकार थी, मैं नहीं था।

किंतु उसे विश्वास नहीं होता कि उसकी ध्वनि वहाँ तक पहुँच सकेगी।

विधाता

चीनी के खिलौने, पैसे में दो; खेल लो, खिला लो, टूट जाय तो खा लो—पैसे में दो।

सुरीली आवाज में यह कहता हुआ खिलौनेवाला एक छोटी सी घंटी बजा रहा था।

उसकी आवाज सुनते ही त्रिवेणी बोल उठी—

माँ, पैसा दो, खिलौना लूँगी।

आज पैसा नहीं है, बेटी।

एक पैसा माँ, हाथ जोड़ती हूँ।

नहीं है त्रिवेणी, दूसरे दिन ले लेना।

त्रिवेणी के मुख पर संतोष की झलक दिखलाई दी।

उसने खिड़की से पुकार कर कहा—ऐ खिलौनेवाले, आज पैसा नहीं है; कल आना।

चुप रह, ऐसी बात भी कहीं कही जाती है—उसकी माँ ने भुनभुनाते हुए कहा।

तीन वर्ष की त्रिवेणी की समझ में न आया। किंतु उसकी माँ अपने जीवन के अभाव का पर्दा दुनिया के सामने खोलने से हिचकती थी। कारण, ऐसा सूखा विषय केवल लोगों के हँसने के लिए ही होता है।

और सचमुच—वह खिलौनेवाला मुस्कुराता हुआ, अपनी घंटी बजाकर, चला गया।

× × ×

संध्या हो चली थी।

लज्जावती रसोईघर में भोजन बना रही थी। दफ्तर से उसके पति के लौटने का समय था। आज घर में कोई तरकारी न थी, पैसे भी न थे। विजयकृष्ण को सूखा भोजन ही मिलेगा! लज्जा रोटी बना रही थी और त्रिवेणी अपने बाबूजी की प्रतीक्षा कर रही थी।

माँ, बड़ी तेज भूख लगी है।—कातर वाणी में त्रिवेणी ने कहा।

बाबूजी को आने दो, उन्हीं के साथ भोजन करना, अब आते ही होंगे।—लज्जा ने समझाते हुए कहा। कारण, एक ही थाली में त्रिवेणी और विजयकृष्ण साथ बैठ कर नित्य भोजन करते थे और उन दोनों के भोजन कर लेने पर उसी थाली में लज्जावती टुकड़ों पर जीनेवाले अपने पेट की ज्वाला को शांत करती थी। जूठन ही उसका सोहाग था।

लज्जावती ने दीपक जलाया। त्रिवेणी ने आँख बंद कर दीपक को नमस्कार किया; क्योंकि उसकी माता ने प्रतिदिन उसे ऐसा करना सिखाया था।

द्वार पर खटका हुआ। विजय दिन भर का थका लौटा था। त्रिवेणी ने उछलते हुए कहा—माँ, बाबू जी आ गये।

विजय कमरे के कोने में अपना पुराना छाता रख कर खूँटी पर कुर्ता और टोपी टाँग रहा था।

लज्जा ने पूछा—महीने का वेतन आज मिला न ?

नहीं मिला, कल बँटेगा। साहब ने बिल पास कर दिया है।—हताश स्वर में विजयकृष्ण ने कहा।

लज्जावती चिंतित भाव से थाली परोसने लगी। भोजन करते समय, सूखी रोटी और दाल की कटोरी की ओर देखकर विजय न जाने क्या सोच रहा था। सोचने दो; क्योंकि चिंता ही दरिद्री का जीवन है और आशा ही उनका प्राण।

× × ×

किसी तरह दिन कट रहे थे।

रात्रि का समय था। त्रिवेणी सो गई थी, लज्जा बैठी थी।

देखता हूँ, इस नौकरी का भी कोई ठिकाना नहीं है।—गंभीर आकृति बनाते हुए विजयकृष्ण ने कहा।

क्यों ! क्या कोई नई बात है ?—लज्जावती ने अपनी झुकी हुई आँखें ऊपर उठाकर, एक बार विजय की ओर देखते हुए, पूछा।

बड़ा साहब मुझसे अप्रसन्न रहता है। मेरे प्रति उसकी आँखें सदैव चढ़ी रहती हैं।

किसलिए ?

हो सकता है, मेरी निरीहता ही इसका कारण हो।

लज्जा चुप थी।

पंद्रह रुपये मासिक पर दिन भर परिश्रम करना पड़ता है। इतने पर भी......

ओह, बड़ा भयानक समय आ गया है!—लज्जावती ने दुःख की एक लंबी साँस खींचते हुए कहा।

मकानवाले का दो मास का किराया बाकी है, इस बार वह नहीं मानेगा।

इस बार न मिलने से वह बड़ी आफत मचायेगा।—लज्जा ने भयभीत होकर कहा।

क्या करूँ? जान देकर भी इस जीवन ने छुटकारा होता...!

ऐसा सोचना व्यर्थ है। घबड़ाने से क्या लाभ? कभी दिन फिरेंगे ही।

कल रविवार है, छुट्टी का दिन है, एक जगह दूकान पर चिट्ठी पत्री लिखने का काम है। पाँच रुपये महीना देने को कहता था। घंटे-दो-घंटे उसका काम करना पड़ेगा। मैं आठ माँगता था। अब सोचता हूँ, कल उससे मिलकर स्वीकार कर लूँ। दफ्तर से लौटने पर उसके यहाँ जाया करूँगा,—कहते हुए विजयकृष्ण के हृदय में उत्साह की एक हलकी रेखा दौड़ पड़ा।

जैसा ठीक समझो।—कहकर लज्जा विचार में पड़ गई। वह जानती थी कि विजय का स्वास्थ्य परिश्रम करने से दिन दिन खराब होता जा रहा है।

मगर रोटी का प्रश्न था!

× × ×

दिन, सप्ताह और महीने उलझते चले गये।

विजय प्रतिदिन दफ्तर जाता। वह किसी से बहुत कम बोलता। उसकी इस नीरसता पर प्रायः दफ्तर के अन्य कर्मचारी उससे व्यंग करते।

उसका पीला चेहरा और धँसी हुई आँखें लोगों को विनोद करने के लिए उत्साहित करती थीं। लेकिन वह चुपचाप ऐसी बातों को अनसुनी कर जाता कभी उत्तर न देता। इसपर भी सब उससे असंतुष्ट रहते थे।

विजय के जीवन में आज एक अनहोनी घटना हुई। वह कुछ समझ न सका। मार्ग में उसके पैर आगे न बढ़ते। उसकी आँखों के सामने चिनगारियाँ झलमलाने लगीं। मुझसे क्या अपराध हुआ ?—कई बार उसने मन ही में प्रश्न किये।

घर से दफ्तर जाते समय बिल्ली ने रास्ता काटा था। आगे चलकर खाली घड़ा दिखाई पड़ा था। इसीलिए तो सब अपशकुनों ने मिलकर आज उसके भाग्य का फैसला कर दिया था !

साहब बड़ा अत्याचारी है। क्या गरीबों का पेट काटने के लिए ही पूँजीपतियों का आविष्कार हुआ है ? नाश हो इनका...वह कौन सा दिन होगा जब रुपयों का अस्तित्व संसार से मिट जायगा ? भूखा मनुष्य दूसरे के सामने हाथ न फैला सकेगा ?—सोचते हुए विजय का माथा घूमने लगा। वह मार्ग में गिरते गिरते सम्हल गया।

सहसा उसने आँखें उठाकर देखा, वह अपने घर के सामने आ गया था; बड़ी कठिनाई से वह घर में घुसा। कमरे में आकर धम से बैठ गया।

लज्जावती ने घबराकर पूछा—तबीयत कैसी है ?

जो कहा था वही हुआ।

क्या हुआ ?

नौकरी छूट गई। साहब ने जवाब दे दिया ?—कहते कहते उसकी आँखें छलछला गईं।

विजय की दशा पर लज्जा को रुलाई आ गई। उसकी आँखें बरस पड़ीं। उन दोनों को रोते देखकर त्रिवेणी भी सिसकने लगी।

संध्या की मलिन छाया में तीनों बैठकर रोते थे।

इसके बाद शांत होकर विजय ने अपनी आँखें पोंछीं; लज्जावती ने अपनी और त्रिवेणी की—

क्योंकि संसार में एक और बड़ी शक्ति है, जो इन सब शासन करनेवाली चीजों से कहीं ऊँची है—जिसके भरोसे बैठा हुआ मनुष्य आँख फाड़कर अपने भाग्य की रेखा को देखा करता है।

विद्रोही

मान जाओ, तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा।

चुप रहो—तुम क्या जानो।

इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है।

बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला आज शांत होगी।—शक्तिसिंह ने, एक लंबी साँस खींचते हुए, अपनी स्त्री की ओर देखा।

....

....

कलंक लगेगा, अपराध होगा।

अपमान का बदला लूँगा। प्रताप के गर्व को मिट्टी में मिला दूँगा। आज मैं विजयी होऊँगा—बड़ी दृढ़ता से कहकर शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार पर से देखा—मुगल सेना के चतुर सिपाही अपने अपने घोड़ों की परीक्षा ले रहे थे। धूल उड़ रही थी। बड़े साहस से सब एक दूसरे में उत्साह भर रहे थे।

निश्चय महाराणा की हार होगी। बाईस हजार राजपूतों को दिन भर में मुगल सेना काटकर सूखे डंठल की भाँति गिरा देगी।—साहस से शक्तिसिंह ने कहा।

भाई पर क्रोध करके, देशद्रोही बनोगे···—कहते कहते उस राजपूत बाला की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

शक्तिसिंह अपराधी की नाईं विचार करने लगा। जलन का उन्माद उसकी नस नस में दौड़ रहा था। प्रताप के प्राण लेकर ही छोड़ेगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी। नादान दिल किसी तरह न मानेगा। उसे कौन समझा सकता था?

रणभेरी बजी।

कोलाहल मचा। मुगल सैनिक मैदान में एकत्र होने लगे। पत्ता पत्ता खड़खड़ा उठा। बिजली की भाँति तलवारें चमक रहीं थीं। उस दिन सबमें उत्साह था। युद्ध के लिए भुजाएँ फड़कने लगीं।

शक्तिसिंह ने घोड़े की लगाम पकड़कर कहा—आज अंतिम निर्णय है, मरूँगा या मारकर ही लौटूँगा।

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहिनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी। उसने बड़ी गंभीरता से कहा—ईश्वर सद्बुद्धि दे, यही प्रार्थना है।

(२)

एक महत्त्वपूर्ण अभिमान के विध्वंस करने की तैयारी थी। प्रकृति काँप उठी। घोड़ों और हाथियों के चीत्कार से आकाश थरथरा उठा। बरसाती हवा के थपेड़ों से जंगल के वृक्ष रणनाद करते हुए झूम रहे थे। पशु पक्षी भय से त्रस्त होकर आश्रय ढूँढ़ने लगे। बड़ा विकट समय था।

उस भयानक मैदान में राजपूत सेना मोर्चाबंदी कर रही थी। हलदी घाटी की ऊँची चोटियों पर भील लोग धनुष चढ़ाये उन्मत्त के समान खड़े थे।

महाराणा की जय !—शैलमाला से टकराती हुई ध्वनि मुगल सेना में घुस पड़ी। युद्ध आरंभ हुआ। भैरवी रणचंडी ने प्रलय का राग छेड़ा। मनुष्य हिंस्र जंतुओं की भाँति अपने अपने लक्ष्य पर टूट पड़े। सैनिकों के निडर घोड़े हवा में उड़ने लगे। तलवारें बजने लगीं। पर्वतों के शिखरों पर से विषैले बाण मुगलसेना पर बरसने लगे। सूखी हलदीघाटी में रक्त की धारा बहने लगी।

महाराणा आगे बढ़े। शत्रुसेना का व्यूह टूटकर तितर बितर हो गया। दोनों ओर के सैनिक कटकटकर गिरने लगे। देखते देखते लाशों के ढेर लग गये।

भूरे बादलों को भेकर आँधी आई। सलीम के सैनिकों को बचने का अवकाश मिला। मुगलों की सेना में नया उत्साह भर गया। तोप के गोले उथल पुथल करने लगे। धाँय धाँय करती बंदूक से निकली हुई गोलियाँ दौड़ रही थीं—ओह ! जीवन कितना सस्ता हो गया था !

महाराणा शत्रु सेना में सिंह की भाँति उन्मत्त होकर घूम रहे थे। जान की बाज़ी लगी थी। सब तरफ से घिरे थे। हमला पर हमला हो रहा था। प्राण संकट में पड़े। बचना कठिन था। सात बार घायल होने पर भी पैर उखड़े नहीं, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था।

मानसिंह की कुमंत्रणा सिद्ध होनेवाली थी। ऐसे आपत्ति जाल में वह वीर सरदार सेना सहित वहाँ कैसे आया? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी ओर देखा—वीर मन्नाजी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राजचिह्नों को उतार कर स्वयं धारण कर लिया। राणा ने आश्चर्य और क्रोध से पूछा—यह क्या?

आज मरने के समय एक बार राजचिह्न धारण करने की बड़ी इच्छा हुई है।—हँसकर मन्नाजी ने कहा। राणा ने उस उन्मादपूर्ण हँसी में अटल धैर्य देखा।

मुगलों की सेना में से शक्तिसिंह इस चातुरी को समझ गया। उसने देखा—घायल प्रताप रणक्षेत्र से जीते जागते निकले जा रहे हैं! और, वीर मन्नाजी को प्रताप समझ कर मुगल उधर ही टूट पड़े हैं।

उसी समय दो मुगल सरदारों के साथ, महाराणा के पीछे पीछे शक्ति सिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

(३)

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतंत्रता की बलि वेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर मिटनेवाले वीरों ने अपने को उत्सर्ग कर लिया था। बाईस हजार राजपूत वीरों में से केवल आठ हजार बच गये थे।

विद्रोही शक्ति सिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चढ़ा चला जा रहा था। मार्ग में कटे शव पड़े थे—कहीं भुजाएँ शरीर से अलग पड़ी थीं, कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं खून से लथपथ मस्तक भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्त्तन है!—दो घड़ियों में हँसते बोलते और लड़ते हुए जीवित पुतले कहाँ चले गये? ऐसे अनित्य जीवन पर इतना गर्व!

शक्तिसिंह की आँखें ग्लानि से छलछला पड़ीं—

ये सब भी राजपूत थे, मेरी ही जाति के खून थे! हाय रे मैं! मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ—क्या सचमुच पूरा हुआ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था, अधम शक्ति! यह तेरे चिर कलंक के लिए पैशाचिक आयोजन था। तू भूला,

पागल ! तू प्रताप से बदला लेना चाहता था—उस प्रताप से, जो अपनी स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्म भूमि की मर्यादा बचाने चला था ! वही जन्म भूमि जिसके अन्न जल से तेरी नसें भी फूली फली हैं ! अब भी तो माँ की मर्यादा का ध्यान कर !

सहसा धाँय धाँय गोलियों का शब्द हुआ। चौंक कर शक्तिसिंह ने देखा—दोनों मुगल सरदार प्रताप का पीछा कर रहे थे। महाराणा का घोड़ा लस्त पस्त होकर झूमता हुआ गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज हुई—रुको !

दूसरे चण शक्ति सिंह की बंदूक छूटी, पलक मारते दोनों मुगल सरदार जहाँ के तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ा कर देखा। वे आँखें पूछ रही थीं—क्या मेरे प्राण पाकर तुम निहाल हो जाओगे? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी प्रहिहिंसा तृप्त नहीं हुई ?

किंतु यह क्या, शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नतमस्तक खड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट फूट कर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ा कर पद प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ !

राणा ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं। दोनों के हृदय गद्‌गद् हो गये।

इस शुभ मुहूर्त्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प वर्षा की, नदी की कलकल धाराओं ने स्तुति गान किया।

प्रताप ने उन डबडबाई हुई आँखों से ही देखा—उनका चिरसहचर प्यारा चेतक दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

शक्ति सिंह ने कहा—भैया। अब आप विलंब न करें, घोड़ा तैयार है।

राणा, शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर, उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

(४)

श्रावण का महीना था।

दिन भर की मार काट के पश्चात्, रात्रि बड़ी सून सान हो गई थी। शिविरों से महिलाओं के रोदन की करुण ध्वनि आकर हृदय को हिला देती

थी। हजारों सुहागिनियों का सुहाग उजड़ गया था। उन्हें कोई ढ़ाढ़स बँधानेवाला न था; था तो केवल हाहाकार, चीत्कार, कष्टों का अनंत पारावार !

शक्तिसिंह अभी तक अपने शिविर में नहीं लौटा था। उसकी पत्नी भी प्रतीक्षा में विकल थी, उसके हृदय में जीवन की आशा निराशा क्षण क्षण उठती गिरती थी।

अँधेरी रात में काले बादल आकाश में छा गये थे। एकाएक उस शिविर में शक्तिसिंह ने प्रवेश किया। पत्नी ने कौतूहल से देखा, उसके कपड़े खून से तर थे।

प्रिये !

नाथ !

तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया !

विलंब

क्या तुम मुझे सचमुच चाहती हो ?

उत्तर मिला—किन शब्दों में कहूँ !

नहीं, तुम मुझे नहीं चाहतीं।

यह आप ने कैसा कहा ? नित्य आप ही का चिंतन करती हूँ, बार बार आप ही का प्रेम गीत गाती हूँ। रात्रि में सोते समय आप ही का स्वप्न देखती हूँ, हृदय से लगाने के लिये दोनों हाथों को फैलाती हूँ; आप चले जाते हैं। जब प्रातःकाल उठती हूँ, स्वप्नों के चित्र आँखों में तैरने लगते हैं। सोचती हूँ, आप क्यों चले जाते हैं ?

उत्तर मिला—अच्छा, तुम जिस दिन मुझे पूर्ण रूप से चाहोगी, जिस क्षण हृदय से याद करोगी, मुझे तत्काल अपने समीप पाओगी।

कहकर वह चले गये।

उसने साँस खींच कर कहा—आह, वह चले गए। उन्हें जी भर बाहु-पाश में भेंट न सकी और वे एकाएक चले।

(२)

दिन-पर-दिन बीतने लगे।

महीने-पर-महीना जाने लगे।

वर्ष के बाद वर्ष समाप्त हो गए।

बादलों के पंखों पर उड़ कर बरसात आई और चली गई। उद्यानों में फूलों के अधरों को चूम कर वसंत चला गया। शिशिर भी अपनी शीतलता छिड़कर चली गई।

सभी ऋतुएँ आईं और चली गईं। पर वह जिसे चाहती थी, वह नहीं आया।

एक दिन एकांत में उसने अपने हृदय को छेड़ कर उससे पूछा—उन्होंने कहा था, तुम मुझे जिस क्षण हृदय से याद करोगी, तत्काल अपने समीप पाओगी!—क्या तुमने सचमुच कभी स्मरण नहीं किया? या यह भी उनकी एक दिल्लगी थी, बहला देने का ढंग था?

हृदय ने धीमी साँस से कहा—धैर्य धरो।

इतने पर भी?

हाँ।

लोभी हृदय की आशा पर—साहस पर—उसे आश्चर्य हुआ!

विसर्जन

मानवता के उत्कर्ष का युग था। विज्ञान और कला के कितने ही आविष्कारों ने संसार का रूप परिवर्तित कर डाला था। पूँजीवादी अपना हाथ फैलाये हुए समस्त विश्व की विभूतियाँ केवल अपने लिये ही सुरक्षित रखना चाहता था और साम्यवादी राष्ट्र कहता था कि हम सब कुछ लेकर बराबर का बँटवारा करेंगे। संसार के इतिहास में उपसंहारवाला अंश जोड़ने के लिए मानव समाज व्यग्र हो उठा। युद्ध के काले बादल आकाश में छा गये।

कप्तान को आज्ञा मिली थी। उशका जहाज सैनिक और युद्ध सामग्री से पूर्ण होकर उसकी प्रतीक्षा में था। उसने घड़ी देखते हुए अपनी पत्नी से कहा—अब समय हो रहा है।

उसकी पत्नी ने कहा—मैं भी साथ चलूँगी।

यह कैसे हो सकता है?—कप्तान ने कहा।

क्यों? उसने पूछा।

मरण का प्रश्न है।

कोई चिंता नहीं, मृत्यु का सर्वत्र आतंक है। कहीं भी उससे छुटकारा नमीं मिल सकता। वायुयान की बमवर्षा के कारण नगर ध्वस्त हो चुका है, फिर क्या यहाँ अकेला छोड़कर मुझे जीवन दे सकोगे?

कप्तान चिंतित हुआ। उसने निश्चित करते हुए कहा—अच्छा चलो।

उसकी पत्नी इस आपत्तिकाल में भी खिल उठी। दोनों साथ ही जहाज पर चढ़े।

ठीक समय पर जहाज छूटा।

(२)

असंख्य जलाराशि आलोडित हो रहा था। तीन दिनों से जहाज समुद्र के विशाल भाल पर चल रहा था। प्रकाशगृह से पथप्रदर्शन का कहीं संकेत नहीं मिल रहा था। सैनिक और नाविक सशंक होकर केवल आज्ञाओं का पालन कर रहे थे।

सहसा एक भीषण ध्वनि हुई। कप्तान ने संकट की सूचना दी। किसी पनडुब्बे के आक्रमण से जहाज के विसर्जन का समय समीप आ गया था। सब लोग भयभीत हो उठे।

कप्तान ने छोटी नौकाओं पर सैनिकों को चले जाने की आज्ञा दी। सब व्यवस्था हो चुकी थी। जीवन रक्षा के लिए रखी हुई नौकाएँ समुद्र में बिखर गईं। साहसी सैनिक लाइफ बेल्ट के सहारे समुद्र में कूद पड़े।

कप्तान ने अपनी पत्नी से कहा—शीघ्रता करो, तुम भी जाओ।

उसने बड़ी दृढ़ता से कहा—मैं नहीं जाऊँगी।

यह ठीक नहीं। कहते हुए कप्तान प्रबंध में लग गया। कप्तान ने देखा कि बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ लोगों को जहाज के साथ ही समाधि लेनी पड़ेगी।

सब कार्य समाप्त करने के बाद कप्तान ने अपने केबिन से एक लाइफ बेल्ट लाकर अपनी पत्नी को देते हुए कहा—अब भी समय है, इसके सहारे समुद्र में कूद जाओ। दो घंटे में सहायता मिलने की आशा है।

वह मौन होकर उसकी ओर देख रही थी। उसी समय एक आदमी दौड़ा हुआ उसके समीप आया और उसके हाथ से लाइफ बेल्ट छीन कर कूद पड़ा। कप्तान आश्चर्य से देखने लगा। वह चाहता तो उसी समय उसे गोलियों का शिकार बना डालता; किंतु न जाने क्या सोच कर वह मौन होकर मनुष्य के पशुतापूर्ण आचरण की व्याख्या कर रहा था।

कप्तान अपनी पत्नी के साथ जहाज के ऊपरी भाग पर खड़ा था। उसने भगवान की वंदना की। उसकी पत्नी के दोनों हाथ उसके कंधे में जकड़े हुए थे। उसी समय समुद्र की एक लहर ने आकर उसका स्वागत किया और दूसरी लहर ने गर्जना करते हुए कहा—किसी देश अथवा जाति के ऐसे वीर धन्य हैं!

———

शय्या पर

वृद्ध ने अपने जीर्ण हाथों को ऊपर उठाकर कहा—प्रभो! मुझे एक बार फिर नीरोग कर दो। मैं अपने पौत्र का मुख तो देख लूँ।

कहकर उसने एक लंबी साँस खींची।

(२)

वृद्ध नीरोग हो गया था।

दिन पर दिन बीतने लगे।

एकदिन उसने सुना, घर में पौत्र ने जन्म लिया है।

उसकी आँखों में हर्ष के बादल उमड़ पड़े, मन मयूर नाच उठा।

(३)

इस समय पौत्र की अवस्था तीन वर्ष की थी।

वृद्ध एक क्षण के लिये भी उसे अपनी आँखों से ओझल न होने देता था। वह उसे कभी जंगली चिड़ियों का हाल सुनाता, कभी हृदय को गुदगुदा देनेवाली कहानियाँ सुनाता और कभी अपने बचपन के गाए हुए गीतों को चुटकियाँ बजा बजाकर गुनगुनाता।

अबोध शिशु दादा की बातें सुन सुनकर प्रसन्न होता, और कभी कभी खिलखिलाकर हँस पड़ता। उसे हँसते देखकर वृद्ध की आँखों से हर्ष की दो बूँदे टपक पड़ती।

बालक विस्मित होकर पूछता—ये गोल गोल बूँदें कहाँ से आई दादा ?'

वृद्ध कुछ उत्तर न दे पाता। उसकी आँखों से फिर कुछ बूँदें टपक पड़तीं।

एक वर्ष बीत गया।

छोटी सी टूटी हुई चारपाई पर एकदिन फिर वह कराहते हुए दिखाई पड़ा।

उसकी आँखें बाढ़ में डूबी हुई थीं। गला रुँधा हुआ था। एक शिथिल वीणा की भाँति उसका सूखा कंकाल शय्या पर पड़ा हुआ था। बालक

उसकी बगल में बैठा हुआ कह रहा था—दादा, आज कोई गीत न सुनाओगे ?

वृद्ध ने एक बार फिर अपने दोनों सूखे हाथों को ऊपर उठाकर कहा—हे प्रभो ! यह मेरी अंतिम आकांक्षा है—जब तक मैं अपने पौत्र का विवाह न देख लूँ, मेरे ये प्राण अपने पंखों को समेटे रहें।

किंतु एकदिन अँधेरी रात में वृद्ध के प्राणों ने अपने पंखों को फैला दिया। उस समय उसके मुख से सुना गया—हरे राम, हरे राम !

बालक मचलकर कहने लगा—बाबा, आज तुम अच्छा गीत नहीं गा रहे हो। सुंदर गीत गाओ बाबा !

शून्य

वह गेरुआ वस्त्रधारी युवक संन्यासी कुछ दिनों से नगर की गलियों का आकर्षण बन रहा था। बच्चों और स्त्रियों में कौतूहल उत्पन्न करने में वह प्रवीण था। नगरों में जिस तरह मदारी और भालू बंदरवालों के साथ बालक का झुंड उलझा हुआ दिखाई पड़ता है, वैसा ही महत्व उस संन्यासी को भी प्राप्त था।

वह गीता का प्रवचन करता, गोभक्ति पर व्याख्यान देता और कभी देश की वर्तमान दुर्दशा का वर्णन करते हुए क्रोध से लाल हो उठता था। बच्चे आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगते थे।

कोई गाना सुनाओ बाबा !—किसी ने अनुरोध किया।

भूख से पेट जल रहा है, कलेजा फट रहा है। कैसे गाऊँ भाई ?

ऊपर खिड़की में से किसी दयालु रमणी ने एक चवन्नी गिरा दी। संन्यासी का उत्साह बढ़ा।

उसने कबीर का एक पद गाया। सब मुग्ध थे। उसके भावप्रदर्शन पर बच्चे भी हँस पड़े।

तान लगाता हुआ संन्यासी आगे बढ़ा। उसे अभी दूर तक जाना था। संध्या की लालिमा अपने सब चित्रों को एकत्र करके कहीं छिप जाना चाहती थी।

मठ के सपीप पहुँच कर. उसने सामने खंडहर की ओर दृष्टि दौड़ाई। किसी को न देख कर वह चुपचाप वहाँ खड़ा था।

उसने देखा, सामने झोपड़ी में से एक स्त्री हाथ में दीपक लिये आ रही है।

संन्यासी को खड़ा देख कर उसने चौंक कर पूछा—कौन है ?

मैं हूँ नारायण।

इस समय यहाँ कैसे खड़े हो बाबा ?

दिन भर का भूखा हूँ। चार आने पैसे मिले हैं। दूध पीकर ही संतोष करूँगा।

अभी दूध दुहने जा रही हूँ, मेरी गाय भूसा बिना टूट गयी है। समय का फेर है, अन्न के भाव भूसा हो गया है। कैसे जान बचेगी ?

सामने एक टाट पर नारायण बैठ गया। जमुना दूध दुह रही थी।

जमुना ने कहा—ऐसी प्यारी गाय है कि अपना पेट काट कर इसे खिलाती हूँ, फिर भी इसका पूरा नहीं होता। कैसी दुबली हो गयी है! तीन सेर दूध देती थी; लेकिन अब देखो इतना ही शेष बचा है।

जमुना ने संन्यासी के पात्र में दूध देते हुए कहा—यह रक्त माँस का नहीं किंतु सूखी हड्डियों का रस है।

(२)

निद्रा ने भूखे पेट को यंत्रणा का राग सुनाया। मठ की काली दीवारें और सील की दुर्गंध ने नारायण के जीवन के प्रति निराशा का पहाड़ खड़ा कर दिया था। वह मुक्त पवन के साथ विचरनेवाला जीव पेट की समस्या लिये भटक रहा था।

समय बड़ा विकट था। मनुष्य का जीवन दीपक की लौ पर जलनेवाले पतंगों का सा हो गया था।

हाहाकार का साम्राज्य था। देश में रोटी की समस्या ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया था कि केवल पूँजीपतियों को छोड़कर शेष सभी त्रस्त हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति में भिक्षावृत्ति पर निर्भर करनेवालों के भाग्य की कल्पना कितनी भयानक है!

नारायण प्रायः सभी प्रमुख तीर्थ स्थानों का भ्रमण कर चुका है, उसे कहीं भी आश्रय का ठिकाना नहीं दिखाई पड़ता। उसके मन में ग्लानि थी। आज गोसेवा पर प्रभावशाली व्याख्यान देकर उसने एक गठरी भूसा प्राप्त किया था। एक पोटली में आटा और छः पैसे लेकर वह मध्याह्न समय ही जमुना के खंडहर पर लौटा।

जमुना गोबर पाथ रही थी। भूसे की गठरी देखकर उसे कौतूहल हुआ। उसने पूछा—यह क्या बाबा ?

तुम्हारी गाय के लिये लाया हूँ। एक भक्त पैसा दे रहा था। मैंने कहा—मुझे भूसा दिलवा दो।—नारायण ने एक ही साँस में कह डाला।

गाय भूखी थी। जमुना को एक सहारा मिला। उसने पूछा—और तुमने क्या भोजन किया ?

कुछ नहीं, आटा मिला है, वही बनाऊँगा।

यहीं बना लो, मैं आग सुलगा देती हूँ।

जमुना ने सब प्रबंध कर दिया।

रोटी सेंकते हुए नारायण ने पूछा—तुम्हारे पति कहाँ हैं ?

उसने विवाह के दो वर्ष बाद ही मुझे छोड़ दिया और दूसरी औरत ले आया—जमुना ने धीमे स्वर में कहा।

अब कभी सामना नहीं होता ?

वह परदेस में रहता है, फिर लौटकर नहीं आया।

क्यों छोड़ दिया ? क्या कारण था ?—इत्यादि बातें असंगत समझ कर नारायण मौन हो गया; किंतु जमुना ने स्वयं स्पष्ट करते हुए कहा—सास झगड़ा करती थी। दिन रात की किचकिच कब तक चलती, यही समझ कर मैं चली आई। फिर उसने बुलाया नहीं।

किसी की करुण जीवनगाथा सुनकर आत्मकहानी जाग्रत हो उठती है।

नारायण ने बड़े यथार्थवादी स्वर में अपनी आपबीती सुनाई। घंटों बातें होती रहीं।

उस दिन नारायण के चले जाने पर जमुना के हृदय पर संन्यासी के गृहस्थ जीवन की सुखद कल्पनाओं का वर्णन अंकित हो गया था। वह सोचती थी, जो जिस जीवन से अधिक दूर है, उसे वही जीवन मधुर मालूम पड़ता है।

अधिक रात तक जागकर भी जमुना की समझ में यह रहस्य नहीं आया कि संन्यासी ने स्पष्ट शब्दों में अपनी प्रेम कहानी क्यों सुनाई ?

(३)

दिन पर दिन बीतने लगे।

जमुना और नारायण की घनिष्ठता बढ़ने लगी। प्रतिदिन नारायण जमुना से बातें करके एक तरह का संतोष अनुभव करता था। जीवन की लालसाओं

का आकर्षण बिजली की भाँति उसके मन में दौड़ जाता था। वह बावला होकर गुनगुनाने लगता; किंतु शांत होने पर गेरुआ रंग उसकी समस्त आकांक्षाओं को बधिया बैल बना देता था।

अबोध नारायण घर से भाग कर अपनी अल्हड़ अवस्था में एक महंत का शिष्य बना था।

दिन भर भटकने के बाद उस दिन खाली हाथ ही जब नारायण को लौटना पड़ा तो उसे चारों ओर निराशा का अंधकार दिखाई पड़ा।

खंडहर की झोपड़ी में प्रवेश करते हुए उसने देखा, जमुना उदास बैठी है।

नारायण को देख कर भी वह मौन थी।

नारायण उसके सामने बैठ गया। उसने पूछा—आज इतनी चिंतित क्यों हो ?

चिंता ही तो दुःखियों की खूराक है; लेकिन मैं अपने से अधिक तुम्हारे लिये चिंतित हूँ।

ऐसा क्यों ?

मैं समझती हूँ कि यह गेरुआ भेष उतार कर तुम गृहस्थ बन जाओ। संसार को भ्रम में डालना ठीक नहीं।

तुम ठीक कहती हो जमुना। मैं अपने एकाकी जीवन से ऊब उठा हूँ। मेरा कोई अपना नहीं, किंतु अब कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ता।

इस दुनिया में कोई भी सुखी नहीं है। गृहस्थ बंधन से छुटकारा पाकर अकेला रहना चाहता है और तुम उसी में उलझना चाहते हो। विधाता का कैसा विचित्र खेल है !

नारायण ने गंभीरता की आकृति बनाते हुए कहा—यदि मैं गृहस्थ बन जाऊँ तो जनता के व्यंग्य और उपहास का कारण बन जाऊँगा।

उपहास और व्यंग्य से मुक्त होना कठिन है। एक दिन मेरे कानों में खटखटा कर कोई कह रहा था कि संन्यासी से संसर्ग रखना उचित नहीं। पड़ोसवाले संदेह की दृष्टि रखते हैं।

क्या मेरे चरित्र पर लोगों को संदेह होता है ?

नारी के प्रति आकर्षण ही इसका संकेत करता है।

लेकिन तुम क्या समझती हो ?

मैं भी इसी दुनिया में रह कर तुम्हारे शब्दों में व्यंग्य और उपहास से बचना चाहती हूँ।

अच्छा क्षमा करना। मुझको एक तिनके का सहारा मिला था, वह भी गया। अब फिर कभी मेरे कारण व्यंग्य सुनने का अवसर तुम्हें नहीं मिलेगा। उत्तेजित होकर नारायण ने कहा।

जमुना की आँखें सजल हो उठीं। वह मौन थी।

बाहर निकलते हुए नारायण ने देखा—अगणित ताराओं के साथ उसका शून्य मन आकाश की शून्यता में मिल जाना चाहता है।

संतरे

अदृश्य की अस्फुट रेखा मानव के भाग्यपटल पर जाड़े के बादल की भाँति कब और कैसे उमड़ पड़ती है, इसे कौन जानता है ?

नटवर के संबंध में कोई भी दुर्गुण अथवा व्यसन किसी की आँखों में कभी खटका नहीं। पड़ोसी और संबंधी सभी उसके चरित्र की सराहना करते थे।

इस बीसवीं सदी में निश्चय ही वह देवता का स्वरूप है। वह गाँधी-वादी है। स्वप्न में भी उससे किसी का अपकार नहीं हो सकता। खटमल, मच्छड़ और गोजर को भी पकड़ कर वह नाली में डाल देता। उनकी हत्या नहीं करता।

छोटी अवस्था में ही उसका विवाह हुआ था। जीवन के मध्य में उसकी पत्नी बूढ़ी सी दिखलाई पड़ती थी। फिर भी उसकी वासना कभी अन्य किसी नारी की ओर तन्मय नहीं हुई।

दफ्तर में दिन भर घोर परिश्रम करने पर भी अपनी थकावट दूर करने के लिये उसे किसी तरह के नशे की आवश्यकता नहीं पड़ी।

इन सब वेशेषताओं पर तनिक भी ध्यान न देकर विधाता ने उसके भाग्य की रेखाओं का निर्माण किया था।

× × ×

तीन सप्ताह से दिन रात अपने पुत्र के पालने के सामने बैठा वह उसका मुँह देखता रहा। बच्चे को रोग से मुक्त करने के लिये अगणित बार देवी देवताओं से उसने वंदना की। पाँच कन्याओं के बाद यह छठा पुत्र उत्पन्न हुआ था। अतएव उसकी ममता स्वाभाविक थी। भगवान पर उसका अटल विश्वास था।

बालक की अवस्था सुधर रही थी। डाक्टर ने विश्वास दिलाया था कि वह कुछ दिनों में खेलने लगेगा। ज्वर चला गया था शिथिलता और दुर्बलता निवारण के लिए संतरे का रस पिलाने का डाक्टर का आदेश था।

जाड़े के दिनों में मीठा संतरा मिलना कठिन था। वह नगर के प्रत्येक फल बेचनेवाले की दूकान पर गया। बहुत खोज करने पर बूढ़े व्यवसायी ने एक टोकरी संतरा उसके सामने लाकर रखा।

नटवर को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—भाई, कितना मूल्य लोगे?

एक रुपये का एक बाबू—उसने उत्तर दिया।

अपनी संतान के लिये वह सब कुछ देकर भी संतरा खोज रहा था। उसने कहा—दाम अधिक माँग रहे हो।

बस एक बात। इससे कम नहीं होगा।—बूढ़े ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

नटवर पाँच के नोट के बदले में पाँच संतरे लेकर घर आया।

देखने में कितने सुंदर संतरे थे। छीलने पर चार तो एकदम खराब थे और पाँचवाँ सूखा था। उसकी आँखें सजल हो उठीं। संसार में इतनी धाँधली और जूआचोरी हो रही है। सब एक दूसरे की आँख में धूल झोंकना चाहते हैं। ऐसे कुसमय में, जब बच्चे का वही आहार था, तब भी धोखा! वाह रे मनुष्य! वह भुनभुना रहा था। उसने सूखे संतरे को पानी से भिंगोकर रस निकालने का प्रयत्न किया।

उसकी पत्नी क्रोध के आवेश में कहने लगी—इसे लेकर उसके यहाँ जाओ और पूछो कि इस तरह क्यों उसने ठगा?

नटवर के समझ में बात आ गई। कपड़े में छिलके और फाँक बटोर कर वह वहाँ पहुँचा।

बूढ़ा उसे देखते ही दूसरे से बातें करने लगा। नटवर वहाँ खड़ा हो गया। उसने कहा—यह कैसा संतरा दिया है बाबा!

कैसा है?

एकदम खराब, सूखा, सड़ा हुआ।

बाबूजी, देखने में संतरे कैसे थे?

देखने में तो सब ठीक थे। लेकिन सभी खराब निकले।

फिर उनके भीतर का हाल कौन जान सकता है?

मैं अपने बच्चे के लिये ले गया था। डाक्टर ने बतलाया था। इतना बड़ा धोखा तुम्हारे जैसे बूढ़े आदमी से होने की आशा नहीं थी।

बाबूजी, धोखा ! धोखा तो पग पग पर लोग एक दूसरे को दे रहे हैं। न्यायालय में भी धोखा हो रहा है। सरकारी कर्मचारी सब घूस खाकर धोखा दे रहे हैं। हमारे बड़े बड़े खद्दरधारी नेता कैसा धोखा दे रहे हैं ? इसे आप नहीं देखते और मेरे धोखे की बात करते हैं।

नटवर ध्यान से उसकी ओर देख रहा था।

बूढ़े ने कहा—आपने संतरा माँगा। मैंने दिया। आप हम दोनों ही उसके भीतर नहीं देख सकते थे। इसमें मेरा क्या दोष है ? पेड़ से टूटे इतने लंबे समय तक उसे सुरक्षित रखने की प्रशंसा न करके आप कहते हैं—धोखा दिया !

नटवर उसके तर्क के सामने कुछ भी उत्तर न दे सका। अपने रुपये वापस माँगने का भी उसे साहस नहीं हुआ।

छिलके के एक टुकड़े को लेकर इस तरह दबाया कि उसका रस उसकी आँखों में पड़ा। आँखें तिलमिला उठीं।

वह सोचने लगा—सचमुच संतरे की आकृतिवाली यह दुनिया रंगीन छिलके के भीतर, नीरस शुष्क होकर सबको भ्रम में डाल रही है।

समाधि

बहुत दिनों के बाद, वह संन्यासी लौटा था। एक समाधि की छाया में खड़ा होकर वह विश्राम लेने लगा। वह बहुत थका हुआ था।

वह उसी की प्रतिमा थी। उसने देखा, संगममर्र की वह समाधि जैसे हँसने लगी। यह भावों की उद्विग्नता में, प्रतिमा को संबोधन कर, कहने लगा—तुम पषाण हो, तुम कैलास की प्रतिमा बन गए हो, तुम्हारे रूप और बाहरी आवरण में कोई अंतर नहीं है, किंतु तुम्हारे पास हृदय नहीं! तुम अट्टहास नहीं कर सकते, तुम्हें किसी की प्रसन्नता या पीड़ा का अनुभव नहीं!! संसार के सब सुख हमसे थक कर चले जाते थे, उन्हें स्थिर न कर सका। इस शरीर पर बड़ा ममत्व था। इसीके स्मृति स्वरूप, अपने मोह को स्थिर रखने के लिये, तुम्हें बनवाया; परंतु तुम शरीर ही शरीर रहे! तुम्हारे भीतर स्पंदन नहीं, उच्छ्वास नहीं; तुम्हें आँसू बहाने नहीं आता!

किंतु प्रतिमा उसी तरह मौन थी।

संन्यासी उसी दिन से पर्यटन छोड़कर, अपनी ही समाधि का पुजारी बन गया। उसके मन में यह बात समा गई कि देखूँ, कोई भी मेरी समाधि पर आकर आँसू बहाता है या नहीं?

संन्यासी के वहाँ रहने से, गाँव के लोग उसे कोई शक्तिशाली देवता समझ कर, कभी कभी उस प्रतिमा की पूजा भेंट करने आने लगे। वन के फल फूल उसकी भूख शांत किया करते। किसी तरह उसका जीवन निर्वाह होने लगा। फिर भी, बहुधा, मनुष्यों की दृष्टि से वह अपने को बचाता था। किसी परिचित को देखता, तो पत्तों की घनी हरियाली में छिप जाता था।

बहुत दिन व्यतीत हो गए।

(२)

लता उसी गाँव की लड़की थी। उसका ब्याह नगर में एक सुशिक्षित युवक से हो गया था। किंतु, वह प्रायः बीमार ही रहा करती। उसकी माँ ने उसे बुला भेजा था, समाधि की पूजा करने के लिये। क्योंकि उस योगी की विभूति से कल्याण प्राप्ति में उसे दृढ़ विश्वास था।

उस दिन लता, अपनी एक सखी और माता के साथ, माधव वन के समीप, समाधि के पास आई। बहुत दिनों पर लता ने देखा कि कैलास की मूर्ति जैसे उसे प्रत्यक्ष दिखलाई दी। वह बड़े ध्यान से देखने लगी। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े।

लता की सखी कुंती कुछ भी न समझ सकी। उसने पूछा—लता कैसी तबीयत है? मुख उदास क्यों है?

लता की माँ उस समय समाधि की पूजा कर रही थी।

कुंती ने बार बार जिद करके पूछा—लता, इतना शिथिल क्यों हो रही हो? कुछ बोलो।

उसने एक ठंडी साँस लेकर कहा—कैलास, इस प्रांत का एक धनी व्यक्ति था। सुखों की खोज में, विलास की लालसा में, वह सदैव अतृप्त रहा। यही उसकी फुलवारी थी। मैं भी एक दिन उसमें फूल चुनने आई, मैं तब अपने को बालिका ही समझती थी। विलासी कैलास एकांत पाकर, मुझे रोककर कहने लगा—लता, तुम तो अब सयानी हो चली हो!

मैं भयभीत हुई, क्योंकि कैलास के नाम से गाँव की स्त्रियों में बड़ी सनसनी फैल जाती थी। मैंने कहा—आप मुझसे न बोलिए, मैं शपथ खाती हूँ। आपकी फूलवारी में न आऊँगी।

कैलास ने कहा—क्या मैं पिशाच हूँ? तुम इतनी डरती क्यों हो?

मैं अज्ञान थी। मैंने कहा—तुम इतने बदनाम क्यों हो?

वह सामने घुटनों के बल बैठकर कहने लगा—मैं आज से सच्चरित्र होने का प्रण करता हूँ, यदि तुम मुझसे विवाह करने की प्रतिज्ञा करो। लता, यदि तुम्हारे ऐसा निर्मल हृदय मुझे मिला होता, तो मैं इतना घृणित न होता। मैं बड़ा अभागा हूँ। आह! मेरे लिये संसार में कौन आँसू बहावेगा? कोई नहीं!

न जाने क्यों मैंने उसे उत्तर दिया—तुम किसी के लिये आँसू नहीं बहाते, दूसरे के आँसू पर हँसते हो, तो फिर तुम्हारे लिये कौन आँसू बहावेगा?

मैंने देखा, कैलास अचानक किसी निगूढ़ विचार सागर में डूब गया है? थोड़ी देर बाद, वह पश्चात्ताप के आवेग में कहने लगा—लता, तुमने मेरी

आँखें खोल दीं ! क्या वास्तव में एक दिन इस जीवन का अंत हो जायगा ? ओह, इस समाज में मृत्यु के पश्चात् कोई चिह्न भी तो नहीं रह जाता। यहाँ तो लोग जलाकर राख कर देते हैं। फिर संसार में आने का रहस्य क्या है ? मैं रहस्य को खोजूँगा। जाओ लता, मुझे क्षमा करो।

कुंती कुतूहल से सुन रही थी।

इसके बाद मैंने सुना कि कैलास का रहन सहन बदल गया है। उसे संसार के प्रति निराशा होते हुए भी एक कुतूहल सा था। मैं उसे दूर से देखती। वह बहुत बदल गया था। जैसे उसके हृदय में वासना और त्याग का द्वंद मचा हुआ था।

(२)

दूर देशों में शिल्प कला के कुशल कारीगर बुलाए गए। कैलास के इसी विलासकानन में उसके स्मृतिचिह्न के लिये यही उसकी प्रतिमा स्थापित हुई। विलास से बचा हुआ सारा धन उसने इसमें लगा दिया; और फिर तीर्थ यात्रा का निश्चय किया। यह समाचार सुनकर, सब मित्र, संबंधी और परिचित उससे मिलने के लिये गये। पर, मैं न गई। वही बात आज सहसा स्मरण हो आई थी।

कुंती विचार में लीन हो गई थी। उसने रहस्यमय दृष्टि से लता की ओर देखते हुए कहा—उसके संबंध में मुझे बहुत थोड़ा मालूम था, मेरा विवाह हो गया था, और मैं यहाँ से चली गई थी।

लता की आँखें डबडबा गई थीं।

कुंती ने उसकी पीठ थपथपाकर कहा—लता, तुमने भूल की। तुम्हारे हृदय में उसके प्रति घृणा न थी, वह प्रेम था।

लता नत शिर हो गई।

इतने में लता की माँ पूजा और प्रार्थना करके उसे पुकारने लगी।

माता ने कहा—लता, योगी तो आज नहीं है, तुझे आशीर्वाद कौन देगा ? आओ चलें, फिर किसी दूसरे दिन आवेंगे।

योगी झाड़ी में बैठा हुआ ध्यान से यह दृश्य देख रहा था, और उनकी सब बातें सुन रहा था। उसकी अभिलाषा हुई कि इस बार अपने को प्रकट

कर दें। उसने सोचा, यह कैसा रहस्य है कि जीवन के प्रत्यक्ष में जो नहीं आता, वह बाद में आकर आँसू बहाता है।

अब वह अपने को न रोक सका, और सामने आकर खड़ा हो गया। सबने भक्ति सहित नमस्कार किया। योगी ने कहा—लता, तुम्हारे उस दिन न आने से मेरी यात्रा खंडित रही, और मुझे लौटकर फिर इस समाधि पर आना पड़ा। तुम सुखी रहो। मैं अब कभी न लौटने के लिये फिर जाता हूँ।

आश्चर्य और कुतूहल से लता की माँ के हाथ से पूजा के सामान छूट पड़े। उसके मुँह से निकल पड़ा—अरे! यह तुम्हीं हो कैलास!

सुख

उत्तरदायित्वहीन श्यामलाल की गणना वैसे लोगों में होनी चाहिए, जो बुद्धिमान होने पर भी अपने स्वभाव की दुर्बलता के कारण पदच्युत हो जाते हैं। जब तक वह घर में रहते, अपनी स्त्री के आगे सिर न उठा सकते थे। उस सती के सामने वह अपने को अत्यंत नीच समझते थे। परंतु घर के बाहर होते ही वह अपने मित्रों के अनुरोध को नहीं टाल सकते थे।

एक दिन, उनकी स्त्री उनका तिरस्कार कर, अपने दो वर्ष के बच्चे को लेकर अपने बाप के घर चली गई। उन्होंने चुपचाप वह तिरस्कार सह लिया। सुख की लालसा ने उन्हें विपथ की ही ओर खींचा था। परंतु उन्हें तृप्ति न हुई।

वह मखमली बिस्तरे पर लेटे थे। लेटे लेटे उनके संमुख अतीत के सभी दृश्य फिर गये। वह विचार करने लगे—इतना सुख उठाया, मोटर फिटन पर घूम चुका, तरह तरह के थियेटर देख चुका, तरह तरह की सुंदरियों का छवि पान कर चुका; पर सुख फिर भी क्यों नहीं मिलता? मेरा मन चिंतित क्यों रहता है?

वह आलमारी में रक्खी हुई शराब की खाली बोतलों और अतर की छूछी शीशियों की तरफ देखते, और कभी कमरे की सजावट को सतृष्ण नेत्रों से देखते रह जाते! किंतु यह सब आज उन्हें दूसरे ही रूप में दिखाई पड़ते। मानों सब कह रहे थे—मेरी तरह तुम्हारे सुख के दिन भी खाली हो रहे हैं।

(२)

नीलाकाश में मेघों से छिपा हुआ चंद्रमा निकल पड़ता है; चकोर उसकी प्रतीक्षा करता है, भ्रमर फूलों का रस लेता है, पतंग दीपक का आलिंगन करता है। उसी तरह मानव की तरुण अवस्था में प्रेमतंत्री बज उठती है! उसकी झंकृति व्याकुल हो जाती है। वह हृदय को अनमना कर देती है और मनुष्य को पागल बना कर सैकड़ों राहों में घुमा देती है।

प्रेमतंत्री की झंकृति में एक नशा है। इस नशे के आवेश में मनुष्य सौंदर्य और विलास का इच्छुक बन जाता है, पर जब यह नशा समुद्र की लहरों की तरह पीछे की तरफ हट जाता है, तब उसके वास्तविक रूप का ज्ञान होता है।

वह नशा श्यामलाल को भी चढ़ा था। उस समय उनके नेत्रों के संमुख अंधकार का एक पर्दा पड़ गया था। वह सब कुछ भूल गये—खुद अपने को भी भूल गये।

किंतु अब अभिनय समाप्त होनेवाला था—आखिरी पर्दा गिरने में थोड़ी ही देर थी।

देखते देखते कई मास बीत गये। श्यामलाल को उनका घर अब काटने दौड़ता था। दिन भर एकांत में बैठे बैठे कुछ सोचा करते। उनकी तबीयत उदास रहा करती। अब उनसे कोई बात करनेवाला भी न था।

उनकी सब जायदाद बिक चुकी थी, केवल कोठी रह गई थी, तिसपर भी कर्जदारों के कड़े तकाजे सुनने पड़ते थे। नौकर चाकर चले गये, रह गया बेचारा एक बुधुआ!

(३)

चिंता और स्मृतियों ने श्यामलाल के हृदय में अपना घर बना लिया। उन्होंने अपना घर बार छोड़ कर निर्जन वनप्रांत की राह ली।

प्रभात का समय था। सूर्य आकाश में ऊपर उठ रहे थे। सूर्य की किरणें गंगा की इठलाती हुई लहरों का आलिंगन कर रही थीं। कभी कभी शीतल मलय पवन का एक झोंका शरीर को स्पर्श करता हुआ चला जाता था। दूर पहाड़ों की एक कतार दिखलाई देती थी। वह उसी स्थान पर खड़े हुए प्रकृति की अपूर्व शोभा देख रहे थे।

उन्होंने अपने अंतःपटल पर पूर्वकाल की स्मृति का एक रेखा चित्र देखा। वह दुखी हो गये। अपने दुख के भीतर उनकी अंतरात्मा किसी के प्रेम को छिपाये हुई थी; परंतु वह नहीं जानती थी कि किसे प्यार करती है, और अब भी कौन उसका सच्चा प्रणय पात्र है; कभी कभी वह पत्थरों और चट्टानों को संबोधन करके पूछती—तुम कौन हो? एक नीरव संकेत में उत्तर मिलता—हम लोग उसी श्रेणी के जीव हैं, जिस श्रेणी के तुम।

उस समय आकाश के सैकड़ों तारे, चंद्रमा और सूर्य भी चुपचाप मानों इसी उत्तर का समर्थन कर रहे थे।

मेघों की झड़ी, गंगा की सिकता, पृथ्वी की धूल, वृक्षों की पत्तियाँ, पक्षियों की कलध्वनि और मन की विचारमालाएँ साफ साफ कहती थीं कि जो तुम चाहते हो, हम लोग वह नहीं हैं। जाओ दूसरी जगह अपनी चाह की वस्तु खोजो।

\+ \+ \+ \+

तरह तरह के सुंदर दृश्य देखने, चिंता और विचार करने में एक मास बीत गया; पर सुख का पता न चला। उन्होंने सोचा था—जंगलों में भ्रमण करूँगा, तरह तरह के दृश्य देखूँगा, और प्राकृतिक सौंदर्य की उपासना में अपना सारा जीवन व्यतीत करूँगा। पर एक ही मास में वह चारों तरफ से ऊब गये। एक निराश प्रेमी को जिस प्रकार संसार सूना लगता है, उसी प्रकार उनको भी संसार से घृणा हो गई। संसार ने जब उन्हें ठोकर लगाई, तब ईश्वर में उनकी भक्ति उत्पन्न हुई। उनके विचारों की समाधि लग गई।

कुछ देर बाद उन्होंने फिरकर देखा—पास ही एक स्वामी जी गंगा तट पर बैठे माला फेरते हुए बार बार उनकी तरफ देख रहे हैं। स्वामी जी के नेत्रों से उनके प्रति सहानुभूति प्रकट हो रही थी।

थोड़ी देर बाद स्वामी जी ने कहा—किस चिंता में पड़े हो बचा ?

कुछ नहीं महाराज, मैं संसाररूपी नाटकगृह से अभिनय के उपयुक्त पात्र न होने के कारण, निकाल दिया गया हूँ।

स्वामी जी—एक दिन तो सभी निकाले जाते हैं, किंतु जो समय रहते स्वयं निकल जाय, वह संमानपूर्वक निकलता है। भगवान् की शरण में जाओ, वहीं शांति मिलेगी।

श्यामलाल—उसीकी आशा है। देखूँ, अपनी शरण में लेते हैं या नहीं। मुझे तो संदेह है।

स्वामी—संसार के वातावरण में संदेह ही है, इसकी छाया से हटो, शांति निश्चय मिलेगी।

श्यामलाल—तब महात्मा जी, आप ही दया कीजिये।

स्वामी—तुम स्वयं इसके लिये प्रस्तुत हो जाओ।

श्यामलाल ने स्वामी जी के चरणों में सिर रखा, और वस्त्र उतार कर दीक्षा लेने की तैयारी में लगे। दो एक धर्माधिकारी भी जुट गये। उपकरण प्रस्तुत हो गया। श्यामलाल का सिर मूँड़ने में एक क्षण की देर थी।

उसी घाट सीढ़ियों में दबकी बैठी हुई एक स्त्री बड़ी देर से यह कांड देख रही थी! अब वह आकर स्वामी के पास खड़ी हो गई। बोली—आप यह क्या कर रहे हैं? क्या संसार भर को भिक्षुक बनाकर आप पुण्य कर रहे हैं? जो कायर मनुष्य स्वयं जिम्मेदारी उठाने में असमर्थ हैं, उनके बोझ आप दूसरों से उठवाना चाहते हैं? क्या आपको मालूम है कि इनके पुत्र और स्त्री भी हैं, जिनकी संसार यात्रा का इन्होंने कुछ भी प्रबंध नहीं किया है!

स्वामी जी तेजस्विनी रमणी की इस फटकार को सुनकर सहम गये। उन्होंने श्यामलाल से पूछा—क्यों, तुम्हारे स्त्री और पुत्र भी हैं?

श्यामलाल ने सिर उठा कर कुंती की ओर देखा। उसकी दृष्टि में संकोच और दीनता थी।

कुंती ने उसी साहस से कहा—उठिये नाथ, चलिये संसार में। क्या धन ही सब सुखों की जड़ है? विलासिता से न रह कर हम लोग एक दूसरे के सहारे मनुष्योचित जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

तुम सुख की खोज खूब कर चुके अब तुम्हें मेरे साथ दुःख की भी खोज करनी होगी। देखो तो इसमें भी कुछ सुख मिलता है!—यह कह कर उसने श्यामलाल का हाथ पकड़ा, और कोठी की ओर ले चली।

\+ + + +

श्यामलाल अब एक साधारण गृहस्थ हैं। वैभव नहीं है, परंतु तृप्ति है। अब उन्हें सुख की खोज नहीं करनी पड़ती।

———

सुखिया

संसार की किसी भी महान् विदुषी की जीवन गाथा का विवरण देने में कथाकारों को सैकड़ों पृष्ठ कागज के काले करने पड़ेंगे, किंतु सुखिया के लंबे जीवन की कहानी केवल थोड़े से शब्दों में ही समाप्त हो जाती है।

सुखिया की आयु कितनी है ? यह वह स्वयं नहीं बतला सकती। उसके सिर के बाल दूध की भाँति सफेद हैं और उसके पोपले मुँह में एक भी दाँत नहीं है। उसके शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। उसकी कमर धनुष की आकृति धारण कर चुकी है और उसका रंग अंधेरी रात की तरह काला है।

सुखिया के परिवार में कोई नहीं है। मिट्टी के पुतले एक एक कर मिट्टी में मिल गये। कंटीली झाड़ियों जैसी घनी स्मृतियाँ उसे उलझाकर रुदन और क्रंदन द्वारा मुक्त करती हैं।

सुखिया एक निर्जन स्थान में रहती है। जब वर्षा और अंधड़ ने उसकी झोपड़ी का अस्तित्व नष्ट कर दिया तब उसे स्मरण आया कि उसके पति ने अपनी युवावस्था में चट्टान काटकर जो एक गुफा बनाई थी वही उसके निवास का स्थान बनेगी। उसने उस गुफा को साफकर अपने रहने के उपयुक्त बना लिया। उसे जंगली पशुओं से भय नहीं था, आग जलाकर वह उन्हें चैतन्य कर देती थी।

उसकी गुफा में अभी तक लकड़ी काटनेवाली कुल्हाड़ी और मिट्टी खोदने वाली कुदाल लटक रही थी, किंतु उसका उपयोग करनेवाला चला गया था। आज भी वे वृद्धा की सुरक्षा के अवलंब थे। सुखिया की शक्ति क्षीण हो रही थी, किंतु उसमें आत्मबल था। आवश्यकता पड़ने पर वह सब कुछ कर सकती है।

वह अपनी गुफा से निकलकर चली जा रही थी। सूर्य आकाश के मध्य में था। पृथ्वी ज्वाला से धधक रही थी। उसके पैर झुलस रहे थे, किंतु वह आगे बढ़ रही थी। उसने देखा फसल काटने के बाद खेत सब ऊसर जमीन का रूप धारण किये हुए हैं। हरियाली कहीं दिखाई नहीं पड़ती थी! सर्वत्र सुनसान था। पहाड़ी पर एक भी भेड़ या गाय की छाया भी नहीं दिखाई पड़ती थी और आकाश से बिदा लेकर पक्षी कहीं लुके छिपे थे।

वह पहाड़ी मार्ग पर बिखरी हुई पीली निर्जीव घास को रौंदती हुई दूर बहुत दूर, उस चश्मे के समीप पहुँची। यहाँ शांति थी। दुग्ध पवन जल धारा का स्पर्श कर पुलकित हो रहा था।

झाड़ियों के झुरमुट से छोटी रंग विरंगी चिड़ियाँ चहक रही थीं। कुछ दूर पर एक हिरन अपनी प्यास बुझा रहा था।

सुखिया ने अपनी अंजुली से मुँह धोया। जल और पवन ने उसके तन में संचार उत्पन्न किया।

बीते दिनों की स्मृति सहसा उसकी आँखों के संमुख दौड़ने लगी। कितनी बार वह इन स्थानों पर आई, कभी अपने पति, पुत्र और बहू के साथ...यहीं भोजन बना था। दिन भर यहीं पर विश्राम किया था। यहीं समीप में ही उसे एक शेर का सामना करना पड़ा था, लेकिन वह निर्भय थी, शेर चुपचाप अपने रास्ते चला गया। तब से संसार में कितने परिवर्तन हुए!

उसे जीवन में सबसे बड़ा आश्चर्य उस दिन हुआ था जब उसने पहली बार धुँए की गाड़ी देखी थी। उसमें बैठा कर आदमी लड़ाई पर भेजे जाते हैं, फिर वे लौटते नहीं!

अभी उस दिन रात में आकाश में घोर गर्जन के साथ उसने लाल हरी आँखोंवाला प्रेत उड़ते हुए देखा था। ओह! कितनी तीव्र गति से वह जा रहा था। सुखिया को यह नहीं ज्ञात था कि उसी हवाई जहाज में कुछ वे स्त्रियाँ भी थीं जो 'थर्ड इंटरनेशनल वोमन कांफ्रेंस' में संमिलित होने के लिये जा रही थीं। यह समान अधिकार और विज्ञान के आविष्कार और चमत्कार से सुखिया सचमुच अनभिज्ञ थी। जो कुछ उसे ज्ञात था वह प्रेतों की रचना थी।

वह उठी और अपने कार्य में लग गई। जलधारा के किनारे किनारे वह घास काटती गई। उसकी खुरपी तेजी से चल रही थी। वह इस कार्य में कुशल थी। यही उसकी जीविका का अवलंब था।

उसने आकाश की ओर देखा, धीरे धीरे भगवान् भास्कर को अस्ताचल निगल रहा था। लेकिन अभी तक सुखिया का बोझ पूरा नहीं हुआ था। कल ठाकुर साहब के साईस ने कहा था कि अब घास मत ले आना, जरूरत नहीं है। सुखिया ने समझा था कि बोझ कम होने के कारण ही वह मना करता था; इसलिये आज विशेष प्रयत्नशील थी।

क्षितिज की लालिमा धुंधली हो रही थी। सुखिया रस्सी के फंदों के जाल में घास समेटकर बाँध रही थी। बोझ भारी था, किंतु साहस से उसने उसे अपनी पीठ पर लादा। रोटी का प्रश्न था, विकट समय था, खेतों से अन्न उड़ जाता था। बाजार में नियंत्रण था। सुखिया अपने जीवन से ऊब उठी थी। यह पेट की ज्वाला कैसे शांत होगी ?

मार्ग में बोझा रखकर सुखिया विचलित होकर अश्रुपात कर रही थी। रोना ही तो एकमात्र उसका साधन है। अपने माता पिता की अकेली कन्या होने के कारण बचपन में माया ममता की गोद में वह पली थी। पति के यहाँ आते ही उसकी गृहस्थी चमक उठी थी। गाय, भैंस बैल, बकरी आदि से उसका वैभव परिपूर्ण था। दो हल की खेती में परिवारभर व्यस्त रहता था।

भगवान ने सब कुछ दिया और छीन लिया। सुखिया के भाग्य में यह दिन भी देखना बदा था कि वह फसल कटने पर दूसरों के खेतों पर जा कर एक एक दाना एकत्र करती, फिर भी इस चांडाल पेट की व्यवस्था पूर्ण न हो पाती थी।

ठाकुर साहब के अस्तबल के सामने जिस समय वह पहुँची उस समय तक उसके अश्रुकण ढुलककर ओठों पर शुष्क हो गये थे। उसने देखा कि अस्तबल में घोड़ा नहीं था, उसके स्थान पर रंगीन चमकती हुई पों पों करने-वाली मोटर थी।

साईस ने कहा—घोड़ा गया और यह मोटर घास नहीं खाती, यह तेल पीती है। मिट्टी से निकलनेवाला तेल !

सुखिया ने निराश होकर जिह्वा ओठ पर घुमाया। सूखे आँसू नमक बन चुके थे। मिट्टी से उत्पन्न होनेवाला नमक !

स्पष्टवादी

इस बीसवीं सदी में सभी वस्तुओं के परखने के विशेषज्ञ होते हैं। उनकी कसौटी पर अनुमान में प्रायः बहुत कम अंतर पड़ता है, किन्तु मनुष्य को परखनेवाले मनोवैज्ञानिक अपने अनुसंधान में अभी पूर्ण सफल नहीं हो पाये हैं। कभी-कभी चरित्रों की संपूर्ण रेखाएँ बिखेर कर भी वे भ्रम में पड़ जाते हैं। सदानंद के संबंध में भी कोई अपना मत स्थिर नहीं कर पाता था। वह एक कौतूहल था।

सदानंद नग्न सत्य का समर्थक था। पाश्चात्य देशों के यथार्थवादी साहित्य का उस पर विशेष प्रभाव पड़ा था। जीवन में वास्तविकता की खोज जब वह ऐसे साहित्य में करता तब वह अपने को अधिक समीप पाता था।

मौसी के आश्रय में पलकर अनाथ सदानंद बचपन से ही स्वतंत्र प्रकृति के पथ पर अग्रसर हुआ था। जीवन में कटुता का आभास उसे अलहड़पन में ही मिला था। भविष्य में अपने पैरों पर खड़े होकर चलने का संकेत कोई गुनगुना जाता था।

युवाकाल में परिस्थितियों की उलझन और निराशा की लुकाछिपी ने सदानंद को स्थिरता की अटल अट्टालिका पर चढ़ने नहीं दिया। वह सदैव चंचल मन लेकर अनमना भटकता रहता।

सदानंद के हृदय में कितनी टीस भरी है, जो एकांत रजनी में तारों से भरे आकाश में चिनगारियों की भाँति मन में सुलगती रहती है। उनके प्रकाश में एक दिव्य प्रतिमा की रूपरेखा बनती बिगड़ती है। सदानंद की आकांक्षाओं का चाँद बादलों में छिपा हुआ है। वह सुखद कल्पनाओं में लीन हो जाता है।

परोसी थाली में अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन की टीका टिप्पणी करनेवाले पूँजीवाद के प्रति स्वभाविक घृणा सदानंद के मन में थी। चैतन्य होने पर उसे निर्धन जगत के जीव कीट पतंगों की भाँति प्रतीत होते थे।

दिनभर परिश्रम करके संध्या समय जब वह कार्यालय से घर लौटता था तब भी उसे शांति नहीं मिलती थी। मासिक वेतन मौसी को अर्पित कर देने पर कुछ पैसों के लिए उसे अपने मन को संकुचित कर लेना पड़ता था।

सदानंद एक दैनिक समाचारपत्र के संपादकीय विभाग में समाचारों का अनुवादक था। नियमित समय पर कार्यालय न पहुँचने पर कभी कभी उसे प्रधान का व्यंग्य सुनना पड़ता था। उधर घर में कभी ठीक समय पर भोजन न मिलने के कारण उसका कार्यक्रम व्यवस्थित न हो पाता था। वह अपने जीवन से खीझ उठता था।

उस दिन कार्यालय से अवकाश लेकर वह भूखे पेट ही प्रगतिशील-लेखक-संघ की बैठक में संमिलित हुआ था। वहाँ से लौट कर वह दफ्तर आया। पत्र मशीन पर था। संपादक मंडल कार्य समाप्त कर चुका था।

सदानंद को देखते ही संपादक बोल उठे—कहिये संघ की बैठक में क्या हुआ ?

अभी लेखकों का सहयोग विशेष रूप से नहीं मिल रहा है; फिर भी संघटन हो रहा है।

पाश्चात्य देशों की भाँति हमारे देश में ऐसे साहित्य को कभी भी महत्त्व नहीं मिलेगा।

किंतु समय बहुत आगे बढ़ रहा है। इस क्रांति के युग में जर्जर आदर्श अपना रूप विकृत कर बैठा है। जीवन में वास्तविक चित्रण को ही श्रेय मिलेगा।—सदानंद ने रूखे स्वर में कहा।

लेकिन मेरा मत तो यह है कि लेखक के लिये नग्न वर्णन करना उस टुटपुँजिये वणिक की तरह है जो थोड़ी सी पूँजी से अपनी परचून की दूकान ग्राहकों के यहाँ लहने में फँसा कर खाली हाँडी गगरी और टीन के कंस्टर को ही अपना समझता है।

आप चाहे जो समझें। देश में, पड़ोस में अथवा घर में अश्लील कृत्यों पर सदैव ही परदा डाल कर रखने अथवा मुँह फेर कर हट जाने से कहाँ तक सुधार हो सकेगा ? इसे आप ही समझ सकते हैं।

दुराचार, अश्लीलता और जीवन का विकृत रूप तो सृष्टि के आरंभ से ही मानव अपने साथ लेकर आया है। उसका वर्णन कर—उस ओर संकेत कर—हम उसे रोक नहीं सकेंगे बल्कि उसे प्रोत्साहन ही मिलेगा।

आपका मत आपके काम आयेगा दूसरे उससे लाभ नहीं उठा सकेंगे। आवेश में सदानंद बोल उठा।

प्रधान के प्रति असम्मानसूचक प्रयोग सभी को बुरा लगा। मौन वातावरण ने नाटकीय दृश्य परिवर्तन करके यह तर्क समाप्त किया।

दूसरे दिन सदानंद को एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि कार्यालय में अब उसकी आवश्यकता नहीं है।

प्रधान से एक बार क्षमा याचना करने पर स्थिति उसके अनुकूल हो सकती थी; किंतु सदानंद के स्वभाव की झुँझलाहट ने इसे पसंद नहीं किया।

(२)

कार्यालय से अलग होने पर सदानंद की दिनचर्या ही बदल गयी। देशभक्ति के अपराध में दंड भुगत कर जेल के फाटक से मुक्त होते समय जो भावनाएँ उठती हैं, उन्हीं से कुछ मिलती जुलती विचार धाराएँ सदानंद के मस्तिष्क में भी प्रवाहित हो रही थीं।

जीवन को संयमित और नियमित बना कर कठपुतलों की तरह मशीन की खटखट में मिल कर कार्य करने की प्रचलित प्रणाली का वह घोर विरोधी बन गया। पाठशाला और कार्यालय की घड़ियों के संकेत पर चलनेवाले जीवन ने बंधन से छुटकारा पाकर स्वच्छंद पवन में जी खोल कर साँस ली।

घर से भोजन करने के उपरांत चाय के अड्डों पर जाकर गप्प लड़ाना और पुस्तकालयों में बैठ कर आधुनिक साहित्य का अध्ययन करना ही सदानंद को प्रिय था।

नौकरी छोड़ने का रहस्य सदानंद ने अपनी मौसी से नहीं खोला। अब वहाँ आदमी कम कर रहे हैं आदि बातें समझा कर ही काम चल गया; किंतु बेकारी में जब अपनी संतान पहाड़ की तरह भारी हो जाती है तो सदानंद की बात ही क्या ?

सदानंद व्यंग्य, उपहास और टीका टिप्पणियों का अभ्यस्त हो रहा था। उसे लोक लज्जा के प्रति कोई ध्यान नहीं रहा।

उस दिन एक बंगाली सज्जन से चाय की दूकान पर फिर बहस छिड़ गयी। आरंभ में गोर्की, नेट हेमसन, आस्कर वाइल्ड, डी० एच० लारेंस और सोलोखाव की रचनाओं की विशेषताओं का वर्णन सदानंद कर रहा था। नवयुवक सोवियट सोलोखाव के प्रति सदानंद के हृदय में कितना सम्मान

भरा है, यह बंगाली सज्जन को पसंद नहीं आया। वह शरत् के समर्थक थे। उनका मत था—आदर्शवाद की छाया में यथार्थ वर्णन की सीमा निर्धारित करके शरत् ने एक नवीन पथ दिखलाया है।

सदानंद ने कहा—हाँ, ठीक है; भारतीय लेखकों में शरत् यथार्थवादी चित्रण करने में सब से अधिक सफल हुए हैं। उन्होंने समय को पहले से पहचानने का प्रयत्न किया। यदि प्राचीन रूढ़ियों के राग में वह अपना भी स्वर मिलाते तो निश्चय ही समय ठुकरा कर उन्हें अलग कर देता।

बंगालियों में अपनी जातीयता का गर्व होता है। शरत् की प्रशंसा में वह गद्गद होकर कुछ ऐसी बात कह गये जिससे सदानंद उत्तेजित हो उठाए। उसने कहा—महाशय भले ही आपको बुरा लगे; किंतु आरंभ में कलाकार के व्यक्तित्व को कोई नहीं समझता। आपके शरत् के चरित्र के ही संबंध में कितनी बातें फैली थीं; किंतु उन्होंने स्वयं सब अनुभव नहीं किया होता तो वे लिखते ही क्या ?

बंगाली महाशय कहने लगे—कलाकार के साहित्य से प्रयोजन है, उसके चरित्र की बातों से क्या तात्पर्य ?

आप चरित्र और कला को अलग नहीं कर सकते। चरित्र का प्रभाव कला पर अवश्य पड़ता है।

अंत में तर्क इतना बढ़ गया कि बंगाली महाशय सदानंद को मारने के लिए उठ पड़े; किंतु बैठे हुए लोगों ने वातावरण किसी तरह शांत किया।

(३)

कई मास बीत चुके।

सदानंद ने चाय के अड्डों से पान और सिगरेट का व्यसन भी अपना लिया था।

शिक्षित समुदाय में अँग्रेजी शिष्टाचार के अनुसार बिना परिचय के किसी से बातचीत करना उचित नहीं समझा जाता; लेकिन सदानंद दिल खोल कर सबसे बातें करता, क्षण भर में ही वह परिचय कर लेता और दो चार दिनों में इतनी घटिष्ठता बढ़ जाती कि वह अपनी स्पष्ट कहानी सुना कर उसे अपनी आवश्यकता और निरीहता की ओर आकर्षित कर लेता।

दिन पर दिन सदानंद का खर्च बढ़ता ही गया! मौसी ने उसका विवाह करना भी निश्चित कर लिया था; किंतु आर्थिक प्रश्न संमुख था। सदानंद नौकरी छोड़ कर अपनी साख खो चुका था।

मौसी के कहने पर वह यही उत्तर देता कि मैं इस तरह विवाह नहीं चाहता। जब समय आयेगा तो अपनी पसंद की स्त्री चाहे अनाथालय से ही मिले; ले आऊँगा। मैं व्यर्थ के प्रपंच में अभी नहीं पड़ना चाहता।

मौसी कहती—चल, तेरी अनाथालय की बहू को कौन अपने घर में रखेगा?

उस दिन बीच सड़क पर लहनेदारों ने सदानंद को अपमानित किया। सभी का बाकी था। चाय, पान और सिगरेट के दूकानदार उसके वादे से घबड़ा उठे थे। वह बातें बना कर फुरसत पा जाया करता था, लेकिन अब वे मानने को तैयार न थे।

सदानंद चुपचाप घर में पड़ा रहता था। अब घर से बाहर निकलने का साहस नहीं होता था।

संध्या हो चुकी थी। उसने सुना कोई द्वार खटखटा कर उसे पुकार रहा है। खिड़की में से देखते ही वह शिथिल हो गया। आज सब रहस्य खुल जायगा। वह हताश होकर मौन हो गया। कोई उपाय नहीं।

कुछ देर में सीढ़ियों से उतरते हुए उसने मौसी से कहा—मैं अभी आता हूँ। बाहर जो लोग आवाज दे रहे हैं, उन्हें कुछ उत्तर मत देना।

उस समुदाय में एक काबुलीवाला भी था, जिसने अन्य सभी को सदानंद का मकान बतलाया था। सबका प्रतिनिधि बन कर उसने तीखे स्वर में पुकारना आरंभ किया; किंतु उत्तर न मिलने पर वह द्वार पीटने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि द्वार टूट जायगा। पड़ोस के लोग एकत्र हो गये। लोगों के पूछने पर काबुलीवाले ने बतालाया अपने विवाह के लिए दो सौ रुपये लेकर न तो सदानंद सूद देता है और न असल ही। जब मिलता तब खूब खुल कर बातें करता। आज उसका सिर फोड़ दूँगा।

और लहनेदारों का भी यही आरोप था कि आज कल करते करते महीनों बीत गये। अब इस तरह नहीं चलेगा।

रात्रि हो रही थी। भीड़ में से एक परिचित ने घर में प्रवेश कर मौसी को सब रहस्य समझाया। बाहर आकर उसने कहा—अब वह इस घर में नहीं रहता। व्यर्थ यहाँ खड़े रहने से कोई लाभ नहीं होगा। वह जहाँ मिले उससे वसूल करो।

भीड़ के बीच में डण्डा पटकते हुए काबुलीवाले ने कहा—जहाँ भी होगा मैं उसके विवाह का रुपया उसकी मिट्टी से वसूल कर लूँगा। धोखेबाज! मैं नहीं जानता था कि मेरे साथ चाल करेगा।

अन्य लोगों ने समर्थन करते हुए कहा कि उसकी स्पष्ट बातों के ही सब शिकार हुए। किसी को भी ऐसी आशा नहीं थी।

लेकिन सदानंद से कोई पूछे तो वह यही उत्तर देगा कि परिस्थिति के कारण ही ऐसा हुआ। उसकी हार्दिक इच्छा ऐसी नहीं थी।

स्वर्ग

वाटिका में सैकड़ों फूल झूम रहे हों, सौरभ के भार से लदी हुई वायु धीरे-धीरे बह रही हो, चारों तरफ चाँदनी छिटकी हुई हो; उस समय मैं अपने सजीले भवन में गद्दे की स्प्रिंगदार शय्या पर लेटे हुए, अधखुली आँखों से स्वर्णकांतिमयी सुंदरियों का दल देखूँ।—और ? और, देखूँ रुनझुन करते हुए उनका चंचल थिरकना। यही मेरी सौंदर्योपासना है।

मैंने कहा—भाई मनोहर, यह सब धन की लीला है !

उसने कहा—हृदय का खेल है।

(२)

उस दिन पूर्णिमा थी। आकाश के नीले सरोवर में पूर्ण चंद्र विकसित कमल की भाँति खिला हुआ था।

महीनों बाद मैं मनोहर से मिलने गया।

उसने स्वागत करते हुए कहा—अहा, आज बहुत दिनों पर आ तो गए।

हाँ—कहकर मैं बैठ गया।

थोड़ी देर तक बैठे रहने के बाद, मनोहर ने सामने के कमरे का रंगीन पर्दा धीरे से हटा दिया। आश्चर्य ! उसकी पूर्व कल्पना सचमुच आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो गई।

बिजली की रोशनी से कमरा जगमगा रहा था। चारों तरफ सुगंधि उड़ रही थी। कितनी ही षोड़शवर्षीया कामिनियाँ नाचगान की तैयारी कर रही थीं। कमरा अभी तक सजाया जा रहा था।

मनोहर ने कहा—देखो, यही स्वर्ग है। यही सुंदरियों का प्यारा देश है।

मैंने कहा—हाँ, यह स्वर्ग हो सकता है; यहाँ स्वर्गीय सुंदरता भी है। परंतु शांति ?

मैं बैठा हुआ बाहर से उनका बिजलियों की तरह नाचना देखता रहा—रात भर मदिरा और नृत्य का समारोह चलता रहा।

चार बज रहा था—कामिनी की भीनी भीनी महँक से मस्तक भर रहा था—नूपुरों की झनकार पास में सुनाई पड़ी। मैंने देखा—तरला जाने के लिये तैयार थी—और मनोहर उसकी बिनती कर रहा था। मदविह्वल मनोहर—मान छुड़ाने में असमर्थ रहा।

तरला चली गई।

मनोहर हताश होकर बैठ गया—जागरण और मदिरा से खिन्न होकर हरी दूब पर लेट गया—बेसुध !

मैंने ऊपर की ओर आँख उठाकर देखा—अनंत की गोद में सैकड़ों तारों के सहित चंद्रमा शांति से अपना अस्तित्व मिटा रहा था। उसमें भी प्रभात का स्वर्गीय सौंदर्य था।

स्वराज्य कब मिलेगा?

इस संसार में कोई पता लगाये, तो उसे मालूम होगा कि प्रशंसकों से अधिक निंदकों की संख्या है। ऐसा एक भी भाग्यशाली मनुष्य न होगा, जिसकी सभी प्रशंसा करनेवाले हों।

केशव भी एक ऐसा ही मनुष्य था। दुनिया के लोग चाहे जो कुछ कहें, इसकी उसे कुछ परवा नहीं; पर उसकी अपनी स्त्री जब भीषण आकृति बनाकर उसकी कीर्त्ति का गान करती है, तब उसका हृदय आग हो उठता है। यही उसे सबसे बड़ा दुःख था। वह मन मसोस कर रह जाता।

केशव गरीब था, नशे का गुलाम था। जो कुछ पैसा आता, स्वाहा हो जाता और सदैव ही अपने को अभाव के पंजे में जकड़ा हुआ देखता। वह हजार बार मन में निश्चय कर चुका कि अब अपनी कमजोरियों को सुधार के बंधन में बाँधकर अपने जीवन को सुखी बनावेगा; लेकिन नशे ने उसे बरबाद कर दिया।

जब उसका कोई हितैषी समझाते हुए कहता—इस नशे के कारण तुम कितने दुर्बल होते जा रहे हो! देखो, आँखें बैठ गई हैं, शरीर लकड़ी हो रहा है; तब वह मुस्कराते हुए कहता—अरे भाई, मुझे तो बिना नशे के आदमी की सूरत प्रेत सी मालूम पड़ती है।

समझानेवाला भी हँस पड़ता। ऐसा विचित्र था केशव!

वह गप्पी भी साधारण न था। गाँजे का दम लगाकर वह इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका बन जाता। महात्मा गाँधी ने ऐसा मंत्र मारा कि अंग्रेजों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई—यह उसका अंतिम उत्तर कभी कभी देश की राजनीतिक अवस्था पर होता।

केशव था तो अपढ़, लेकिन कभी नशे में ऐसी अनूठी बातें कहता, जो उसके पास बैठे हुए साथियों की समझ में न आतीं। वे झूठ ही हाँ-में-हाँ मिलाते जाते—यह समझकर कि केशव के नशे पर रंग चढ़ गया है।

मगर यह सब बातें बाहर के लिए ही थीं। घर में घुसते ही केशव

अपराधी के समान अपनी पत्नी के संमुख खड़ा हो जाता। उसकी दुनिया भर की योग्यता खाक में मिल जाती। अपनी कायरता के प्रति सैकड़ों जली कटी बातें सुनकर भी वह चुप रहता। यही उसकी विशेषता थी।

कभी किसी दिलदार गप्पी से भेंट हो जाने पर रात को उसके जल्दी घर पहुँचने में अवश्य ही बाधा पड़ जाती थी। वह धुकधुकाता हुआ घर पहुँचता। द्वार खटखटाता। बहुत देर के बाद आँखें मलते और बड़बड़ाते हुए उसकी अर्धांगिनी ऊपर से कहती—जाओ, जहाँ इतनी देर तक थे, वहीं जाकर सोओ; यहाँ आने का क्या काम था ?

दाँत निकाले हुए उस घोर अंधकारमयी रात्रि में केशव कहता—अरी, खोल दे, अब से फिर कभी विलंब न करूँगा।

केशव के सैकड़ों बार गिड़गिड़ाने पर कहीं वह पिघलती। बड़ी शोख औरत थी। भला बुरा जजमेंट दे ही देती थी। उसकी इस शाही तबीयत पर कोई हँसता, कोई मुस्कुराता !

(२)

उन दिनों देश में नई हलचल मची हुई थी। स्वतंत्रता के प्रभात में जागृति की किरणें फैल चुकी थीं। जीवन मरण का प्रश्न खिलवाड़ हो गया था। केशव की अब सबसे बड़ी असुविधा यह थी कि वह पहले की तरह आसानी से अपने नशे की चीज नहीं पा सकता था। लुक छिपकर किसी तरह इतने दिन कटे थे, किंतु अब समय बड़ा विकट आ गया। उसको भली भाँति प्रतीत होने लगा कि देश की वर्तमान समस्या के प्रति वह घोर अन्याय कर रहा है।

एक वे हैं, जो दूसरों की भलाई के लिये अपने प्राण तक अर्पण करने को प्रस्तुत हैं और एक मैं हूँ··· ये विचार अनेक बार केशव के हृदय में उठे थे। प्रतिदिन वह निश्चय करता—अब कल से नशा नहीं करूँगा। सबेरा होता, दोपहर बीतती, संध्या हो जाती और वह नशे के लिए विकल हो उठता। उस पिकेटिंग के युग में भी अपनी कार्यसिद्धि पर उसे प्रसन्नता होती।

उस दिन की घटना कुछ ऐसी विचित्र हुई कि केशव का मन बदल गया। जीवन में पहली बार उसे अपने ऊपर घृणा हुई।

संध्या हो गई थी। चारों ओर मनहूसी छाई हुई थी। रोजगारी, व्यापारी, जमींदार, किसान, सभी हाहाकार कर रहे थे। नशे के ठीकेदारों की तो जीविका ही नष्ट हो रही थी। दिनभर वे हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते; उनकी मातमी सूरत पर आगामी इतिहास के कुछ पन्ने स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

महात्मा गांधी की जय !
भारत माता की जय !!

वह देखो। गाँजा खरीदनेवाला आ गया है।

स्वयंसेवकों का दल चौकन्ना होकर देखने लगा। केशव खिड़की के सामने आकर खड़ा हो गया। देखा, उस जूते सीनेवाले मोची के चरणों पर कितने ही सनातनधर्मियों की संतानें अपना मस्तक पवित्र कर रही थीं; मगर वह किसी की नहीं मानता था। हाथ जोड़कर, पैर पकड़कर, बहुतेरा समझाया; पर वह किसी तरह न माना—अटल हिमाचल बना रहा।

भीड़ में से किसी ने कहा—अरे यह पुलिस का भेजा हुआ है।

दूसरे ने इसका समर्थन किया—ऐसा ही है साला !

केशव चुपचाप एक कोने में खड़ा यह सब दृश्य देख सुन रहा था।

कोलाहल मचा। भीड़ के लोग उसे चपत मार रहे थे। स्वयंसेवक ऐसे लोगों को मना कर रहे थे। दो स्वयंसेवक दोनों पैर पकड़े हुए बैठे थे। स्थिति भयानक होती जा रही थी।

उसी समय लाल पगड़ी का दल सामने आता दिखाई दिया। दर्शक देशभक्त लोग जान लेकर भाग चले ! जनता खलबला उठी। स्वयंसेवक साहस के साथ डटे रहे।

दारोगा ने आगे बढ़कर स्वयंसेवकों को हटाने की चेष्टा की; किंतु सफल न हुआ। अंत में झुँझलाकर उसने हंटर प्रहार करना आरंभ किया।

केशव अब तक देखता रहा। अब उसकी सहनशक्ति के बाहर की बात हो गई। उसने बड़ी दृढ़ता से कहा—

छिः ! इस तरह निरपराध बालकों को पीटते आपको लज्जा नहीं आती ? धिक्कार है !

इसे भी पकड़ो।—कहते हुए दारोगा ने सिपाहियों की ओर शासन भरी दृष्टि से देखा।

आज्ञा का पालन हुआ। केशव को भी पकड़कर उन स्वयंसेवकों के साथ ले चले।

मकानों की छत पर से स्त्रियों ने कहा—बंदेमातरम्!

बालकों का झुंड चिल्ला उठा—इनक़लाब जिंदाबाद!

उस वर्ष, देश के प्रत्येक नगर में, प्रति दिन ऐसी घटनाएँ होती रहीं।

(३)

बरसात की काली रात सन्नाटे से आलिंगन कर रही थी। मनुष्य, पक्षियों की भाँति, संध्या से ही अपना मुँह छिपाकर घर में पड़े रहते थे। प्रति दिन तलाशियों की धूम मची थी। राजभक्त लोग भी न बच सके। देश के अधिकांश नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे। हड़ताल के कारण बेकारी बढ़ रही थी। नगर में ऐसा भयानक दृश्य था, मानों महाश्मशान पर भैरवी नृत्य कर रही हो। बड़ी बिकट समस्या थी!

केशव पिट जाने और गालियाँ खाने के बाद थाने से बाहर निकाल दिया गया। पानी बरस रहा था। उस सुनसान सड़क से वह चला आ रहा था। उसके हृदय में प्रतिहिंसा के भाव जाग्रत हुए। वह जैसे समस्त अत्याचार को पल भर में प्रलय की अशांत लहरों में डुबा देने की कल्पना में लीन हो गया।

सहसा कुत्तों के भूँकने से वह सचेत हुआ। घर न जाकर वह कांग्रेस के शिविर की ओर चला। वह अपने अटल प्रण पर दृढ़ता की साँस भरते हुए शिविर के द्वार पर खड़ा हो गया। मंत्री अभी तक बैठे काम कर रहे थे। कल नगर भर के कार्यकर्त्ताओं का सम्मिलित जलूस निकलेगा, और बड़ी जोरदार सभा होगी—उसीकी व्यवस्था में सब व्यस्त थे।

मंत्री ने बाहर देखते हुए कहा—कौन है?

मैं हूँ।

भीतर आइये।

केशव चुपचाप सामने जाकर खड़ा हो गया। लोग ध्यान से उसे देखने लगे। उसने अपना सब वृतांत सुनाकर कहा—आज से मैं अपना जीवन

स्वतंत्रता के चरणों पर उत्सर्ग करने के लिये उद्यत हूँ। मेरा भी स्वयंसेवकों में नाम लिखिए।

कांग्रेस के रजिस्टर में केशव का नाम स्वयंसेवकों में लिख लिया गया। उस दिन से केशव ने एक नवीन संसार में पदार्पण किया।

(४)

कुछ समय बीता। नगर में कोलाहल मचा हुआ था। कांग्रेस का दफ्तर गैरकानूनी बताकर जब्त कर लिया गया। सभी प्रमुख नेता जेल चले गये थे। 'आर्डिनेंसों' का बोलबाला था।

अमावस्या की रात थी। गली में बड़े धड़ाके की आवाज आने लगी! लोग बड़े आश्चर्य और कौतूहल से अपनी खिड़कियों से झाँकने लगे। लोगों ने देखा, एक आदमी टिन का कनस्तर लकड़ी से पीट रहा है। एकाएक वह गली के मोड़ पर खड़ा हो गया और एक स्वर से कहने लगा—भाइयो, सावधान हो जाओ; हमारी राष्ट्रीय महासभा का प्रत्येक कार्यालय जब्त कर लिया गया है। अब हम लोगों का कहीं ठिकाना नहीं है। इसी पर विचार करने के लिए कल······पर सभा होगी और दिन भर हड़ताल रहेगी।

कहता हुआ वह आगे बढ़ गया। स्त्रियाँ भय से काँप रही थीं। पुरुष वर्त्तमान अवस्था के भविष्य पर टीका टिप्पणी कर रहे थे।

कल सभा में जाने का साहस छूट गया था। तिरंगा झंडा लेकर और रंग बिरंगे कपड़े पहन कर टिड्डियों की तरह निकलनेवाला जन-समूह न जाने कहाँ चला गया था। अब देश की स्वतंत्रता के लिये तलवार की धार पर चलनेवाले सैनिकों की माँग थी। हड़ताल की सूचना देनेवाला इसी तरह का सैनिक प्रतीत होता था; क्योंकि ठीक चौमुहानी पर पुलिस कांस्टेबिल के सामने खड़ा होकर उसने उसी दृढ़ता से कनस्तर पीटते हुए उन्हीं शब्दों को दुहराया, और आँखें गड़ाता हुआ चला गया।

इधर उधर नगर के अनेक भागों में अपना कार्य संपन्न करते हुए वह अपने घर की ओर विजयी सैनिक की भाँति चला आ रहा था।

ठीक अपने मकान के सामने खड़ा होकर उसी तरह कनस्तर पीटते हुए उसने कहा—कल लड़ाई होगी, देश के प्यारे नौजवानो! तैयार रहो।

ऊपर से किसी स्त्री ने कहा—भला भला सुन लिया गया—जाओ अब।

पड़ोस के किसी आदमी ने पूछा—कल क्या हड़ताल है केशव ? इस हड़ताल ने तो जान मार डाला यार !

वह समय अब आ गया भाई—देखो न, अपनी आँखों से देखोगे।—कहता हुआ केशव अपने घर में घुस गया।

अपनी कोठरी में पहुँचकर केशव ने एक कोने में कनस्तर रख दिया और खूँटी पर टोपी कुरता उतारकर टाँग दिया। उसकी पत्नी चुपचाप उसकी ओर देख रही थी। केशव दिन भर का थका हुआ था। वह चारपाई पर बैठ गया। उसकी स्त्री ने पूछा—यह रोज दूकानें बंद करने से आखिर क्या फायदा होता है ?

अपढ़ केशव ने बड़ी गंभीरता से कहा—इससे यह मालूम होता है कि लोग महासभा की आज्ञा मानते हुए एकता को अपना रहे हैं और एकता होने पर स्वराज्य बहुत शीघ्र मिलेगा।

कल क्या होगा ?—उसकी स्त्री ने उत्सुकता से पूछा।

कल जीवन मरण का प्रश्न है।

क्यों ?

मंत्री कहते थे कि कल अवश्य ही रक्तपात होगा। हुक्म नहीं है सभा करने का; लेकिन उसकी परवा न करते हुए सभा अवश्य होगी, और पुलिस अपनी लाठियों का खेल दिखलायेगी।

तब तुम कल मत जाना।

यह कैसे हो सकता है ? इस शांतिपूर्ण युद्ध में मरने के बाद भी स्वर्ग है—स्वतंत्रता है।

इसके बाद केशव बहुत देर तक अपनी स्त्री से जी खोलकर बातें करता रहा। स्त्री के अनेक प्रश्नों का उसने बड़ी समझदारी से उत्तर दिया। उसकी आँखें चमक रही थीं और मुखड़े पर एक अपूर्व कांति अपना तेज प्रकट कर रही थी।

(५)

पुलिस ने 'पार्क' की चहारदीवारी को घेर लिया था। भीतर सभा हो रही थी। सड़क पर सैनिक परेड कर रहे थे।

सभा में संमिलित होने के इच्छुक कायर बन रहे थे। गली की भीड़ में से और इधर उधर छत से लोग यह भयानक दृश्य देख रहे थे।

पुलिस किसी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही थी। इतने में एक अफसर ने आकर कहा—सभा भंग कर दो।

उस समय एक महिला वक्तृता दे रही थी। लोग शांत बैठे सब देख रहे थे। वक्तृता देनेवाली महिला के शब्द गूँज रहे थे—हमें आज्ञा मिली है कि सैकड़ों लाठियाँ खाने पर भी हम हिंसा के कार्य न करें—हँसते हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दें। देश की स्वतंत्रता के लिए यही हमारा कर्तव्य है, और वह समय आज आकर सामने खड़ा हो गया है। उसके लिए अब आप तैयार हो जाइये।

सभा भंग करने की आज्ञा पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। ठीक उसी समय लाठियों का प्रहार आरंभ हुआ।

सभा में कुछ महिलायें भी बैठी थीं।

एक पुलिस सिपाही आगे बढ़कर महिलाओं के ऊपर झुका! केशव भी उछलकर वहीं जा पहुँचा।

उसने उत्तेजित स्वर में कहा—तुम्हें लज्जा नहीं आती अपनी माँ बहनों पर आक्रमण करते।

उसी क्षण वह महिलाओं को अपनी छाया में आश्रय देकर खड़ा हो गया।

उसके प्रश्न का उत्तर शब्दों से नहीं लाठियों से मिला। रक्त की धारा बह चली! बेचारा बुरी तरह घायल हुआ। गिरने पर भी दो लाठियाँ और पड़ीं।

उसका माथा फट गया था। आँखें निकल आई थीं। धीरे धीरे उसकी साँस चल रही थी। महिलाएँ अपने आँचल से उसका रक्त पोंछ रही थीं।

देखते देखते केशव क्षण भर में मृत्यु की गोद में सो गया।

'नहीं रखनी जालिम सरकार' की आवाज से आकाश मंडल गूँज उठा!

× × × ×

एक वर्ष समाप्त हुआ।

समझौते का डंका बज उठा। आंदोलन रोक दिया गया।

समस्त संसार में बेकारी बढ़ गई। व्यवसाय नष्ट हो गया। प्रत्येक मनुष्य पैसों के नाम पर उदासीनता प्रकट करने लगा। और, भारतवर्ष का तो सर्वनाश ही समझिये।

महात्मा गांधी लंदन गये। नेताओं का बाजार कुछ शिथिल सा हो गया। गरीबों के सामने रोटी का प्रश्न बड़ा जटिल हो उठा।

केशव की पत्नी को विश्वास था कि अपने पति को खोकर भी उसे रोटी के लिए चिंता न रहेगी; स्वराज्य हो जायगा, और फिर तो उसे न जाने क्या क्या मिलेगा।

किंतु उसकी आशा प्रगाढ़ अंधकार में डूब रही थी। हताश होकर स्वयंसेविकाओं में उसने भी नाम लिखा लिया। प्रायः शराब की दूकान पर पिकेटिंग करते हुए जब उसके साथ की स्त्रियाँ प्रसन्न बदन राष्ट्रीय गीत गाया करती हैं, तब भी वह तिरंगा झंडा लिए उदास मुँह चुपचाप बैठी रहती है।

शिविर से जो अन्न मिलता है, उससे पेट की ज्वाला शांत करके अपनी कोठरी में पड़े पड़े उसने अनेक बार विचार किया कि इस लड़ाई में केवल गरीबों की ही हानि हुई; पैसेवाले अब भी उसी तरह सुख से दिन व्यतीत कर रहे हैं।

उसने कई बार नगर कांग्रेस के दफ्तर में जाकर पूछा—स्वराज्य कब मिलेगा, और मिल जाने पर मुझे क्या मिलेगा?

उसके इस प्रश्न पर लोग हँस देते हैं।

हृदय की कसक

जब सहसा आकाश में बादल घिर जाते—पूर्णिमा के चंद्रदेव की किरणें गंगा की लहरों के साथ अठखेलियाँ करतीं—श्मशान पर चिता दहक उठती—बन में कोयल कूक उठती—पपीहा करुण शब्द से पिहकने लगता—प्रातःकाल उपवन में सुमन खिल उठते, अथवा सुंदर रमणियों का दल जब कभी दीख पड़ता था, तब, मेरा हृदय भी उमड़ आता था। मैं व्याकुल होकर कुछ देर तक विचार सागर में डुबकियाँ लगाने लगता।

सुंदरता का मैं उपासक था—किसी कलुषित भाव से नहीं। उन दिनों मेरी तरुणावस्था थी। ऐसे तो मैं एक पागल सा था ही, किंतु प्रेम में किस तरह लोग पागल हो जाते हैं—यह मैं नहीं जानता था। हाँ जब मैं किसी सुंदर स्त्री को देख लेता तो दो चार दिनों तक दिल में मीठा मीठा दर्द होने लगता था। बस, पहले मुझे इतना ही रोग था। धीरे धीरे मेरा यह रोग बढ़ने लगा।

अपनी इसी वृत्ति से उत्तेजित होकर मैं भ्रमण के लिये निकला। देहरादून में मेरे एक दूर के संबंधी रहते थे। उन्हीं के यहाँ मैं पहुँचा। उनका नाम राजनाथ था। घर में उनकी माँ, स्त्री और एक विधवा बहन शांता थी।

प्रथम दिवस शांता जब मेरे लिये भोजन लाई, तो मैंने एक बार उसे देखकर सिर नीचा कर लिया। बस, उसी समय मेरे हृदय में एक तूफान आया, और मैं कुछ चिंतित सा हो गया। विचार करने लगा—शांता कितनी भोली है! उसमें कितनी सादगी है! उसका रूप कितना सुंदर और मनोमोहक है!

मैं भोजन करने लगा। पर मुझसे कुछ खाया नहीं गया। शांता ने पूछा—आपने कुछ भोजन नहीं किया—बात क्या है?

मैंने कहा—मेरी खुराक ही इतनी है।

बस, यही मेरी और शांता की प्रथम दिवस की बातचीत है। उसमें न जाने कौनसी ऐसी आकर्षण शक्ति थी, जिसने मुझे इतनी जल्दी अपनी ओर खींच लिया। अब मेरी रात जागते बीतने लगी। मेरी दशा ही कुछ बदल

गई। मैंने एक नये संसार में प्रवेश किया। दिन रात मैं विचारों में लीन रहता।

धीरे धीरे शांता से बड़ी घनिष्ठता हो गई—उसी से क्यों, उसके घर भर से। नित्य प्रति वह भोजन के समय, दोनों बेला, मेरे सामने बैठती। मैं खाने के साथ साथ, जी भरकर, उसका रूपरस पीता।

मैं पान बहुत खाता था। वह नित्य मेरे लिये एक डिबिया पान भरकर दे देती थी।

मैं केवल आठ दिनों में ही उन लोगों से ऐसा घुल मिल गया, मानो मैं खास उन्हीं के घर का हूँ। राजनाथ से तो पहले ही से मेरा परिचय था। कई बार वह मेरे घर जा चुके थे, किंतु मुझे उनके घर के लोगों के देखने का यह पहला ही अवसर था।

राजनाथ एक दफ्तर में नौकरी करते थे, और अपनी तनख्वाह से घर का खर्च अच्छी तरह चला लेते थे। कुछ पैतृक संपत्ति भी थी। वह शहर के मामूली रईसों में से एक थे।

शांता, पति की मृत्यु के पश्चात, अपने मायके में ही रहती थी। उस समय उसकी अवस्था अठारह वर्ष से ज्यादा न थी। पहाड़ी देश होने के कारण वहाँ का जलवायु बहुत लाभदायक था। प्रकृति के मनोहर दृश्य खूब देखने को मिलते थे।

घर से कुछ दूरी पर एक झरना था। मैं उसके पास जाकर कभी कभी बैठता। जलप्रपात बड़े वेग से गिरता था। पहाड़ी पत्थरों से इठलाती हुई लहरियाँ बहकर एक छोटी सी धारा बना देती थीं। वहीं बैठकर मैं अपने मन के प्रवाह का मिलान करता, और उस स्रोत के साथ बह जाने की प्रबल कामना का उद्वेग लिये—हृदय को सम्हाल कर—शांता के घर लौट आता था।

पक्षियों का कोलाहल, पवन का मचलना, पहाड़ी वृक्षों का मस्ती से झूमना, और उस स्थान की निर्जनता ने वहाँ की प्रकृति को सजीव बना दिया था। उस एकांत स्थान में मुझे बड़ा आनंद आता। बैठा बैठा मैं विचार करता कि एकाएक मैं शांता को क्यों इतना चाहता हूँ—मैंने अपने जीवन में एक से एक बढ़कर सुंदर स्त्रियों को देखा है, फिर भी उनके प्रति मेरा प्रेम नहीं हुआ, किंतु शांता में कौन सी ऐसी शक्ति है, जो मुझे खींच रही है।

मेरी यही इच्छा होती थी कि बस दिन रात शांता को देखा करूँ। यही मेरी प्रथम और हार्दिक कामना मेरे जीवन में उत्पन्न हुई।

एक दिन मैं घूमकर आया, तो शांता अपने कार्य में व्यस्त थी। उस दिन मेरी पान की डिबिया भी नहीं भरी थी। मैं थोड़ी देर के बाद ऊपर गया और उससे अपने लिये पान माँगने लगा। उसने कहा—ओफ! आज बड़ी भूल हो गई, अभी तक आपके लिए पान न बना पाई!

मैंने कहा—नहीं, कोई हर्ज नहीं। लाओ, मैं अपने हाथ से बना लूँ; क्योंकि तुम अपने काम में लगी हो।

उसने कहा—वाह, मेरे रहते आप पान बनाइयेगा?

मैं जिद पर अड़ गया—आज मैं अपने ही हाथ से पान बनाऊँगा।

उसने मुझे डब्बा दे दिया। मैं पान बनाने लगा। वह और उसकी माँ मेरे पास बैठकर हँसने लगीं। जब मैं पान बना चुका, तब वही अकेली मेरे सामने बैठी थी। मैंने धीरे से दो बीड़ा पान उसकी तरफ बढ़ा दिया। थोड़ी देर तक वह मेरी तरफ एकटक देखने लगी। फिर चुपके से पान लेकर उसने खा लिया।

उस दिन उसकी उस चितवन में जादू का सा संमोहन था। उसकी आँखों में फिर वैसी झलक कभी दिखलाई न पड़ी।

मैंने कहा—शांता, तुम जानती हो?

उसने पूछा—क्या?

मैंने कहा—जो जिसे बहुत चाहता है, उसे उसके हाथ के पान बहुत रुचते हैं।

उसने अपना सिर नीचा कर लिया। उसकी आँखें कहती थीं—वह मुझे हृदय से प्यार करती है। उसके भावों से मेरे मन में ऐसा ही अनुमान हुआ।

कई दिन बीत गये। एक दिन राजनाथ ने मुझसे पूछा—कहो, यह स्थान तुम्हें पसंद आया या नहीं?

मैंने कहा—ऐसा रमणीक स्थान भला कौन नहीं पसंद करेगा?

शाम को सब कोई एक साथ बैठकर भोजन करते थे। उस समय आपस में खूब बातें होती थीं। कभी कभी चलती फिरती बातों पर मजेदार बहसें होतीं—बड़ा मजा आता था। शांता भी चुपचाप बैठी बड़ी दिलचस्पी से बातें सुनती और प्रसन्न होती थी।

एक दिन अकस्मात् मेरे सिर में जोरों से दर्द होने लगा—साथ ही, ज्वर भी चढ़ आया। उस समय राजनाथ दफ्तर गये हुए थे। मैं पलँग पर लेटा था। मेरी हालत देखकर शांता दुःखित हुई। उसने मेरे मस्तक पर अपने काँपते हुए कोमल हाथ को रखकर पूछा—कैसी तबीयत है?

उसके कर स्पर्श से मैं एक अनिवर्चनीय स्वर्गीय सुख का अनुभव करने लगा। उस समय आकाश में बादल छाये हुए थे—छोटी छोटी बूँदें गिर रही थीं। मैं एकटक उसकी तरफ देख रहा था। वह भी देख रही थी मेरी तरफ। मीठे स्वर में पूछा—आप इस समय क्या सोच रहे हैं?

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और धीरे से कहा—शांता! यदि इसी हालत में मेरे जीवन का अंत हो जाय, तो मैं अपने को बड़ा भाग्यवान समझूँगा।

उसने कहा—छिः! ऐसी अशुभ बात क्यों कहते हो?

मैंने कहा—नहीं शांता! अब मुझे इस संसार में सुख नहीं दिखाई देता। एक दिन मुझे तुमसे अलग होना ही पड़ेगा। उस विरह की कल्पना, ज्वाला बन कर मुझे अभी जला रही है।

उसने चुपचाप एक ठंढी साँस भर कर 'आह' खींची। अब मेरा दृढ़ विश्वास हो गया कि वह भी मुझे हृदय से चाहती है। दो दिनों तक मैं चारपाई पर पड़ा रहा। बाद को मेरा ज्वर और दर्द दूर हो गया। यह शांता की हार्दिक शुभ कामना का फल था!

(२)

मैं चुपचाप अपने कमरे में अकेला बैठा कुछ सोच रहा था। उस समय दरवाजे को खटखटा कर रसीला मलय पवन उलटे पाँव लौट जाता था। मेरे मन में यह बात खटकी। उठ कर खिड़की खोल दी—मालती की सुगंध से भरा हुआ वायु का झोंका भीतर घुस आया।

मेरा मन और भी उलझ गया। खिड़की से दो चार तारे चुपचाप मेरी ओर ताकते थे। मैं चंचल हो उठा। शांता का ध्यान मेरे मस्तक में सुगंध के समान भर गया। मैं बड़ा व्यथित था। मेरे हृदय में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई।

मैंने मन-ही-मन कहा—छिः! अपने एक संबंधी मित्र के साथ विश्वास घात करते शर्म नहीं आती! मुझे क्या अधिकार है कि मैं शांता को प्यार करूँ। वह तो संसार से उसी दिन अलग कर दी गई, जिस दिन वह विधवा हो गई—उसका सुहाग धूल में मिल गया! मैं उसे प्यार कर उसकी मनोवृत्ति को क्यों चंचल कर रहा हूँ। समाज में वह कलंकित हो जायगी। फिर? फिर वह कहीं की न रह जायगी। उफ! उससे प्रेम कर मैं उसके जीवन के साथ कितना बड़ा अत्याचार कर रहा हूँ!

सोचते सोचते मैंने निश्चय किया, अब बहुत जल्द मैं यहाँ से प्रस्थान कर दूँगा—प्रेमाग्नि से जल उठनेवाले ईंधन को दूर ही रखना ठीक है।

दूसरे दिन मैं जाने की तैयारी करने लगा। राजनाथ ने पूछा—क्यों विजयकृष्ण, आज तुम बहुत उदास क्यों मालूम पड़ते हो?

मैंने कहा—नहीं, उदास तो नहीं हूँ। अब घर जाने की इच्छा है। वहाँ बहुत से जरूरी काम हैं। आज बीस दिन यहाँ रहते हो गये। इसी बीच में मेरे कारण आपको जो कुछ कष्ट उठाना पड़ा उसके लिए क्षमा कीजियेगा। मैं आपका कृतज्ञ हूँ।

राजनाथ ने कहा—तुम ऐसी दुनियादारी की बातें करना कैसे सीख गये विजय? यहाँ तुम्हारे रहने से मुझे क्या कष्ट उठाना पड़ा? तुम्हारी ही वजह से तो मेरा घर आज कल गुलजार है। सच मानो, मैं तुम्हारे आने से बड़ा सुखी हुआ हूँ। मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ—जैसे तुम इतने दिन रहे, वैसे चार पांच दिन और रह जाओ।

मैं राजनाथ की इस सज्जनता की मन ही मन प्रशंसा करने लगा—कैसा भोला भाला निष्कपट मनुष्य है!

उनकी बात मान कर मैंने कुछ दिनों के लिए घर जाने का विचार छोड़ दिया। वह बड़े प्रसन्न हुए—हँसते हँसते दफ्तर चले गये।

एक दिन मैं कमरे में लेटा हुआ उपन्यास पढ़ रहा था। उसी समय पान की डिबिया लेकर शांता आई। उसने मुझे पान देते हुए कहा—क्या अब आप चले जायँगे ?

इतना पूछते हीं उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। मैंने धीरे से कहा—इरादा तो जाने ही का है, यहाँ पड़े पड़े क्या करूँ ?

अच्छा, क्या मैं एक बात कहूँ ?

हाँ हाँ, खुशी से कहो।

संकोचवश सिर नीचे झुका कर काँपती हुई आवाज में बोली—अगर मैं भी आपके साथ चलूँ तो ?

मैंने चिंतित होकर कहा—शांता, मैं जानता हूँ कि तुम मुझे बहुत प्यार करती हो—मेरे लिये सब कुछ त्याग सकती हो किंतु, तुम्हीं सोचो, यदि तुम मेरे साथ चलोगी, तो समाज क्या कहेगा ? उसके कलंक से हम मुँह दिखाने लायक नहीं रह जायँगे !

वह रोने लगी। सिसकती हुई बोली—निगोड़ा समाज मतलबी है। वह दूसरों को सुखी नहीं देख सकता—किसी के दुःख में हाथ भी नहीं बँटा सकता। फिर ऐसे समाज के कलंक की क्या चिंता ? मैं तुम्हारे साथ रह कर अपने को परम सौभाग्यवती समझूँगी। अगर मेरा सौभाग्य अंधे समाज को खलेगा, तो देखने देना।

मैंने कहा—नहीं शांता, इस तरह समाज की अवहेलना करना ठीक नहीं। हमें इसी समाज में रहना और मरना है। चार दिन की इस जिंदगी में समाज से अपयश लेकर जीना मरना अच्छा नहीं।

उसने मेरी बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने फिर कहा—यह तो बताओ, तुम मेरी आत्मा को प्यार करती हो या क्षणभंगुर शरीर को ?

आपकी आत्मा को।

तो देखो—यह शरीर और रूप एक दिन मिट्टी में मिल जायगा; किंतु मेरी आत्मा सदा तुम्हारे साथ रहेगी। मेरा शरीर चाहे कहीं भी रहे, लेकिन तुम्हें मेरे वियोग का दुःख नहीं उठाना पड़ेगा।

मेरी बात सुनकर उसके हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा। उसने कहा—देख ली मैंने आपकी फिलासफी! अच्छा, आप जाते ही हैं, तो जाइये; पर अपनी इस दासी को भुला मत दीजियेगा।

यह कहते कहते उसका मुँह पीला पड़ गया। बगल से उसने एक सुगंधित रेशमी रूमाल निकाल कर कहा—लीजिये, यह है मेरी याददाश्त!

मैंने रूमाल लेकर उसकी खुशबू से तबीयत को तर किया—फिर उसे आँखों से लगाते हुए जेब में रख लिया। मैंने अपने ट्रंक से दो किताबें निकालीं और उसे देते हुए कहा—लो, ये ही तुम्हें मेरी याद दिलायेंगी।

उसी दिन, रात की ट्रेन से, सबसे बिदा होकर, मैं घर की ओर चल पड़ा, चलते समय उसकी डबडबाई आँखों ने कहा—तुम बड़े निर्दय हो!

(३)

मुझे घर आये कई मास बीत गये। वर्षा ऋतु का अंत था। बरसते हुए बादल अब कम दिखाई देने लगे थे। पृथ्वी पर से श्यामल छाया अब खिसकने लगी थी। आकाश में स्वच्छता अधिक और पवन में शीतलता बढ़ चली थी।

मैं धीरे धीरे चिंताग्रस्त होता गया। भोजन कम हो गया। कुछ अच्छा नहीं लगता था। दिन रात शांता की वह मनमोहनी सूरत आँखों के सामने घूमा करती थी।

मेरा स्वभाव एकदम बदल गया। मैंने सब से मिलना जुलना छोड़ दिया। अपना सारा समय एकांत में बिताने लगा। अपनी जिंदगी मुझे बोझ सी मालूम होने लगी। एक पिंजड़े में बंद पत्नी की तरह मेरा जीवन दुःखद बन गया! मेरी यह हालत देखकर घरवाले बड़े परेशान हुए। लोग पूछते—तुम्हें हो क्या गया है? किस फिक्र में पड़े रहते हो? मुँह पीला क्यों होता जा रहा है?

मैं कहता—मेरी तबियत अच्छी नहीं है।

शांता की सभी बातें एक एक कर अब याद आने लगीं—उसकी वह मधुर मुस्कान—वह एकटक रसीली चितवन—वह चितचोर भोलापन—वह मीठी मीठी शीतल बातें—क्या मुझे अब नसीब न होंगी!

सोचते सोचते मेरी व्यथा बढ़ गई, और बढ़ गई हृदय की व्याकुलता। मैं मन-ही-मन सोचता—यदि शांता का दर्शन फिर किसी तरह हो जाय, तो उसे अपने सारे दुखड़े सुनाऊँ, उसे छाती से लगाकर दिल को ठंढा करूँ, और उससे साफ कह दूँ—शांता! मेरी जीवन नौका की तुम्हीं एक पतवार हो, मुझे पार लगाओ!

फिर मैं स्वयं अपने आपको धिक्कारते हुए कहता—छिः! यह क्या सोचते हो? एक विधवा अबला का जीवन नष्ट करके ही छोड़ोगे क्या?

हृदय में इन दुहरी भावनाओं का द्वंद्व चल पड़ा। कभी अच्छी भावना अपनी ओर खींचती—कभी बुरी भावना अपनी ओर। इस खींचातानी में कई दिन बीत गये। अंत में पाप की विजय हुई। मेरे दार्शनिक विचार हवा हो गये। मुझे अब उसके वियोग का एक एक पल अखरने लगा। बस मैंने उससे फिर मिलने का इरादा पक्का किया। सोचने लगा—राजनाथ को एक पत्र लिख दूँ कि आबहवा बदलने के लिए मैं फिर आपके यहाँ आना चाहता हूँ। पर हाथ में कलम लेने से पहले ही मन में झेंप गया; पत्र न लिख सका। निदान मैंने निश्चय किया—मैं वहाँ चलूँ, दो चार दिनों तक इधर उधर घूमता रहूँगा; यदि भाग्य से कहीं एकाएक राजनाथ से मुलाकात हो जायगी, तो कह दूँगा—मैं यहाँ आबहवा बदलने आया हूँ, अभी आप ही के यहाँ जा रहा था।

मैं उसी दिन घर से चल पड़ा।

४)

स्टेशन से जब उतरा, तो सोचने लगा—अब क्या करूँ—कहाँ जाऊँ?

एक ताँगेवाले ने आकर पूछा—बाबूजी, कहाँ जाइयेगा?

मैंने एकाएक कह दिया—मैं शहर देखना चाहता हूँ। मुझे अपने ताँगे पर ले चलो।

ताँगेवाले ने कहा—आज झरने के पास देवी जी की पूजा का बड़ा भारी मेला है! कहिये तो वहीं ले चलूँ।

मैंने कहा—चलो, देखूँ, यहाँ का मेला कैसा होता है।

कुछ दूर से देखा कि झरने के समीप आ गया हूँ। मैं ताँगे से उतरकर

झरने के समीप चला गया। पूर्वकाल के सब दृश्य मेरी आँखों के सामने फिर गये। वहीं चुपचाप बैठ गया!

कुछ देर बाद देखता हूँ कि सामने से एक ताँगा आ रहा है—मेरे समीप आ गया। मेरा हृदय उछल पड़ा। देखा—उसमें सपरिवार राजनाथ बैठे हैं। सहसा उनकी दृष्टि मुझपर पड़ी। मैं खड़ा हो गया। वह ताँगे से उतर पड़े। बड़े आश्चर्य के साथ उन्होंने पूछा—अरे विजय, तुम यहाँ कहाँ?

मैंने कहा—आबहवा बदलने के लिए मैं अभी स्टेशन से यहाँ चला आ रहा हूँ। आपका शहर मुझे बहुत पसंद आया है। अच्छा हुआ; आपका यहीं दर्शन हो गया।

उन्होंने कहा—तुमने खबर तक नहीं दी। यह तो सौभाग्य से आज देवीपूजा थी कि तुमसे मुलाकात हो गई।

मैंने ताँगे की तरफ देखा—उस समय शांता एकटक मेरी तरफ देख रही थी। राजनाथ ने कहा—आज हम लोग यहाँ देवीपूजा के लिए आये हुए हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर देवी मंदिर है। तुम लोग यहीं रहो, मैं वहाँ पूजा का सब प्रबंध करके आता हूँ; तब सबको ले चलूँगा।

मैंने राजनाथ की माँ को नमस्कार किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया। फिर मैंने शांता से पूछा—शांता, अच्छी तरह हो?

शांता ने केवल सिर हिला दिया। सब लोग ताँगे से उतर पड़े। राजनाथ प्रबंध करने के लिए चले गये। मैं और शांता टहलते टहलते झरने के पास आकर बैठ गये। अब तक वह एकदम चुप थी। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। मैं भी चुप था।

कुछ देर बाद मैंने कहा—शांता, जानती हो, मैं यहाँ क्यों आया हूँ?

उसने कहा—नहीं!

मैंने कहा—तुम्हारे प्रेम ने मुझे पागल बना दिया है। जिस दिन से मैं तुम्हें छोड़कर यहाँ से गया हूँ, उस दिन से मेरी बड़ी बुरी हालत है। मुझे तुम्हारे सिवा इस संसार में कुछ अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हें पहले समझाता था, मगर अब खुद मेरी समझ में कुछ नहीं आता। तुम्हारे बिना अब मेरा जीवन व्यर्थ है। मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरी हो जाओ।

जब मैं यह कह रहा था, तब वह बार बार मेरी ओर देख रही। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका हृदय उमड़ रहा है, और वह बहुत कुछ कहना चाहती है। आखिर उसने कहा—आपके वियोग में कितने ही दिनों तक मैं पागल थी। नित्य मैं आपकी आराधना करती थी। मेरे दिन और रात केवल आपके ध्यान में कट जाते थे—

मैं शांता की तरफ बड़े आश्चर्य से देखने लगा। वह कहती ही रही—

बहुत दिनों तक मेरी भी यही दशा थी। फिर जब आपकी बातें याद करती कि रूप नष्ट हो जाता है—शरीर मिट्टी में मिल जाता है, किंतु आत्मा अमर है—तो हृदय को कुछ शांति मिलती। आपकी पुस्तकों ने मेरा बड़ा उपकार किया। नित्य मेरे विचारों में परिवर्तन होने लगा। और, अब मेरा आपके ऊपर सच्चा प्रेम है।

मैंने विह्वल होकर कहा—शांता, मेरे साथ चलोगी न?

उसने कहा—मुझे आश्चर्य है कि आपके अटल सिद्धांतों में परिवर्तन कैसे हो गया! उस समय मैं भूली थी। अब मुझमें एक नई शक्ति का प्रवेश हुआ है। आप मुझे क्षमा करें। मैं आपकी आराधना करूँगी; परंतु अब मेरा वह वासनामय प्रेम नहीं रहा।

मैं व्याकुल होकर कहने लगा—शांता! शांता! मेरे ही अस्त्रों से मुझे न मारो। मैं स्वयं मर रहा हूँ। मेरी प्रणय पिपासा मृगतृष्णा के काल्पनिक जल से न बुझेगी। मुझे पीने दो—रूपरस से—इस सूखे हृदय को सींच दो। शांता! इस जीवन का सुख—स्वप्न देखने से—न मिलेगा। वह मेरा सपना था, जिसे तुम भी अब देखने लगी हो। अब अधिक न सताओ……!

कहते कहते मैं उन्मत्त की भाँति उसके चरणों में गिर पड़ा। वह चौंक कर खड़ी हो गई। मैं भी अवाक् होकर देखने लगा। झरना खिलखिलाकर हँस रहा था। फिर उसने तीखी निगाह से देखते हुए गंभीर स्वर में कहा—वह नहीं हो सकता!

मैंने पूछा—क्या नहीं हो सकता शांता?

उसने दृढ़ स्वर से कहा—'कुछ नहीं'—और निगाहें नीची कर लीं।

बिना कहे मैं चल पड़ा। कब स्टेशन आया, कब रेल पर चढ़ा, कब घर आया—कुछ पता नहीं। घर पर उसी तरह नीरस दिन और कष्ट की रातें कटने लगीं। फिर मेरे कई मित्रों ने मुझे बीमार समझ कर पहाड़ पर जाने की सलाह दी, परंतु मैं बहाना करता और उन्हें टाल देता। मैं सोचता कि स्वास्थ्य लेकर क्या करूँगा!

कई वर्षों के बाद निराशा से धीरे धीरे मेरे विचार बदल गये। मेरे प्रेम का तूफान कुछ शांत होने लगा। मैं क्रमशः प्रकृतिस्थ होने लगा। मुझे वह नशे का खुमार मालूम होने लगा। मेरी कल्पना का वेग कम हो चला। मैं पूर्ण स्वस्थ नहीं, तो अब बीमार भी नहीं।

एक दिन राजनाथ का पत्र मिला। उसमें लिखा था कि उनकी माँ और शांता तीर्थ यात्रा के लिये यहाँ से सोमवार को जायँगी, बीच में तुम्हारा शहर भी पड़ेगा, उनसे मिल लेना।

मैं ठीक गाड़ी के समय स्टेशन पर पहुँचा। गाड़ी आई। मेरा हृदय उछल रहा था। कई डब्बे खोज डाले। सहसा शांता के दर्शन हुए। उसने बड़े नम्र भाव से नमस्कार किया। उस दिन मुझे वह एक देवी सी प्रतीत हुई। उसमें अपूर्व शक्ति थी—एक असाधारण तेज था।

राजनाथ की माता से कुछ देर तक बातचीत होती रही। मैं दो स्टेशन तक उनके साथ गया। शांता बड़ी प्रसन्न थी। उसने मुझे पान देते हुए कहा—वह दिन याद है?

मैंने कहा—वह दिन इस जीवन में नहीं भूलेगा।

मैं गाड़ी से उतर पड़ा। शांता और राजनाथ की माँ चली गईं। चलते समय शांता के नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिरते हुए मैंने देखी थीं।

कई वर्ष बीत गये। अब केवल एक स्मृति है। अब, कभी कभी, शांता की स्मृति हृदय में जाग उठती है। मैं चुपचाप बैठ कर, स्मृति की उसी अचल प्रतिमा के चरणों में आँसुओं के दो फूल चढ़ा देता हूँ।